पतितों की

शुद्धि

सनातन है

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादि के प्रमाणों से
अलंकृत और प्रबल युक्तियों से
सुभूषित

श्रीमान् महता रामचन्द्र जी शास्त्री
आर्य्योपदेशक

रचित

श्रीमती आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
लाहौर
ने
मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ प्रकाशित की।

सँम्वत् १९६६ विक्रमी०] [२१ अक्तूबर सं०१९०९ ई०

बाम्बे मैशीन प्रैस लाहौर में दुनीचन्द प्रिन्टर के
अधिकार से छपी।

प्रथम बार ५००० मूल्य ।)

पतितों की

शुद्धि

सनातन है

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादि के प्रमाणों से
अलंकृत और प्रबल युक्तियों से
सुभाषित

श्रीमान् महता रामचन्द्र जी शास्त्री

आर्य्योपदेशक
रचित

श्रीमती आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा
लाहौर
ने
मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ प्रकाशित की।
सँम्वत् १९६६ विक्रमी०] [२१ अक्तूबर सं०१९०९ ई०

बाम्बे मैशीन प्रैस लाहौर में दुनीचन्द प्रिण्टर के
अधिकार से छपी।

ओ३म्

आर्य्य समाज के नियम।

१–सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जान जाते उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनूपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्य्यामी, अजर अमर, अभय नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करना योग्य है।

३–वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४–सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५–सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को बिचार कर करने चाहिये।

६–संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शरीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

–७सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८–अविद्या का नाश और विद्या की बृद्धि करना चाहिए।

९–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये।

१०–सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

विषयानुक्रमणिका ।

परिशिष्ट ।

। ओ३म् ।

भूमिका ।

किसी जाति के सामाजिक बल का निर्भर उस जाति की आन्तरिक गठित पर है । इस आन्तरिक गठित की परीक्षा यह है कि किस अवधि तक वह अपने व्यक्तियों की रक्षा करती है और कहां तक उसके विभिन्न व्यक्तियों में पारस्परिक प्रेम और न्यायाचरण है । प्रत्येक जाति में कुछ समुदाय होते हैं जिनके समदाय का नाम जाति है । जाति के आन्तरिक गठित की यह परीक्षा है कि इन समुदायों में कहां तक समष्टिरूप से कार्य करने की शक्ति है । और कहांतक वे भिन्न भिन्न समुदाय ऐसे कार्य करने के लिये एकत्र होजाने के लिये उद्यत हैं । जिन कार्यों का समुदाय विशेषन किसी व्यक्ति वा समुदाय से नहीं है किन्तु समग्र जाति से है । दूसरे शब्दों में यह कहो कि जाति के सामाजिक बल का परीक्षण यह है कि कहांतक उस जाति के विभिन्न समुदाय और पृथक् पृथक् व्याक्ति अपनी जाति के अन्य समुदायों व्यक्तियों की अन्य जाति के समुदायों एवं व्यक्तियों से रक्षा करने की रुचि रखती हों यह बात स्वाभाविक है कि एक समुदाय की व्यक्तियों को उसी समुदाय की व्यक्तियों की अपेक्षा इतर समुदायों की व्यक्तियों से अधिक स्नेह हो संसार का यह नियम है कि जितना किसी का दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध होगा उतना ही उसका अधिक स्नेह होगा । अतः एक कुटुम्ब की व्यक्तियां परस्पर अधिक स्नेह रखती है उस प्रेम की अपेक्षा जो उनका दूसरे परिवार के लोगों के साथ है । इसमें कोई दोष नहीं परन्तु यह

आवश्यक है कि एक जाति के विविध समुदायों में परस्पर अधिक प्रेम और सम्बन्ध हो। उस सम्बन्ध से जो उनको अन्य जातियों के समदायों से सम्बन्ध है हम दृष्टान्त से इसको अधिक स्पष्ट कर देते हैं। आप ऐसा अनुमानकरे कि एक जाति का नाम क है दूसरी का नाम ल और तीसरी का नाम र है। क में १० समदाय सम्मिलित है। ल में ९ हैं और र में १२ हैं। इनमें से प्रत्येक जाति के सामाजिक बल का निर्भर इस बात पर है कि उसके भिन्न २ समुदायों में कहांतक अपनी अपनी जाति के विभिन्न समुदायों की सहायता की रुचि है। जैसे यदि क जाति के समुदायों में इतना प्रेम नहीं है कि वह ल जाति से अपनी जाति के समुदायों की अपेक्षा अधिक प्रेम कर सकें। तो समझना चाहिये कि क जाति के सामाजिक बल पर भरोसा नहीं हो सकता। यदि ल जाति के विभिन्न समुदायों में परस्पर प्रेम और सम्बन्ध अधिक है तो उसमें क जाति की अपेक्षा सामाजिक बल अधिक है।

एक जाति के भिन्न भिन्न समुदाय यदि कभी कभी लड़ते हैं या उनमें मति भेद होता है या वे परस्पर कटाक्ष करते हैं तो यह कुछ चिन्तास्पद नहीं। (यद्यपि हम यह नहीं कहते कि ऐसा करना प्रशंसनीय है वा ऐसा होना चाहिये परन्तु संसार में प्रायः देखा जाता है इसको मानकर विचारना चाहिये) परन्तु उनके जाति हित की परख और उनकी जाति के सामाजिक बल की परख यह है कि जब उनकी जाति के किसी समुदाय को किसी दूसरी जाति के सामने सहायता की आवश्यकता हो तो वह उदारता से उन्हें सहायता देता है वा नहीं। इङ्गलिस्तान के रहने वालों के अनेक समुदाय

हैं जो आपस मे समय समय लड़ते और झगड़ते हैं । ये समुदाय धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार के हैं । इङ्गलैण्ड निवासियों का सामाजिक बल महान् है क्योंकि-उनके भिन्न भिन्न समुदायों में अपने देश और जाति का प्रेम इतना बढ़ा हुआ है कि आपस में लड़ते और झगड़ते हुए भी उनको अपने समुदायों और व्यक्तियों से दूसरी जातियों और व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रेम है । इङ्गलिस्तान में ईसाई मत दो बड़ी श्रेणियों में विभक्त है । प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथलिक प्रोटेस्टेंट में असंख्यात फिर्के हैं । वे प्रायः परस्पर लड़तें झगड़ते रहते हैं । पर उनकी गठित की परख यह है कि वे रोमन कैथलिक श्रेणी की प्रतिद्वन्द्वता में जहां कोई मत सम्बन्धी विवाद उपस्थित हो तो झट इकट्ठे होजाते हैं । और (No Popery) नो पोपरी की ध्वनि चारों ओर से उठाने लगते हैं । इसी प्रकार इंगलैंड की पूर्वोक्त दोनों श्रेणियां राजनैतिक भाव से परस्पर एकत्र होजाती हैं । जब कभी इंगलैंड का फ्रांस के साथ विवाद हो । या यदि फ्रांस में रोमन कैथलिक अधिक है और इंगलैंड में प्रोटेस्टेंट ।

हमारे मुसलमान भाइयों में प्रथम संख्या की गठित विद्यमान् है । यद्यपि द्वितीय संख्या की नहीं । मुसलमानों के सब फिर्के एक दूसरे के साथ लड़ते और झगड़ते रहते हैं परन्तु मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सामना करने में उनमें पारस्पिरक अधिक प्रेम हैं । और वे झट इकठे होजाते हैं । हिन्दुओं की सामाजिक निर्बलता का मूल कारण इस प्रेम का अभाव है । इस प्रेम के अभाव के कारण वे नियम हैं जिन पर पौराणिक समय में वर्ण व्यवस्था डाल दी गई । किसी समाज में सामाजिक गठित नहीं रह सकती यदि उसके समाज के व्यक्तियों में न्याय और प्रेम का व्यवहार न हो । परिवारों जातियों और समुदायों के गठन

का आधार प्रेम और न्याय होना चाहिये। जिस परिवार के लोगों में आपस में न्याय का वर्ताव न होगा, उस में प्रेम नहीं रह सकता। इसी प्रकार किसी समाज के माननीय पुरुष या लीडर या बड़े लोग अपने छोटे भाइयों के साथ अन्याय का व्यवहार करें और अपनी शक्ति बल पराक्रम और नेतृत्व (लीडर शिप) को अन्याय से वर्त्तें तो उस समाज में कभीं मेल और प्रेम नहीं रहता।

यह सच है कि प्रेम एक मुदुल चित्ताप कर्षक भाव हैं अर्थात् है Amotion या Possion है ऐसे प्रेम के भावों में हिसाब का काम नहीं होता यह प्रायः वे हिसाव होते हैं। परन्तु याद रखना चाहिये कि यह वे हिसाब प्रेमभाव परिमित समय तक अपना प्रभाव रख सकता है। यदि इस सद भाव से कोई पुरुष अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करे और इस को अपनी आड़ बनाकर दूसरे पुरुषों के साथ अन्यायाचरण करे तो प्रेम का भाव घृणाके भाव में परिवर्त्तित हो जाता है। जिस का परिणाम यह होता हैं कि अत्यन्त प्रेम के स्थान में अत्यन्त घृणा और द्वेष आ उपस्थित होते हैं॥

वह प्रेम चिरस्थायी होता है जो न्यायाचरण पर निर्धारित हो। वा यों कहो कि जिसको किसी एक मनुष्य के अन्याय या अत्याचार या अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से हानि पहुचाने की कम सम्भावना हो। दो मित्रों और सम्बन्धियों में जब तक न्याय और सद्व्यवहार का आचरण होता है तब तक, उन के प्रेम में विघ्न पड़ने के अवसर बहुत कम होते हैं। चुगली करने वालों को और फूटकी आग सुलगाने वालों को ऐसी सुगमता से कृतकार्यता नहीं होती जैसी उस समय होती है जब कि मित्रों और सम्बन्धियों के परस्पर व्यवहार में न्याय न रहे या कम हो जाय।

और उस के स्थान में स्वार्थान्धता अन्याय और अत्याचार का प्रवेश हो जावे जिस प्रकार यह प्रेम व्यक्तियों के प्रेम पर घटता है उसी प्रकार से यह समुदायों के परस्पर सम्बन्ध पर ठीक उतरता हैं ॥

परिवार में लड़ाई हो जाती है और इर्ष्या, और फूट का अग्नि प्रचण्ड होजाता है जब कि उनके पारस्परिक व्यवहार से न्याय का तिरोभाव होजाता है नियम यह है कि जिस सीमा या जिस अवधि तक मनुष्यों मनुष्यों समाजों और समाजों वर्णों और वर्णोंके अन्दर न्याया चरण रहेगा उसी अवधि तक उनमें परस्पर प्रेम होगा और उसी अवधि तक इनमें विपरीत शक्तियों के साथ सफलता से संग्राम करने की शक्ति होगी।

मैंने ऊपर वर्णन किया है कि हिन्दुओं में सामाजिक निर्बलता का कारण वर्णों का वर्णों के साथ अन्याया चरण है। जिस नियम पर पौराणिक समय में वर्ण व्यवस्था स्थापित की गई उस नियम पर कभी सम्भव न था कि उनमें सामाजिक अथवा जातीय प्रेम और समष्टि बल रह सके। और इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि ऐसा ही हुआ और इस समय भी वही दृश्य हमारी आंखों के सामने विद्यमान है।

हिन्दुओं की वर्त्तमान प्रणाली में उच्च वर्णों को नीच वर्णों पर वे अधिकार दिये गये हैं और नीच जातियों पर वे अत्याचार ठीक समझे गये हैं जिनके कारण इनमें प्रेम का रहना असम्भव है? जिस सामाजिक व्यवस्था में स्वकीय बुद्धिमत्ता, सुजनता तथा गुण सम्पन्नता को कोई स्थान न हो, जिस व्यवस्था में जन्म से एक नीच श्रेणि के मनुष्य को अपनी स्वकीय गुण सम्पन्नता से उच्च पद पाने

का अवसर न मिल सक्ता हो वह व्यवस्था सर्वथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध और अस्वभाविक है, इसका आधार ऐसे अन्याय पर है जो उन्नति और सामाजिक बल की जड़ों को काटने वाला है ! हिन्दु समाज की वर्तमान सामाजिक नियमावली के अनुकूल एक शूद्र चाहे कितना ही विद्वान् गुण सम्पन्न, धनाढ्य और धर्म्मात्मा क्यों न हो जावे परन्तु हिन्दुओं में उसका समाजिक स्थान शूद्र पद से उच्च नहीं हो सक्ता और हिन्दु बिरादरी में सर्वदा उस पर एक अनपढ़ मूर्ख विद्वान् निर्धन पापात्मा, और दुराचारी द्विज को उत्कृष्टता मिलती रहेगी।

यह एक घोर अत्याचार है और ऐसे अन्याय के होने पर हिन्दु जाति के भिन्न २ विभागों में कभी प्रेम नहीं होसक्ता और प्रेम के बिना वह सामाजिक गठत नहीं होसक्ती जिस पर सामाजिक बल का आधार है ॥

सभ्य दुनियां में यह नियम है कि यदि एक विद्वान् कोई अपराध करे तो उसका अपराध एक मूर्ख और अविद्वान् की अपेक्षा अधिक घृणित समझा जाता है, जैसे यदि कोई धनाढ्य मनुष्य चोरी करे तो उसका यह कर्म्म एक की मनुष्य की अपेक्षा घोरतर है जिसने भूखे मरते चोरी की—परन्तु हिन्दु वर्ण प्रणाली में ठीक इसके प्रतिकूल है, चोरी करने वाला शूद्र चोरी करने वाले ब्राह्मण से सैंकड़ों गुण दण्ड का भागी समझा गया, अधिकाराभिमानी और राज के बल से अन्ध हुई जातियें (Imperial races) अपनी पराजित प्रजापर (Subject races) ऐसा अन्याय करें तो करे परन्तु अन्याय को ठीक मानने वाली जातियें बहुत दिनों तक संसार में सुखी नहीं रहतीं ! इस दशा में यह कैसे होसक्ता है कि एक ही

जाति के भिन्न २ भागों में अन्यायाचरण हो और इसका बुरा परिणाम न निकले ! यही अन्यायाचरण है जिसने हिन्दुओं को यह दिन दिखाया है यही अन्याय और अत्याचार है जिसने हिन्दुओं को दूसरे आक्रमण करने वालों के सामने पराजित किया, यही निष्ठुरता और अत्याचार है जिसने हिन्दुओंको पारस्परिक फूटसे इतना निर्बल कर दिया कि प्रत्येक मनुष्य आज उन पर लात मार रहा है, हंसी उड़ाता है और इनको घृणा की दृष्टिसे देखता है। जिस जाति के भिन्न २ समुदायों में इस प्रकार का अन्याय और अत्याचार ठीक माना गया हो उस जाति में पारस्परिक प्रेम और गठन का होना असम्भव है।

यह भी याद रखना चाहिये कि अत्याचार करने वाला भी हरा भरा नहीं होता थोड़े दिन तक चाहे वह फलता रहे और वह अपने अत्याचारों के बुरे फलों से अनभिज्ञ रहे परन्तु वास्तव में अत्याचार करने वाला उस मूर्ख के सदृश है जो स्वयमेव अपने बल के अभिमान में अपने पैरों पर कुल्हाड़ा चलाता है।

ज़ालिम को जब ज़ुल्म करने का स्वभाव पड़ जाता है तो वह दूसरों को छोड़ कर अपने निकट वर्ती मित्रों तथा सम्बन्धियों पर ही ज़ुल्म करना आरम्भ कर देता है उसका सिर चकरा जाता है और वह यह समझता है कि परमात्मा की सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि उसके सामने सिर झुकावे :—

और इसकी आज्ञाओं का विना ननुनच के पालन करे यही कारण है कि शूद्रों पर अत्याचार करते २ हिन्दुओं की उच्च जातियों ने महिलागण पर जिन में उनकी माताएं, भगिनियें और पुत्रियां

हैं अत्याचार करना आरम्भ कर दिया—इस द्विविध अत्याचार का फल आज हिन्दु जाति सहन कर रही है क्योंकि जिस मनुष्य का स्वयं जुल्म करने का स्वभाव हो जाता है उसका शनै २ दूसरों के हाथों से भी जुल्म सहन करने का स्वभाव बन जाता है! वह समझने लगता है कि जैसा मुझे अपने से छोटों पर या अपने आधीनों पर जुल्म करने का अधिकार है वैसा ही औरों को जो मेरे से अधिक बलवान और बड़े हैं मुझ पर जुल्म करने का अधिकार है, जुल्म करने वाला संसार में जुल्म का ऐसा प्रवाह चला देता है जिस से मनुष्य जाति को बड़ी हानि पहुंचती है और संसार में दुःख बढ़ जाता है इसी वास्ते नीतिज्ञ पुरुषों ने कहा है कि जुल्म को सहन करने वाला भी उसी अवधि तक सच्चे सामाजिक नियमों का विरोधी और अपराधी है जैसा जुल्म करने वाला! जिस प्रकार जुल्म करने वाले का कोई हक नहीं है कि वह दूसरे पर जुल्म करे इसी प्रकार जिस मनुष्य पर जुल्म करने की चेष्टा की जाती है उसका भी कोई हक नहीं है कि अपने ऊपर जुल्म होने दे ! प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म्म है कि न वह दूसरों पर जुल्म करे और न अपने ऊपर दूसरों को जुल्म करने दे ! संसार का प्रबन्ध धर्म्मानुसार और न्यायानुकूल तब ही स्थिर रह सकता है जब प्रत्येक मनुष्य अपने हक पर स्थित रहे और धर्म्मानुकूल अपने कर्तव्य का पालन करे न स्वयं किसी के अधिकार पर हस्ताक्षेप करे और न किसी दूसरे को अपने अधिकार पर हस्ताक्षेप करने दे। शूद्रों ने द्विजों के जुल्म सहने से द्विजों को उतनी ही हानि पहुंचाई जितनी अपने आपको इस भाव से जुल्म करने वाला और जुल्म सहन करने वाला दोनों ही अपराधी हैं, दोनों एक सच्चे सामाजिक नियम को तोड़ते हैं

दोनोंहीसामाजिक नियम के विरुद्ध चलते हैं।

जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसे घृणित हों कि दूसरे समुदाय के लोग उनके दर्शन मात्र से पापी हो जाते हैं, जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसे तुच्छ और पादाक्रान्त हों कि एक समुदाय के लोग आप चाहे कितने ही मैले, अपवित्र और दुष्ट क्यों न हों परन्तु दूसरे समुदाय के स्वच्छ, पवित्र और धर्म्मात्मा मनुष्यों से छूना भी पाप समझें, जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसी घृणा से देखे जावें कि उनके किसी विशेष रास्ते पर चलने से वह रास्ता और सड़क ही अपवित्र हो जाता हो जिस समुदाय में बाप दादा के अपराध का दण्ड उसकी सन्तान को मिलता हो, जिस समुदाय में एक मनुष्य को अपनी सुजनता और गुण सम्पन्नता से सामाजिक अवस्था में उन्नत होनेंका कोई अवसर न हो, उस जाति में कभी जातीय बल नहीं आ सकता और न उस की भिन्न २ व्यक्तियों और समुदायों में पारस्परिक प्रेम हो सकता है हिन्दुओं की ऊंची जातियों ने इस जुल्म और सख्ती को यहां तक पहुंचा दिया कि वे अपने भाइयों को दूसरों की अपेक्षा भी अधिक घृणा दृष्टि से देखते हैं, हिन्दुओं की ऊंची जातियां नीच जातियों से वह वर्ताव भी करना नहीं चाहतीं जो वे मुसलमानों तथा ईसाइयों से करती हैं मुसलमानों और ईसाइयों को हिन्दुओं के कुओं से पानी भरने की आज्ञा है परन्तु शूद्रों को नहीं, दक्षिण में ईसाइयों और मुसलमानों को सारी सड़कों पर फिरने का अधिकार है परन्तु शूद्रों को नहीं, मुसलमान और ईसाई हिन्दुओं के मन्दिरों में दर्शक वन कर जा सकते हैं परन्तु शूद्र नहीं, मुसलमान और ईसाइयों से हिन्दु हाथ मिलातें हैं वो प्रायः उन से हाथ मिलाने में अपना सौभाग्य समझते हैं परन्तु हिन्दु शूद्रों से ऐसा बर्ताव करने से

वे पतित हो जाते हैं ! विचित्र बात यह है कि इन शूद्रों को हिन्दुओं की ऊंची जातियां उस ही समय तक घृणा की दृष्टि से देखती हैं जिस समय तक वे हिन्दु रहते हैं परन्तु उन्हीं शूद्रों से वे अच्छा वर्ताव करने लग जाती जूंहि कि वे अपना धर्म्म त्याग कर मुसलमान या ईसाई हो जाते हैं, इसका प्रत्यक्ष यही अभिप्राय है कि एक मुसलमान या ईसाई हुआ २ शूद्र हिन्दु शूद्र की अपेक्षा अच्छे सलूक का पात्र है। जिस जाति के भिन्न विभागों में ऐसा सलूक हो और ऐसे २ अत्याचारों को ठीक समझा जावे उसमें, जब तक इन अत्याचारों को दूर न किया जावे एकता होनी असम्भव है।

इस वास्ते हिन्दुयों की ऊंची जातियों का यह मुख्य कर्तव्य है कि वे अपने अभिमान तथा अस्मिता को कम करके इस अन्याय को दूर करें। प्राचीन शास्त्रों के पढ़ने तथा पुराने इतिहास के देखने से विदित होता है कि प्राचीन आर्य ऐसे ज़ालिम न थे। उस समय शूद्रों को अपनी स्वकीय योग्यता सुजनता तथा धर्म्म भाव से उच्च पद को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था, और बहुतसों ने यह उच्च पद प्राप्त भी किया इसी प्रकार द्विज लोग भी अपनी अयोग्यता, क्षुद्रता और अधर्म्म से नीच अवस्था को पहुंच जाते थे, क्योंकि यही न्याय था। इस पुस्तक में पुराने शास्त्रों के प्रमाणों और पुराने इतिहास से यह दर्शाया गया है कि प्राचीन समय में जात पांत के बन्धन ऐसे कड़े न थे जैसे अब हैं और उनकी बुनयाद गुण कर्म्म और स्वभाव पर थी, यदि हिन्दुओं की यह इच्छा है कि शूद्र हिन्दु समाज के अन्दर बने रहें और उन से निकल कर मुसलमान या ईसाई न हो जावें तो उनको अवश्यमेव यह करना होगा कि वे शूद्रों को धार्मिक शिक्षा दें और उन में ऐसा धार्मिक बल उत्पन्न करें जिनसे वे जाति

के दूसरे विभागों की सदृश धर्मात्मा बन कर जाति और धर्म्म की रक्षा करने के काम में भाग ले सके—

धर्म्म किसी मनुष्य का दाय भाग नहीं है । कुछ धार्मिक संस्कार चाहे किसी मनुष्य को दाय भाग में मिल जावें परन्तु बहुत करके धर्म्म प्रत्येक मनुष्य की अपनी कमाई है इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य का यह हक है कि वह जितना धर्म धन चाहे कमावे, किसी को कोई अधिकार नहीं कि वह धर्म्म का द्वार किसी दूसरे पर बन्द करदे ।

जिस धर्म्म के प्रचारक अपने धर्म का द्वार किसी मनुष्य पर बन्द कर देते हैं केवल इस कारण से कि वह एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ है जो उनकी दृष्टि में नीच और शूद्र है वे प्रचारक अपने धर्म को धर्म के सिंहासन से गिराते हैं और उसका अपमान और उसकी हानि करते हैं ।

जिस प्रकार परमात्मा का द्वार सारी सृष्टि के लिये खुला है और प्रत्येक मनुष्य अपने मन को उनके चरणों में समर्पण करने से जात पात रंग रूप की विवेचना के बिना उनके पास पहुंच सकता है उसी प्रकार धर्म जो परमात्मा का स्वरूप है या परमात्मा के स्वरूप जानने का साधन है सब के लिये खुला होना चाहिये जो चाहे उससे लाभ उठावे, उन मनुष्यों में जो जन्म, या जाति रङ्ग अभिमान में उन्मत्त हैं सच्चे धार्म्मिक भाव नहीं आसकते ! सच्चे धार्म्मिक भाव वाले मनुष्य में किसी हद तक अपनी सचाई और स्वकीय सुजनता का अभिमान होसक्ता है जिसको अंग्रेज़ी में सैल्फ रेस्पैक्ट (Self-respect) कहते हैं परन्तु उस में जन्म या जाति या रङ्ग या धन का अभिमान नहीं होसक्ता ! ऐसा अभिमान धार्म्मिक भाव का विरोधी है ।

जातीय उन्नति के एक और नियम का मैं यहीं प्रकाश करना चाहता हूं वह यह है कि जातीय बल के वास्ते आवश्यक है कि उस में अति ऊंचे या अति धनाढ्य मनुष्य कितने ही हों परन्तु अति नीच अथवा शूद्र या दुर्बल आदमी कम हों ! जातीय उन्नति का यह रहस्य है कि उन में अधिक संख्या (Middle Classes) मध्य श्रेणी वाले मनुष्यों की हो और छोटी श्रेणीयें अर्थात् (Lower Classes) बहुत कम हों। जिस जाति को सामाजिक बनावट में इस बात के तो असंख्यात अवसर है कि उनकी (Lower Classes) अर्थात् शूद्रों की श्रेणियां बढ़ती जावें परन्तु इस बात का कोई अवसर नहीं कि मध्य श्रेणि में बढ़ती हो सके वह जाति कभी जाति भाव से उन्नति नही कर सकती—जातीय उन्नति का यह रहस्य है कि इस में से "Lower Classes" अर्थात् शूद्रों की संख्या दिन प्रति दिन कम होती जावे और (Middle Classes) की संख्या बढ़ती जावे ! इसका यह अभिप्राय है कि (Lower Classes) में शूद्रों को यह अवसर दिया जावे कि वे उन्नति करके न्यून से न्यून वैश्य बन सकें ! इनमें से विशेष योग्यता और गुण सम्पन्नता रखने वाले निःसन्देह ब्राह्मण और क्षत्रिय बन जावें परन्तु यह हक़ प्रत्येक का होना चाहिये कि यह उन्नति करता हुआ कम से कम वैश्य तो अवश्य मेव बन सकें ! पश्चिमी जातियें आज इस यत्न में लगी हुई हैं कि अधिक धनाढ्य श्रेणियों को कम किया जावे और उनके धन का आधार भूत "Lower Classes" अर्थात् नीच मज़दूरी करने वाली श्रेणियों को उठाकर किया जावे।

हमको कम से कम यह चेष्टा तो अवश्य करनी चाहिये कि हमारे शूद्र शूद्र अवस्था से निकलकर द्विज बन जावें मैं अपने सह जाति हिन्दु भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि वे मनु महाराज की उस

व्यवस्था पर विचार करें कि "जिस जाति में शूद्रों की संख्या अधिक हों और द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य) की संख्या कम हों उस जाति में दुर्भिक्ष और उड़कर लगने वाले रोग अर्थात् ताऊन फैल जाती है" यह व्ययवस्था बिलकुल सचाई पर निर्धारित है। जिस जाति में विद्या हीन और मैले मनुष्यों की संख्या अधिक होगी और विद्वान्, धर्म्मात्मा और स्वच्छ रहनें वाले मनुष्यों की संख्या कम होगी उस में अधिक संख्या की मूर्खता और अपवित्रता का परिणाम अवश्य दुर्भिक्ष और ताऊन होगी ! दुर्भिक्ष और ताऊन का प्रतिकार करने वाले विद्या धर्म्म, धन और पवित्रता है। धन और पवित्रता दोनों का आधार विद्या और धर्म्म पर है। शूद्र उस मनुष्य को कहते हैं जो विद्या हीन हो और धर्म्म के संस्कार न करता हों इस वास्ते देश में से दुर्भिक्ष और ताऊन को दूर करने का एक बड़ा उपाय यह है कि शूद्रों को विद्या और धर्म्म का दान देकर द्विज बना दिया जावे।

गत मर्दुमशुमारी के कागजों को जिन लोगों ने पड़ताल किया है वे लिखते हैं कि हिन्दुस्थान में ५ करोड़ से अधिक ऐसे हिन्दु हैं जिनके साथ कोई हिन्दु नहीं छूता, सामाजिक व्यवहार का तो कहना ही क्या ? इनके अतिरिक्त ऐसे शूद्रों की संख्या भी बहुत बड़ी है जिनको हमारे पौराणिक भाइयों के मतानुकूल वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं यदि हिन्दुओं की कुल आबादी में से इन अछूत जातियां तथा शूद्रों को निकाल दिया जावे तो फिर ज्ञात हो जावेगा कि शूद्र कितने कम हैं, और इस देश में बार २ दुर्भिक्ष और बीमारी पड़ने का यही कारण है कि इस में द्विज लोग कम हैं और शूद्र अधिक हैं।

इसके आतिरिक्त एक और सबल सिद्धान्त है जिस पर इस पुस्तक में विचार किया गया है वह प्रायश्चित्त का विषय हैं। प्राचीन हिन्दु शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान भिन्न २ है। समयानुकूल प्रायश्चित्त विधि भी बदली गई है, परन्तु जब तक हिन्दुओं में धार्मिक तथा राजनैतिक बल रहा उन्होंने किसी विदेशी या अनार्य्य को धर्म्म दान देकर अपने अन्दर मिलाने से इनकार नहीं किया और यह तो असम्भव ही था कि वे पतितों को वापिस लेने से इनकार करते मुसलमानों के राज्याधिकार के दिनों में पहले पहल यह नियम बनाया गया था कि जो मनुष्य मुसलमान हो जाता था उसको वापिस नहीं लिया जाता था। प्रतीत ऐसा होता है कि इस नियम के चलाने का कारण उस समय की आवश्यकता थी परन्तु आज कल की आवश्यकता बतला रही है कि यदि हिन्दु इन दिनों में भी उसी नियम पर कटिबद्ध रहें जिस पर कि मुसलमानों के दिनों में थे तो इनका सामाजिक बल बहुत कम होजावेगा और क्रोड़ों हिन्दु इन से अलग हो जावेंगे।

इस समय दो धार्म्मिक समुदाय देश में हिन्दुओं के विरुद्ध काम कर रहे हैं अर्थात् मुसलमान और ईसाई। मुसलमान अपने धर्म के इतने अनुरागी हैं कि वे नये मुसलमान का विशेष सन्मा करते हैं। और सदा सब प्रकार स्वधर्म की शिक्षा देकर वा प्रचार करके मुसलमानों से भिन्न अन्य धर्मावलंबियों को मुसलमान बनाने के लिये उद्यत हैं। मुसलमानी धर्म्म में जात पांत का बन्धन नहीं और यह धर्म बल पूर्वक इस बात की शिक्षा देता है कि सब मुसलमान भाई हैं और बराबर हैं यद्यपि हिन्दुस्तान के मुसलमानों में जात पात का भेद पाया जाता है परन्तु वास्तव में यह मुसलमानी धर्म्म की शिक्षा के विरुद्ध है। परन्तु नये मुसलमान हुए

मनुष्यों पर इसका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। मुसलमान होते ही प्रत्येक पुरुष को प्रत्येक मसजिद में नमाज़ पढ़ने और मुसलमानों की श्रेणी में खड़ा होने का अधिकार होजाता है। मुसलमान लोग नये हुए मुसलमानों से असाधारण रीति से प्रेम प्रकट करते हैं उनके लिये खान पान के पदार्थ सब पहुंचा देते हैं। उनके विवाह करा देते हैं। उन्हें सब प्रकार से सहायता करते हैं। जिसका परिणाम यह है कि हज़ारों की संख्या में हिन्दू नर नारियें मुसलमान होती जाती हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू अपनी विधवाओं पर इतनी कठोरता करते हैं कि इनमें से कई मुसलमान होजाती हैं। और इस प्रकार उस कठोरता से छुटकारा पाती हैं जो हिन्दू रहने की अवस्था में उनके साथ होती हैं। बीस वर्ष पहले बंगाल में हिन्दू अधिक थे और मुसलमान कम। परन्तु इन बीस वर्षों में मुसलमानों की संख्या हिन्दू बंगालियों से बहुत अधिक होगई। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी मुसलमानों की बृद्धि हिन्दुओं से बहुत अधिक है। गत मनुष्य गणना के अनुसार पञ्जाब में मुसलमानों की बृद्धि हिन्दुओं से प्रति शतक पांच गुणा अधिक थी। यही दशा अन्य प्रान्तों की है। इस दशा में यदि हिन्दू अपने मुसलमान हुए २ भाइयों को सदा के लिये निकाल देंगे और उनमें से उनको जो लौटकर आना चाहें प्रायश्चित्त कराकर लेना स्वीकार न करेंगे तो एक समय आवेगा कि हिन्दू इस देश में से निर्मूल होजावेंगे।

यही भय हिन्दुओं को ईसाइयों से है। ईसाई इस देश में अपने धर्म प्रचार के लिये और इसको सर्वप्रिय करने के लिये असंख्य साधन वरत रहे हैं। हज़रत ईसा ने अपने शिष्यों से कहा कि सब जगत् में फैल जाओ और जिस तरह मैंने उपदेश दिया है, उसी तरह इसको फैलादो।

अपने नबी के इस उपदेश पर आचरण करते हुए ईसाई प्रचारक और पादरी सारे आर्यावर्त में फैले हुए हैं यहांतक कि पहाड़ों की कन्दराओं में और पर्वतों की चोटियों पर वे स्थान २ पर मिलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें धर्म भाव बहुत अधिक है और इस वास्ते अपने धर्म्म का प्रचार करने के वास्ते वे नाना प्रकार के दुःख सहन करते हैं बरसों घर से और नगरों से अलग रहते हैं एक २ प्रचारक अपने आपको दुनियां से काटकर ऐसा अपने काम में तन्मय होजाता है कि वह सैकड़ों और हज़ारों को ईसाई किये बिना दम नहीं लेते। वह प्रेम से लालच से और सेवा से सब भांति लोगों के मनों को अपनी ओर आकर्षित करता है और इन तीनों उपायों से अपने धर्म्म का महत्व लोगों के दिलों पर बैठाता है। संसार में गहरी फिलासफी के जानने वाले कम होते हैं लोग तो बाहर का प्रभाव देखते हैं। ईसाई अपना पाठशालाओं, अपने औषधालयों, अपने अनाथालयों और अपने गरीबखानों के द्वारा अपने धर्म्म का महत्व बच्चों और युवावस्था के लोगों के दिलों पर बैठाते हैं प्रथम तो वे उनका विश्वास अपने धर्म्म पर से हटाकर निर्बल कर देते हैं और फिर अपने प्रेममय प्रभाव से शनैः २ उनको अपनी ओर खैंच लेते हैं। कितने ही युवक ईसाई स्त्रियों तथा ईसाई लड़कियों की सभ्यता और बनाव चुनाओ को देखकर लट्टू होजाते हैं कई एक उदरपूर्णा के कारण पादरयों के शरणागत होजाते हैं। कई तो बहुत थोड़े से सांसारिक लाभ से ही आकर्षित होकर चले जाते हैं, बहुत से ऐसे हैं जिनमें निर्धनता और दरिद्रता ऐसे भाव नहीं छोड़तीं जिसे वे सच्चे धर्म्म की बारीक फिलासफी को समझ सकें, उनके वास्ते तो रोटी कपड़ा ही धर्म है और यदि इस रोटी कपड़े के साथ इनको विद्या

और स्त्री भी मिल जावे तो फिर तो कहना ही क्या? लाखों हिन्दू इस प्रकार ईसाई होते हैं, उनमें से बहुत से तो वापिस आने का नाम नहीं लेते क्योंकि आजकल हिन्दुपन में कुछ लाभ दीख नहीं पड़ता, परन्तु कई ऐसे भी हैं जो अपने किये पर पछताते हैं और अपने धर्म्म में वापिस आने की इच्छा प्रकट करते हैं, उनको हमारे भोले हिन्दु नहीं लेते। बहुत सी ईसाई स्त्रियें आज कल हिन्दुओं के घरों में लड़कियों और दूसरी स्त्रियों को शिक्षा देने के लिये जाती हैं और वे उन पर अपने धर्म का प्रभाव डालती हैं, निर्लज्ज हिन्दु प्रथम तो अपने बालक तथा बालिकाओं के लिये धार्म्मिक और सांसारिक विद्या का प्रबन्ध नहीं करते और दूसरे जब कोई भूल से अपने धर्म्म से पतित होजाता है तो फिर उसको वापिस लेने से इनकार करते हैं जिसका परिणाम यह है कि इन कारणों से भी हिन्दुओं की संख्या में बड़ी कम होती जाती हैं।

परन्तु इन सब बातों से अधिक आवश्यक यह बात है कि इन हानिकारक बन्धनों से हिन्दु धर्म्म पर हिन्दुओं की अपनी अश्रद्धा होती जाती है। जिस धर्म्म में यह शक्ति नहीं कि वह गिरे हुए को उठा सके, भूले हुए को सत्य मार्ग पर लासके जिस धर्म में ऐसा कोई मार्ग नहीं जिससे पतित उद्धार होसके जिस धर्म पें अपराध के क्षमा करने का कोई प्रबन्ध नहीं, जिस धर्म्म में पश्चाताप करने पर भी शुद्धि नहीं होसक्ती वह धर्म्म धर्म्म के उन आवश्यक अङ्गों से वञ्चित हैं जिनके बिना धर्म्म धर्म्म कहलाने का अधिकारी नहीं। इसका परिणाम यह है कि करोड़ों हिन्दु केवल नाममात्र के हिन्दु हैं और प्रतिक्षण अपना धर्म छोड़ने के लिये उद्यत रहते हैं।

इन दिनों में रेल गाड़ियों और जहाजों ने यात्रा को सुगम

कर दिया है, सांसारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के वास्ते हिन्दु-ओं को चाहिये कि वे अपने घरके कुए से निकल कर दुनियां को देखें और अन्य देशों में जावें चाहें विद्या सीखने के लिये चाहे व्यापार के वास्ते, इस वास्ते, समय के प्रवाह को देखकर यह असम्भव प्रतीत होता है कि हिन्दु जात पात को और छूत छात के उन बन्धनों को रख सकें जो अब तक उनके अन्दर चले आयें हैं। प्राचीन शास्त्रों में इस बात के बहुत प्रमाण मिलते हैं कि पुराने हिन्दुओं में खान पान और छूत छात की यह कठोरता न थी, वे लोग प्रत्येक मनुष्य को धर्म्म दान देते थे और प्रायश्चित्त कराकर अपनी सोसायटी में सम्मिलित कर लेते थे, यदि कोई मनुष्य अपने धर्म से गिर जाता था तो उसका भी प्रायश्चित्त कराकर फिर अपने पहले पद पर स्थापित कर देते थे। इस छोटी सी पुस्तक में शास्त्रों के यह सब प्रमाण इकट्ठे किये गये हैं। इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दुओं में इन भावों को फैलाया जावे ताकि उनको अपने शास्त्रों की आज्ञाओं का परिचय होजाये। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दु पबलिक पं० रामचन्द्र शास्त्री के इस परिश्रम का सन्मान करेगी।

लाहौर

२ अक्तूबर १९०९ लाजपतराय।

वेदोपदेश ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो वियौष्ठ संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्योऽन्यस्मै वल्गुवदन्त एतमध्रीचीनान्वः संमनस्कृणोमि ॥ ५ ॥ अथर्व ३ । ३० ।

बड़े बनो, समझ वाले बनो, मत बिछड़ो, सफल होते जाओ। एक साथ मिलकर एक धुरा को उठाओ, एक दूसरे के लिये मीठा बोलो, आओ मैं तुमको साथ चलने वाले और एक मन वाले बनाता हूं।

किसी ने सत्य कहा है कि:—

" नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्र नेमिक्रमेण " ॥

संसार की दशा सदा एकरस नहीं रहती।

जिस जाति का यह सिद्धान्त हो कि—

कर्म प्रधान विश्व रच राखा,
जो जस करे सो तस फल चाखा।

जिसने अपनी विद्या और तप से न केवल यह अनुभव ही किया हो कि:—

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ । अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं वर्ण मापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ आपस्तंब२।५।११।

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को उपलब्ध करता है। और अधर्माचरण से उत्तमवर्णी नीच बनजाता है, प्रत्युत अपने अनुष्ठान से दर्शाया कि:—

यात्यधोऽधो व्रजत्युच्चैर्नरः स्वैरेवकर्मभिः। कूपस्यखनितायद्वत् प्राकारस्येव कारकः।। ई० सु० ४२।

मनुष्य अपने कर्म से ऊंचा और नीचा वन जाता है । जैसे दीवार चुनने वाला, और कूप खोदने वाला ।

जिसने उच्चस्वर से यह घोषणा दी कि :—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।। मनु० २।१६८।

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रस्यसधर्मिणो भवन्ति ।। वसिष्ठ० ध० सू० ३ । ३ ।

जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्यत्र प्रयत्न करता है । वह जीता ही पुत्र पौत्रादि सहित शूद्र होजाता है ।

जो ब्राह्मण के घर उत्पन्न होकर न वेद पढ़ते हैं, और न पढ़ाते हैं, न अग्नि आधान किये हैं वे शूद्र के वराबर हैं ।

जिसका यह सिद्धान्त हो कि :—

यस्तु शूद्रोदमेसत्ये धर्मे च सततोत्थितः । तं ब्राह्मणमहं मन्ये बृतेन हि भवेद्द्विजः ।।महाभारतवन०अ०२१६।

शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते । नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः।।

महाभा० शां०आ०१९

जो शूद्र गृहोत्पन्न दम, धर्म, और सत्य में आरूढ़ है मैं उसको ब्राह्मण मानता हूं । क्योंकि बृत्त से ही ब्राह्मण वनता है ।

यदि ब्राह्मण के लक्षण शूद्र में पाये जाते हैं, और शूद्र के

ब्राह्मण में तो वह शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं ।

शोक ! ! ! आज उसके अनुयायी कई एक सनातनधर्माभिमानी यह कहें कि एक भ्रष्टाचारी अव्रती ब्राह्मण कुमार ब्राह्मण ही रहेगा क्योंकि वह ब्राह्मण के घर जन्मा है ।

और एक सदाचारी ब्रह्मचारी दमी शूद्र, शूद्र ही बना रहेगा क्योंकि वह शूद्र वीर्य्य से उत्पन्न हुआ है ।

यह शास्त्र प्रतिकूल कपोल कल्पित सिद्धान्त न केवल उनकी अज्ञता और हठ धर्मी का परिचय देता है—प्रत्युत इसी पाप प्रचारक सर्वनाशक सिद्धान्त ने जहां ब्राह्मणों को विद्या हीन कर सर्व का तिरस्कारपात्र बनाया वहां साथ ही उन छोटी जातियों को सदा के लिये बढ़ने से रोका ।

और इसी से आर्य्य जाति का ह्रास हुआ, अतः युक्त प्रतीत होता है कि इस भ्रम जाल को काटने के लिये प्रथम (वर्ण परिवर्तन) नाम प्रकरण का आरम्भ किया जावे । क्योंकि यदि शास्त्रों से यह सिद्ध हो कि नीच ऊंच और ऊंच नीच बनसक्ते हैं, और सदा से बनते आये हैं, तो इस वर्तमान विवाद अर्थात् शुद्धि विषय की सिद्धि में भी सन्देह की इति श्री होजावेगी ।

(वर्ण परिवर्तन) ।

शास्त्रों का सिद्धान्त है कि (लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः) लक्षण और प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि होती है । इसलिये निरुक्त के कर्त्ता यास्काचार्य्य वर्ण की निरुक्ति करते हुए लिखते हैं, कि:—

(वर्णो वृणोतेः) नि० अ० २—खं० ३ ।

वर्णीया वरितुमर्हा गुणकर्म्माणि च दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते येते

वर्णाः। वर्ण को वर्ण इसलिये कहा जाता है, कि इसे मनुष्य गुणकर्म्म स्वभाव से प्राप्त करते हैं।

जब भारद्वाज मुनि ने भृगु जी से पूछा कि :—

ब्राह्मणः केन भवतिं क्षत्रियो वा द्विजोत्तम। वैश्यः
शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतांवर॥१॥ भा० शां० अ० १८९

हे द्विज श्रेष्ठ! कृपा करके मुझे बतावें कि किस कर्म्म से ब्राह्मण बनता है, और किस से क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बनते हैं। तब भृगु बोले—

जातकर्म्मादिभिर्यस्तु संस्कारः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः षट्सु कर्म्म स्ववस्थितः॥ २॥
शौचाचार स्थितः सम्यक् विघसाशी गुरुप्रियः।
नित्यव्रती सत्यपरः स वैब्राह्मण उच्यते॥३॥
सत्यंदान मथाद्रोह आनृशंस्यंत्रपा घृणा।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ ४॥
क्षत्रं च सेवते कर्म्म वेदाध्ययन संगतः।
दाना दान रतिर्यस्तु सवै क्षत्रिय उच्यते॥ ५॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्या दान रतिः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संगतः॥ ६॥
सर्वभक्षरति र्नित्यं सर्व कर्म्म करोऽशुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः सवै शूद्र इतिस्मृतः॥ ७॥

जो जातकर्म्मादि संस्कारों से संस्कृत पवित्र वेदाध्ययन में

तत्पर छः अर्थात् (अध्ययनाध्यापनादि) मनुप्रोक्त ब्राह्मण कर्म्मों में तत्पर) शौचाचार में स्थित, विघसाशी (यज्ञ शेष के खाने वाला) गुरुप्रिय व्रती और सत्यप्रिय है वही ब्राह्मण है। जिस में सत्य दान अद्रोह अनृशंसता लज्जा दया और तप देखे जाते हैं, वही ब्राह्मण है।

क्षत्रिय–जो क्षात्र कर्म्म (भयार्तों की रक्षा) करता है। और वेदाध्ययन भी करता है। और दान करता है लेता नहीं वह क्षत्रिय है।

वैश्य–जो वाणिज्य पशु पालन और कृषि कर्म्म में आसक्त है वेद को पढ़ता है, वह वैश्य कहा जाता है।

शूद्र–जो सर्व भक्षी–सर्व कर्त्ता–अपवित्र–वेद विहीन और आचार हीन है वह शूद्र है।

इसी की पुष्टि महाभारत वन पर्व अ० २१६ में इस प्रकार की गई है।

ब्रह्माणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्म्मसु दाम्भिको दुष्कृतः पापः, शूद्रेण सदृशो भवेत्। १
यस्तु शूद्रोदमे सत्ये धर्म्मेच सततो त्थितः तं ब्राह्मण महंमन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः। २

जो ब्राह्मण दम्भी पापी और पतित–दुष्कर्म्मों में लग जाता है वह शूद्र है, और जो शूद्र दम–धर्म्म–और सत्य में आसक्त है,मैं उस को ब्राह्मण मानता हूं–क्योंकि वृत्त से ही ब्राह्मण बनता है।

भारद्वाज मुनि ने भृगु जी से पूछा, कि–

कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णोविभज्यते। ७

स्वेद मूत्र पुरी षाणि श्लेष्मापित्ते स शोणितम्
तनुः क्षरति सर्वेषां—कस्माद्वर्णो विभज्यते । ८
जङ्गमानाम संख्येया स्थावराणां च जातयः तेषां
विविध वर्णानां कुतो वर्ण विनिश्चयः । ९ भा० शां०
अ० १८८

जब कि काम क्रोध लोभ मोह आदि हम सब में एक से पाये जाते हैं, तो फिर वर्ण विभाग कैसे ?

जब कि स्वेद मूत्र पुरीषादि सबके शरीरसे समान ही निकलते हैं तो फिर वर्ण विभाग कैसे ?

जब के जंगम और स्थावरादि असंख्य जातियें हैं इन का वर्ण विभाग कैसे ?

इस का उत्तर देते हुए भृगु महात्मा कहते हैं—

नविशेषोऽस्तिवर्णानां सर्वं ब्राह्म मिदं जगत्
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्म्मभि र्वर्णतां गतम् । १०

वर्णों में कोई विशेष नहीं क्योंकि प्रथम सब ब्रह्म से उत्पन्न किये सत्व प्रधान ब्राह्मण ही थे । परन्तु कर्म्म वश से भिन्न २ वर्ण बन गये । जैसे—

क्षत्रिय—काम भोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधना प्रियसा-
हसाः त्यक्तस्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां
गताः ११

उन्हीं ब्राह्मणों में से जो लोग काम प्रिय भोगी तीक्ष्ण स्वभाव

क्रोधी साहसी और ब्राह्म धर्म्म से कुछ फिसल कर युद्ध प्रिय हुए वे क्षत्रिय कहलाने लगे ॥

वैश्य–गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्यु पजीविनः
स्वधर्म्मान्ना नुतिष्ठन्ति तेद्विजाः वैश्यतांगताः ।

जिन ब्राह्मणों ने अपने धर्म्म को छोड़, गो सेवा कृषि और वाणिज्य धर्म्म स्वीकार किया, वे वैश्य कहलाये ।

शूद्र–हिंसा नृत प्रिया लुब्धाः सर्व कर्म्मोपजीविनः
कृष्णाः शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३

जो ब्राह्मण हिंसा युक्त मिथ्यावादी लोभी सर्व कर्म्म के करने वाले, और शौच से रहित हुए वे शूद्र कहलाने लगे ।

इत्येतैः कर्म भिर्व्यस्ता द्विजाःवर्णान्तरंगताः ।
धर्मोयज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ १४ ॥
इत्येते चतुरोवर्णाः येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
विहिता ब्रांह्मणा पूर्वं लोभाच्चाज्ञानतांगताः ॥१५॥

इन कर्मों से व्यस्त हो कर चारों वर्ण हुए–इन चारों को धर्म और यज्ञ कर्म्म में निषेध नहीं ॥

इस प्रकार यह चारों वर्ण हुए। इन चारों के लिये ही ब्राह्मी सरस्वती (वेदवानी) परमात्मा ने प्रदान की है परन्तु ये लोभ वश से अज्ञानी बन गये ॥

ब्राह्मणा ब्रह्मतंत्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति ।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ॥ १६ ॥
ब्रह्मचैव परंसृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः ।

तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्रहिजातयः ॥ १९ ॥
पिशाचाराक्षसाः प्रेताः विविधाः म्लेच्छजातयः ।
प्रनष्ट ज्ञान विज्ञानाः स्वच्छन्दाचार चेष्टिताः ॥१८॥

भा० शां० अ० १८८।

जो ब्राह्मण वेदों और व्रत को धारण किये हैं उनका तप नष्ट नहीं होता ॥

अय ! भारद्वाज वेद ही परम तप है—जो वेद नहीं जानते वह अद्विज हैं ।

और इन्हीं अद्विजों की इधर उधर अनेक जातियें देखी जातीहैं। और इन्हीं से राक्षस पिशाच म्लेच्छादिक की उत्पत्ति है ।

यदि कोई जाति पक्षपात में पड़ कर स्वार्थ लोलुपता से वर्ण व्यवस्था केवल जन्म से मानने लगती है, तो वह जल्दी अपने पद से गिर जाती और नष्ट भ्रष्ट हो जाती है । जब तक कि पुनः उस का संस्कार वा उद्धार नहीं किया जावे । क्योंकि भगवान् कृष्णचंद्र के कथनानुसार—

यःशास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्तते काम चारतः ।
नच सिद्धि मवाप्नोति न सुखं नपरां गतिम् ॥ भ० गी०

जहां शास्त्र मर्य्यादा का परित्याग होता है, और काम चारता प्रवेश करती है, वहां किसी प्रकार का भी कल्याण नहीं आसकता ।

यही कारण है, कि आज जन्म से ही जगद् गुरु कहलाने वाले वेदत्याग, नाना व्यसनों में आसक्त हो कर धर्म्मार्थ से रिक्त हो रहे हैं । परन्तु प्राचीन समय में जब कि सदाचार की प्रधानता थी जब कि

धर्म्म का राज्य था, उस समय यह दशा न थी। लोग नीच कर्म्म से भय खाते थे, और सत्कर्म्मों द्वारा उत्तम बनने का प्रयत्न करते और बनते थे। जिन के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं ॥

सत्य कामो ह जाबालो जबालां मातर मा मंत्रयां चक्रे " ब्रह्मचर्य्यं भवति ! विवत्स्यामि " किंगोत्रोऽहमस्मीति ?

सा हैनमुवाच 'नाहमेवं वेद तात ! यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे। साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि । जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि ॥

स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथा इति ॥

जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता जबाला से पूछा कि मातः मैं ब्रह्मचर्य वास करना चाहता हूं बता मैं किस गोत्र का हूं ! उस ने कहा पुत्र मैं यह नहीं जानती तूं किस गोत्र का है मैं इधर उधर फिरती थी, मैंने अपनी जवानी में तुझे पाया है सो मैं नहीं जानती तू किस गोत्र का है हां मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्यकाम सो तूं यही—कहो कि मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूं ॥

सहारिद्रुमतं गौतम मेत्योवाच ' ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तामिति ॥ ३ ॥

वह हारिद्रुमत (हरिद्रुमान के पुत्र) गौतम के पास आया और कहा भगवन् ! मैं आप के पास ब्रह्मचर्य वास करूंगा भगवन् मैं आप के पास आया हूं ॥

तꣳ होवाच 'किं गोत्रोनुसौम्यमिति, स होवाच नाहमेतद्वेद भो! यद्गोत्रोऽहमस्मि' अपृच्छंमातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीत् "बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवनेत्वामलभे। साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि। सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो! इति तꣳ होवाचनैतदब्राह्मणोविवक्तुमर्हति। समिधं सौम्याहरो पत्वानेष्ये न सत्यादगा इति॥

छांदोग्य प्रपा० ४–खं०४

गौतम ने उसे कहा कि सौम्य तूं किस गोत्र का है उस ने उत्तर दिया भगवन् मैं नहीं जानता कि मैं किस गोत्र का हूं। मैंने अपनी माता से पूछा था–उसने मुझे कहा कि इधर उधर फिरती हुई मैंने जवानी में तुझे पाया है सो मैं नहीं जानती तूं किस गोत्र का है हां मेरा नाम जबाला है तेरा नाम सत्यकाम सो हे भगवन् मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूं॥

तब उस ऋषि ने कहा यह बात अर्थात् ऐसी सचाई सिवाय ब्राह्मण के कोई नहीं कह सकता। जा सौम्य समिधा ले आ मैं तेरा उपनयन करूंगा क्योंकि तूं सचाई से नहीं गिरा है॥

२–एवं ऐतरेय ब्राह्मण २–१९ में कवष ऐलूष का इतिहास आता है।

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत। ते वै कवष मैलूषं सोमातनयय दास्याः पुत्रः कितवो ऽब्राह्मणः कथं नोमध्ये दीक्षिष्टेत्यादि॥

ऋषि लोग सरस्वती के किनारे यज्ञ करते थे । उन्हों ने कवष ऐलूष को यज्ञ से बाहर निकाल दिया क्योंकि वह एक तो दासी का पुत्र था दूसरा ज्वारी था पश्चात् इसने विद्या पढ़ने का व्रत धारण किया और संपूर्ण ऋग्वेद पढ़ते २ उसको नये २ विषय प्रकाशित होने लगे यह देख ऋषियों ने उसे यज्ञ में बुलाया और उसको आ-चार्य बना कर यज्ञ की विधि को पूरा कराया ।

और पीछे से यही कवष ऐलूष ऋग्वेद मं० १० अनु. ३ सू. ३०—३४ तक का ऋषि हुआ है ॥

पृषध्र गुरु और गौ के वध से शूद्र बन गया ।

३—पृषध्रस्तु गुरु गो बधाच्छूद्रत्वमगमत् ।

विष्णु० पु० ४—१—१४

नेदिष्ट का पुत्र नाभाग कर्म वश से वैश्य बन गया ॥

४—नाभागो नेदिष्ट पुत्रस्तु, वैश्यता मगमत् ॥

वि० ४—१—१६

वीतहव्य राजा भृगु के वचन से ब्रह्मर्षि बना ॥

५—भृगोर्वचन मात्रेण स ब्रह्मर्षितां गतः ।

भा० अनु० अ० ३०

युवनाश्व के पुत्र और—हरित हारीत हुए ।

वह सब अंगिरा गोत्र के ब्राह्मण बने ॥

६—विश्वामित्रोऽपिधर्मात्मालब्ध्वा ब्राह्मण मुत्तमम् ।
पूजयामास ब्रह्मर्षिंवसिष्ठं जपतां वरम् ॥

बा०रा०बा०स०६५

धर्मात्मा विश्वामित्र ने उत्तम ब्राह्मण पदवी पाई ॥ इत्यादि उदाहरणों से प्रकट होता है कि कर्म वश से वर्ण परिवर्त्तन होता रहा है ॥

म्लेच्छ यवनादिकों की उत्पत्ति और परिवर्तन ।

महाभारत शां. प. अ. १८८ श्लोक १८ में

भृगु वाक्य से यह दर्शाया गया है कि ब्राह्मण क्षत्रियादि चतुर्वर्णों से ही म्लेच्छ आदि वाह्य जातियों की उत्पत्ति है । इस की पुष्टि भारत-शांतिपर्व राजप्रकरण अ. ६५ मे इसप्रकार से की गई है ।

यवनाः किराताः गान्धारा श्चीनाः शवरबर्वराः शका-
स्तुषारा कङ्काश्च पल्लवाश्चा ध्र मद्रकाः ॥ १३ ॥
चौड्रापुलिन्दारमठा काम्बोजाश्चैवसर्वशः ब्रह्मक्षत्र
प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्चमानवाः ॥ १४ ॥

कि यवन (यूनान) किरात-कंधार चीनादि सम्पूर्ण जातियें ब्राह्मणादि चतुर्वर्णियों से ही उत्पन्न हुई हैं । अर्थात् क्रिया भ्रष्ट ब्राह्मणादिकों का ही नामान्तर है । यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि वेद ने (ब्राह्मणोस्येत्यादि-यजु., अ. ३१) गुणानुसार-चार वर्णों का उपदेश किया और मनु ने तदनुकूल यह सिद्धान्त किया—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णाद्विजातयः ।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजाति हैं चौथा

शूद्र एक जाति है, पञ्चवां वर्ण नहीं है। तो फिर यह म्लेच्छादि क्या हैं और कहां से आगये हैं। इसका उत्तर देते हुए मनु महाराज लिखते हैं—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः। बृष लत्वं गताः लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च॥ मनु० १०–४३
पौण्ड्रकाश्चोड द्रिवडाः काम्बोजा यवनाः शकाः
पारदापल्हवाश्चीनाः किरातादरदा खशः ॥४४॥
मुखबाहू रूपज्जानां यालोके जातयोवहिः। म्लेच्छ वाचाचार्य भाषा सर्वेते दस्यवः स्मृताः॥ ४५॥

यह क्षत्रिय जातियें ही उपनयनादि क्रिया के लोप होजाने से और (वेदवेत्ता) ब्राह्मणों के न मिलने से शनैः २ वृषल होगई (अर्थात् धर्म्म हीन होगई) और यवन म्लेच्छादि नामों से प्रसिद्ध होगई॥ आगे श्लोक ४५ में मनु बताते हैं, कि ब्राह्मणादि वर्ण ही क्रिया लोप से बाहिर की जातियें बनीं और वह जातियें, चाहे म्लेच्छ भाषा से युक्त थीं। या आर्य्य भाषा से, सब की सब दस्यु कहलाई। कुल्लूक भट्ट पौण्ड्रक आदि की व्याख्या करता हुआ लिखता है, कि—

पौण्ड्रकादि देशोद्भवाः क्षत्रियाः सन्तः क्रियालोपा दिना शूद्रत्वमापन्नाः।

यह पौण्ड्रादि देशोत्पन्न क्षत्रिय ही कर्म्म लोप से शूद्र बन गये।

न केवल क्रिया लोप से ही लोग म्लेच्छ बने, प्रत्युत इतिहासों के देखने से प्रतीत होता है, कि अनेक स्थानों में ब्राह्मणों ने

जुल्म से लोगों को म्लेच्छ बनाया ॥ विष्णु पु०—अंश ४ अध्याय ३ में लिखा है, कि त्रिशंकु की वंश में वाहू नाम राजा हुआ वह हैहय ताल जंघादिकों से शिकस्त खाकर अपनी गर्भवती स्त्री के साथ जङ्गल में भाग गया। और वहीं, औखा ऋषि के आश्रम के पास उसकी मृत्यु हुई। जब उसकी स्त्री—अपने आपको निराश्रय देख पति के साथ जलने लगी, तो औखा ऋषि ने उसको समझाया कि तुम मत जलो क्योंकि तुम गर्भवती हो तुम्हारे उदर से एक तेजस्वी पुत्र पैदा होगा जो शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्ती राजा बनेगा इस प्रकार समझा बुझाकर उसको अपने आश्रम में ले आया। कुछ दिन बाद उसके हां लड़का जन्मा ऋषि ने जात कर्म्मादि संस्कार करा उसका नाम सगर रक्खा। और विधि पूर्वक समयानुसार उपनयन संस्कार करा शास्त्र और शस्त्र विद्या की शिक्षा दे निपुण किया। जब वह लड़का ज्ञानवान् हुआ उसने अपनी मातासे अपना वंश और वन में आने का कारण पूछा। जब माता ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा—

ततश्च पितृराज्यहरणाय हैहयतालजङ्घादि वधाय प्रतिज्ञा मकरोत् ॥ २३ ॥

अथैतान् वसिष्ठो जीवन्मृतकान् कृत्वासगर माह वत्स! अल मेभिर्जीवन मृतकै रनुमृतै रेनैः च मये वत्वत्प्रतिज्ञा परिपालनाय निजधर्म्म द्विजसंग परित्याग कारिताः ॥ २५ ॥

तब उसने अपने पिता का राज्य वापस लेने के लिये शत्रुओं के मारने की प्रतिज्ञा की। जब उसने बहुत से हैहयताल जङ्घादिकों

का नाश किया,तब वह लोग अपनी रक्षार्थ,सगर के कुल गुरु वसिष्ठ की शरण में गये।

तब वसिष्ठ ने उनके जीवन्मृतक अर्थात् जीते ही मरे हुए करके सगर को कहा, कि पुत्र अब इन मरों हुओं को मत मारो। मैंने तुम्हारी प्रतिज्ञापूर्ति के लिये इनको अपने धर्म्म और द्विजों के संग से बाहर करदिया है। अर्थात् इनको जाति से बाहर कर दिया है।

स तथेति तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेशान्यत्वमकारयत्। यवनान् मुण्डित शिरसोऽर्द्ध मुण्डान् शकान्प्रलम्बकेशान् पल्हवांश्चस्मश्रुधरान् निःस्वाध्यायवषट् कारान् एतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार। ते चात्म धर्म्म परित्यागात् ब्राह्मणैश्च परित्यक्ताः म्लेच्छतां ययुः॥ २६॥

तब सगर ने अपने गुरु के वचन को स्वीकार करके उनके वेशों में परिर्वतन कर दिया, जैसे किसी का सिर मुंडवा यवन नाम दिया किसी के केश रखवा दिये और शव नाम रक्खा और किसी की दाढ़ियें रखवा दीं, उनका पल्हव आदि नाम रखा और उन सब को स्वाध्याय आदि से बाहर कर दिया। इस प्रकार वह सब अपने धर्म के त्याग तथा ब्रह्मणों के त्याग से म्लेच्छ होगये। इत्यादि प्रमाणों से न केवल यह ही सिद्ध होता है, कि ब्राह्मण ही केवल कर्म्म भेद से क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बने प्रत्युत निस्सन्देह यह भी मानना पड़ता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ही ब्राह्मणों के अदर्शन तथा क्रिया लोप से म्लेच्छादि जातियें बनीं। और आर्य्यों से बाहिर की गईं॥

अब देखना यह है, कि इनका अर्थात् म्लेच्छादिकों का पुनः परिवर्तन कैसे होता है । परन्तु इस से प्रथम यह बात याद रखनी चाहिये कि द्विज का अर्थ, दो जन्मों का है जो कि उत्पत्ति और यज्ञोपवीत संस्कार से मिलते हैं । जैसा कि धर्म्म शास्त्रकारों ने—

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जी बन्धनात् ।
ब्रह्म क्षत्रिय विशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥

मनु० २–३९ प्रतिपादन किया है ॥

इसी द्विजत्व अथवा यज्ञोपवीत संस्कार के लिये जिसके बिना कोई द्विज बन नहीं सकता ऋषियों ने भिन्न २ समय नियत किये जैसा कि—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ मनु २।३६

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नाति वर्त्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धो रा चतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥

अत ऊर्द्ध त्रयो ऽप्येते यथाकालम संस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिताः॥३९॥

गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण कुमारका, गर्भ से एकादश वर्ष में क्षत्रिय और द्वादश में वैश्य का उपनयन संस्कार हो । सोलह वर्ष पर्य्यन्त ब्राह्मण की बाईस वर्ष पर्य्यन्त क्षत्रिय चौबीस वर्ष पर्य्यन्त वैश्य की सावित्री नहीं जाती । अर्थात् यज्ञोपवीत कालकी यह परमा वधि है ।

इसके उपरान्त (यज्ञोपवीत न होने से) सावित्री पतित हो जाते हैं तब उनकी संज्ञा व्रात्य होती है और वे आर्य्यों में निन्दित गिने जाते हैं।

इस पर एक व्यवस्था रणवीर कारित प्रायश्चित्त से उद्धृत की जाती है ताकि पाठक स्वयं अनुभव कर सकें कि किस प्रकार एक द्विजाति यज्ञोपवीत के न होने से निकृष्ट जाति वनजाता है, और पुनः कैसे उच्च होता है। देखो रणवीर कारित० प्रा०प्र० १२ पृ० ९७।

अथ व्रात्यता।

व्रात्य इति—व्रात शब्दादि वार्थे य प्रत्ययेन निष्पन्नः, यद्वा व्रात मर्हतीति-व्रातं नीचकर्म 'दण्डादिभ्योय' इति व्रात्यः। शरीरायासजीवी व्याधादिकोऽष्टाविंशति संस्कारहीनो भ्रष्टगायत्रीकः। षोडशवर्षादूर्ध्वमप्यकृत व्रतबन्धो दानाद्यकर्त्ता द्विजो व्रात्य इत्यमर टीका राजमुकुटी।

(व्रातच्फञोरस्त्रियाम्) इति सूत्रे कौमुद्यांतु नाना जातीया अनियतवृत्तयः।

उत्सेधजीविनः संघा व्राता इति।

व्रात्यानाहमनुः

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्य व्रतांस्तुयान्।
तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्॥
मनुः १०—२०।

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्माभूर्जकण्टकः
आवन्त्यवाढ धानौच पुष्यधः शैख एवच। २१।
झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिवि रेवच।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एवच । २२।
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात् सुधन्वाचार्य एवच।
कारुषश्च विजन्माच्च मैत्रः सात्वत एवच । २३।

अब व्रात्य का प्रायश्चित्त कहने वास्ते पहले व्रात्य शब्द का अर्थ करते हैं व्रात्य इति। व्रात शब्द के परे सादृश्य अर्थ में "य" प्रत्यय आने से व्रात्य शब्द सिद्ध हुआ।

दूसरा अर्थ–व्रात जो है नीचकर्म तिसके योग्य जो होवे (दण्डादिभ्योयः) इस सूत्र करके "य" प्रत्यय आया तव व्रात्य सिद्ध हुआ। सो किसका नाम है कि शरीर के आयास करके जीवका करनेवाले (जो व्याधादिक) भारवाहक हैं अठाईस संस्कारों से भ्रष्ट और सोलह वर्ष से उपरान्त नहीं हुआ यज्ञोपवीत जिसका और दानादि के न करने वाला जो द्विज तिसका नाम व्रात्य है। यह अमर कोष की राजमुकुटी टीका में लिखा है। (व्रातच्फजोरस्त्रियाम्) यह जो कौमुदी का सूत्र है इसमें वहुत जाति वाले और नहीं है नियम करके वृत्ति जिनकी अर्थात् कभी भारका कर्म करना कभी लकड़ी का वा चर्म का काम करना और शरीर करके जीविका करने वाले इनका जो समूह है तिसको व्रात्य कहते हैं।

तैसेही 'व्रातेन जीवति' इस सूत्र से व्रात क्या शरीर से आयास करके जीविका करता है बुद्धि करके जीविका न करे यह अर्थ है।

"व्रातेन जीवति" इस सूत्र में महाभाष्य का भी प्रमाण कहते हैं (व्रातमित्यादिना) अब व्रात्यों को मनु जी कहते हैं जो ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य समान जाति की स्त्री में व्रतरहित उत्पन्न होवें और गायत्री भ्रष्ट होवें उनका नाम व्रात्य है और उनसे आगे निम्न संज्ञिक सन्तान उत्पन्न होती है ।

व्रात्य ब्राह्मण से तुल्यजाति की स्त्री में जो सन्तान उत्पन्न हो उसका नाम भूर्जकण्टक है। तथा आवन्त्यवाट, पुष्पध, शैख यह एकही देश भेद से प्रसिद्ध नाम हैं ।

व्रात्य क्षत्रिय से समान जाति की स्त्रियें उत्पन्न होने का नाम झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस, द्रविड़ है ।

व्रात्य वैश्य से समानजाति की स्त्री में उत्पन्न सन्तान का नाम सुधन्वाचार्य, कारूष, विजन्मा, मैत्र, सात्वत हैं इस लेख से पाठकगण स्वयं जान गये होंगे कि पूर्वोक्त व्यवस्थानुसार चर्मकार तथा नट आदि भी व्रात्य हैं जिनको स्मृतिकारों ने अन्त्यज माना है। इत्यादि व्यवस्था बतलाकर आगे प्र० पृ० १०३ में इनकी शुद्धि का वर्णन करते हुए आपस्तम्ब सूत्र में व्यवस्था दी है कि :-

" यस्य प्रपितामहादे रूपनयनं न स्मर्यते, तत्रार्थादे तेषामपि पुरुषाणामनुपनीतत्वं' ते सर्वेश्मशानवद शुचयः तेष्वागतेष्वभ्युत्थानं भोजनंच वर्जयेत् आपद्यपि नकुर्य्यादित्यर्थः । तेषां स्वयमेव शुद्धि मिच्छतां प्रायश्चित्तानन्तर मुपनयनम् ।

जिनके प्रपिता मह आदि से यज्ञोपवीत न हुआ हो, उनको भी अनुपनीतत्व है, वह श्मशान के तुल्य अपवित्र हैं, इनके आने पर खड़ा होना अथवा उनसे खान पान आपत्ति में भी नहीं करना चाहिये। यदि वह अपनी शुद्धि की इच्छा करें तो उनको प्रायश्चित्त कराकर यज्ञोपवीत दे देना योग्य है।

तत ऊर्ध्वं प्रकृतिवत् १—आपस्तंब—१.—१.—२।

और प्रायश्चित्त के अनन्तर प्रायश्चित्ती अपनी प्रकृति अर्थात् अपने असली वर्ण को प्राप्त करता है। और इसके सम्पूर्ण कर्म प्रथम वर्ण के होते हैं।

यही आज्ञा मनुः ११.—१.८८ में पाई जाती है।

"सर्वाणि ज्ञाति कर्म्माणि यथापूर्वं समाचरेत्"

शुद्ध हुआ पुरुष पहिले की तरह अपने वर्ण के कर्म करे।

इसी नियम अनुसार भारत के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने रणवीर कारित प्रायश्चित्त में इन सब वाह्यजातियों की व्रात्य संज्ञा मानकर व्रात्य प्रायश्चित्त से ही शुद्धि की व्यवस्था दी है देखो रणवीर प्रका० प्रा० प्र० १.२।

उपपातक शुद्धि स्यादेवं चान्द्रायणेन वा।
पयसा वापि मासेन पराकेणाथवा पुनः ॥

या० प्रा० प्र० ५

याज्ञवल्क्यजी का सिद्धान्त है कि इसी प्रकार अर्थात् गो-वध आदि के तुल्य सम्पूर्ण उपपातकियों की शुद्धि एक मास पर्यन्त पंचगव्याशन, चान्द्रायण, वा मासभर दुग्धपान अथवा पराक व्रत

से होती है। इसप्रकार मिताक्षराकार व्यवस्था देता है कि :-

एतच्चा कामकारे शक्त्यपेक्षया विकल्पितं व्रत चतुष्टयं द्रष्टव्यम्। कामचारे चाह मनुः

एतदेव व्रतं कुर्य्यादुपपातकिनो द्विजाः।
अवकीर्णिवर्ज्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायण मथापिवा।

यह अज्ञान से करने वालों के लिये शक्त्यनुसार चार विकल्पित व्रत अर्थात् इनमें से शक्ति देखकर कोई एक व्रत करावें। इच्छा पूर्वक उक्त पाप करने से मनु कहता है कि उपपातकी बिना अवकीर्णि के अपनी शुद्धि के लिये त्रैमासिक व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करें।

यदि मनु के कथनानुसार यह सत्य है कि सम्पूर्ण जातियें क्रियाहीन द्विजाति ही हैं। और यदि यह सत्य है कि नट आदि गायत्री भ्रष्ट द्विजों की व्रात्यसन्तान है। तो यह भी सत्य है कि:-

(तेषां स्वयमेव शुद्धि मिच्छतां प्रायश्चित्तानन्तर मुपनयनम्)

आपस्तम्ब—१।१।१।१।

यदि वे अपनी शुद्धि की इच्छा करें तो उनको प्रायश्चित्त कराकर यज्ञोपवीत दे देना चाहिये।

यदि विष्णुपुराण के कथनानुसार यह सत्य है कि :-

क्षत्रियाश्चते धर्म परित्यागाद्ब्राह्मणैश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः ॥ (वि० प्र० ४।३)

यह सब क्षत्रिय अपने धर्म के त्याग, और ब्राह्मणों के त्याग से म्लेच्छ बनें। तो क्या यह सत्य नहीं कि भारतवर्ष की वर्त्तमान सूरी, सेठी, चड्ढे, पगाहे, स्याल, सैणी, माली, मलखान,

राजपूत, गुज्जर, डोगर, कम्बोह, बढ़ई, काछी, कोली, नाई, छीबे, खखे, बबे आदि मुसलमान जातियें औरङ्गजेब आदि मुसलमानों के जुल्म से अपना धर्म छोड़ मुसलमान बनी ? यदि बनी हैं अथवा बनाई गई हैं तो क्या ऋषियों की आज्ञा नहीं ? कि :—

देशभङ्गे प्रवासेच व्याधिषु व्यसनेष्वपि ।
रक्षे देव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥

(पराशर ७ । ४१)

देश के उपद्रव, प्रवास, व्याधि और व्यसन (मुसीबत) में येन केन प्रकार से अपने शरीरादि की रक्षा करे, पीछे शान्ति के समय में धर्म (प्रायश्चित्त) करले ! क्या इसी का प्रायश्चित्त ऋषि ने नहीं बताया ? कि :—

तेषां प्रायश्चित्तं मासं पयोभक्ष्यं गामनुगच्छेत् ।
यश्चीर्ण प्रायश्चित्तस्तं बसिष्ट ब्रते रूपनयेयुः ।
यथा प्रकृतिर्ऋतुछन्दो विशेषात् ॥ (हारीतः)

देश के उपद्रव आदि से जिनका यज्ञोपवीत उतारा गया हो उनके लिये यह प्रायश्चित्त है कि वे मास पर्यन्त दुग्ध पान करें और गौ की सेवा करें पुनः यज्ञोपवीत धारण करें। जो पुरुष यम तथा हारीत की आज्ञानुसार मास पर्य्यन्त प्रायश्चित्त करले उसको वसिष्ठ के ब्रतानुसार यज्ञोपवीत डालना चाहिये । जैसी प्रकृति (अर्थात् जिस वर्ण से भ्रष्ट हुआ हो उसी के अनुसार ऋतु और छन्द हो, जैसे बसन्त यह ब्राह्मण का इत्यादि ।

३—क्या यह सत्य नहीं कि :-

बलाद्दासी कृतोम्लेच्छैश्चांडालाद्यैश्च दस्युभिः ।
अशुभं कारितं कर्म गवादि प्राणि हिंसनं । ९ ।
उच्छिष्ट मार्जनं चैव तथा तस्यैवभक्षणं ।
तत्स्त्रीणां तथा संगस्ताभिश्चसहभोजनं । १० ।
कृच्छ्रान्संवत्सरं कृत्वा सां तपनान् शुद्धिहेतवे ।
ब्राह्मणःक्षात्रियस्त्वर्धं कृच्छ्रान् कृत्वा विशुद्धयति।११।
मासोषितश्चरे द्वैश्यः शूद्रः पादेन शुद्धयति।।(देवतः)

जिनको म्लेच्छों वा चाण्डालादिकों ने वल से दास बना और उस से गौहत्या आदि नीच कर्म कराये हों उसने म्लेच्छों की जूठ मार्जन की हो, वा उनकी जूठ खाई हो, उनकी स्त्री साथ मैथुन किया हो अथवा साथ खाया हो, तो ब्राह्मण एक वर्ष कृच्छ्र सांतपनकर, क्षत्रिय छः मास कृच्छ्र सांतपन करके शुद्ध हो जाता है, वैश्य एक मास उपवासकर, और शूद्र चौथा भाग करके शुद्ध होजाता है ।

इसी शास्त्राज्ञा के अनुसार आर्य्य समाज पतित म्लेच्छादिकों को शुद्ध करता है । इसी नियमानुसार वर्त्तमान भारत राजपूत शुद्धि महासभा पतित मुसलमान (राजपूतों)को शुद्ध कर रही है। और इसी भाव से श्रीशङ्कराचार्य के मठाधीश जगद्गुरु ने भी व्यवस्था दी है कि जो परिवार किसी कारण से पतित हो दूसरों में आमिला हो-उसका परिवर्त्तन हो सकता है। और इसी के अनुसार इस समय न केवल साधारण सनातन धर्मी सहस्रों लबाणा आदि (मुसलमानों को शुद्ध करते हैं

प्रत्युत हर्ष से कहा जाता है कि वर्त्तमान सनातन धर्म्म महापरिषद् ने भी गत वर्ष १९०८ ई० में नासिक सनातन धर्म महा परिषद् में इस विषय की पर्यालोचना की जो प्रस्ताव उस सभा में पढ़ा गया पाठकों के उत्साह के लिये उसको उद्धृत किया जाता है ।

—:-०:-—

नासिक सनातनधर्म्म महापरिषद् में वक्तृता

* पतित परावर्त्तन *

जो हिन्दू विधर्मी होगये हैं उनको पुनरपि अपने धर्म्म में लेना ।

मान्यवर सभापति और सभासद् महाशया ! !

आप लोगों ने मुझे यह मन्तव्य प्रस्ताव करने का सन्मान दिया है कि जो हिन्दू विवश होकर विधर्मी होगये हैं उनकी शुद्धि कर पुनरपि उनको अपने धर्म्म में ले लिया जावे । विषय नितान्त गम्भीर उत्कृष्ट प्रयोजनीय और पूर्ण रूप से धार्म्मिक हैं । मैं इसकी प्रस्तावना में नितान्त अयोग्य एवम् अक्षम हूं तथापि समागत महाशयों के अनुग्रह बल से बलवान् किये जाने के भरोसे पर तथा इस कार्य को सम्पादन करने के लिये खड़ा किया गया हूं इस विचार से आप लोगों की आज्ञापालन करने को उद्यत हूं । प्रार्थी भाव से आप लोगों के सन्मुख यथा शक्ति निवेदन करता हूं, परन्तु मैं स्वयम् अक्षम हूं मुझ से त्रुटियां अवश्य होंगी आशा है कि आप लोग उनकी ओर ध्यान न देकर मुझे क्षमा करेंगे ।

जगत् के सभी वर्त्तमान अथवा पूर्वकाल के नये वा पुराने धर्म्म, देश और जातियों के इतिहासों में देखा जाता है कि किसी किसी धर्म्म, जाति देश पर कभी २ घोर विपत्ति आ पड़ती है। असंख्य मनुष्यों को विवश होकर अपना धर्म्म और स्वजन मंडल त्याग कर विधर्मी और विजातीय बनना पड़ा है। यद्यपि उनकी पर धर्म स्वीकार करने की इच्छा न थी। कण्ठगत प्राण होने पर हीं उनको इस दुर्दशा में पड़ना पड़ा है तथापि उनका धर्म बल पूर्वक उन से छीन कर उनको विधर्मी होना पड़ा है।

जिस समय मनुष्य निरुपाय होजाता है, अपना धर्म और अपनी जाति की रक्षा करने के लिये अपनी दृढ़ इच्छा, अपने प्राण और अपनी तलवार एक ही मुट्ठी में लेकर जोड़ बे जोड़ का भी ध्यान भूल जाता है उस समय उसको "मरों मारों" के सिवाय और कोई उपाय नहीं सूझता परन्तु तब भी सम्भवतः अपने को दूसरों से पराजित किया हुआ देखता है और विवश होकर उसको अपने धर्म और जाति के लिये तिलाञ्जली देनी पड़ती है पर धर्म अङ्गिकार करना पड़ता है पर जाति में सम्मिलित होना पड़ता है और घोर शोक सन्ताप घृणा दुःख का भागी बनना पड़ता है। एक वीर पुरुष इसके अतिरिक्त और क्या कर सकता है?

ऐसी दशा में उनके धर्म और जाति के लोग उनके सहायक होते हैं। समय और सुकाल उपस्थित होने पर उनको फिर भी अपनी जाति और धर्म में ले लेते हैं और इस प्रकार उनके स्वधर्माभिमान, भक्ति, और अनुराग की सच्ची प्रतिष्ठा, सहानुभूति और यथार्थ आदर कर वास्तविक स्वजनत्व, आत्मीयता, पौरुषेय उद्दार सौहार्द न्याय का परिचय देते हैं। " जातिगङ्गा गरीयसी " यह एक

सर्व मान्य लोकोक्ति है। अन्याय क्लेशित सजातीय के प्रति सहायता कर इस लोकोक्ति की अशेष मर्यादा को वे प्रत्येक्ष चरितार्थ करते हैं।

मान व जाति की न्याय सिंहासनासीना बुद्धि में भी यह बात नहीं आती कि एक निरपराध स्वजन को दूसरों के अपराध के कारण क्यों दण्डित किया जावे। स्वधर्म में उसकी श्रद्धा, बुद्धि और अनुराग रहते हुए तथा स्वजाति में उसका अनुराग और अभिमान करते भी यदि उसका धर्म उससे छूट गया है अथवा छुड़ा लिया गया है तो पीढ़ी दरपीढ़ी के लिये उसको धर्म और जाति से बाहर निकाल कर उसको ऐसा घोर कठोर और निष्ठुर दण्ड क्यों दिया जावे।

परन्तु साम्प्रति काल में हिन्दू जाति के भीतर यह प्रथा प्रचलित नहीं है। साम्प्रति काल में इसलिये कहता हूं कि अतः पूर्व पतित परावर्त्तन की प्रथा प्रचलित थी। जब जब हिन्दू धर्मावलम्बी कोई समूह धर्मच्युत हुआ है तब ही तब शुद्धि करने के उपरान्त वह पुनरपि हिन्दू मण्डल में अङ्गीकार किया गया है। मैंने शङ्कर दिग्विजय पढ़ी नहीं है परन्तु प्रचलित लोक कथा कई वार सुनी है, जिससे जाना गया है कि लाखों बौद्धों को भगवान् शङ्कराचार्य ने ग्रहण कर लिया था। ब्राह्म तेज पुञ्ज कुमारिल भट्टने भी ऐसा ही किया था।

टाड साहब अपने राजस्थान के इतिहास में कहते हैं कि एक बार हिन्दू साम्राज्य सिंहासन पर महा विपत्ति पड़ी थी। उस समय हूण और मीर आदि जातीय वंशोंने हिन्दू राजमुकुट की रक्षा करने के लिये तथा हिन्दू देश वंश और धर्म के अस्तित्व और मान मर्यादा

के लिये अपने प्राण दिये थे। कदाचित् उसी उपकार के बदले सत्कार वा प्रत्युपकार करते हुए हिन्दूनरनाथ चित्तौरनाथ ने इन्हें अपना बना लिया और हिन्दू राजवंशों के २६ प्रशस्त प्रमुख राजवंशों में इन की गणना की।

अस्तु वही बात अब भी है। अनेक हिन्दू राजवंश राजा महाराजा सेठ साहूकार प्रभुत्वशाली वर्तमान प्राचीन आचार्यों की अनेक गद्दियां अब भी हिन्दु धर्म पर अपना शासन और गौरव सम्पादन कर रही हैं। धर्म धुरन्धर महात्मा पण्डितगण आज भी प्रायः सर्वत्र उन्हें सविनीत मस्तक प्रणाम कर उनके आदेश की राह देखते हैं। अतएव समझ में नहीं आता कि ऐसा अवसर क्यों छोड़ा जावे। अपने धार्मिक और सामाजिक बल का कुछ कम प्रभाव नहीं है समाचारपत्र समुदाय की एक नयी और सार्वजनिक शक्तिकेन्द्र का आविर्भाव होने पर भी वृटिश गवर्नमेण्ट की शान्ति स्थापिक धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त साम्राज्य में भी हम लोग यदि इस विषय को नहीं उठावें तो फिर इससे अच्छा और कौनसा अवसर होगा।

हर्ष की बात है कि उस समय के लिये अब बहुत दिन तक ठहरना नहीं पड़ेगा। श्रीसनातन भारतधर्म महापरिषद् ने उस विषय को उठाया है और आशा है कि उस में पूर्ण सफलता होगी। अब यह देखना चाहिये कि शुद्धि के लिये कौन से समूह हैं और इसके प्रचार के लिये कौन कौन से उपायों का अवलम्बन करना होगा।

अभी थोड़े दिन हुए जोधपुर के राजपद प्रतिष्ठा प्राप्त विद्वद्वर मुंशी देवीसहायजीने एक पुरानी पुस्तक जोधपुर राज पुस्तकालय से प्राप्त कर उसका भाषानुवाद छपाया हैं। हमारे "भारतमित्र के" सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्तने इस पुस्तक की समालोचना की है।

इससे बहुतसी बातों का ज्ञान प्राप्त होता है। उसमें एक विषय यह भी है कि बहुतसे क्षत्रिय राजपूत आदि उच्च कुलके हिन्दू लोग मुसलमान बादशाहों द्वारा बलात् मुसलमान बनाये जाने से बचने के लिये और कुछ उपाय न देखकर सब जनेऊ उतार २ शूद्र बन गये और माली इत्यादि का काम करने लगे। राजपूताने में कई गांव ऐसे प्रशंसनीय हिन्दू धर्म्माभिमानी हिन्दू बंशों के हैं। इधर मथुराजी में बहुत से ब्राह्मण ऐसे ही कारणों से बढ़ई का काम करने लगे और बढ़ई होगये और अपने २ मूल द्विजातीय शाखाओं से सम्बन्ध छोड़ दिया।

ऐसे ही फिर मथुरा आगरा की ओर एक जाति "मलखान" नाम से प्रसिद्ध है। इन के गले में तुलसी की माला पड़ी है धोती कटि प्रदेश में विराज रही है। रामनाम मुँह में और हृदय में विराज रहा है। खाना पीना देखिये तो वही चौके में पीढ़े पर बैठे हुए हिन्दू रीति नीति से होरहा है। पर इन हिन्दू धर्माभिमानी वीरों से पूछिये कि कौन जाति हो तो कहते हैं कि मुसलमान हैं ? बेचारे हमारे वह भाई और क्या कहें जब उन्हें हम अपना नहीं कहते। वह हिन्दू होना भी चाहते हैं जिसके वह कुल बृक्ष हैं पर हम लोग उन्हें पराया ही रक्खा चाहते हैं अपनी ही सन्तान को मुसलमान रखना चाहते हैं तो वे और क्या बनें ?

उस समय सम्भव था कि हिन्दू जाति इनके इस स्वधर्म और स्वजाति के अभिमान और अनुराग का पुरस्कार उन्हें न दे सकी हो फिर वही धार्मिक सामाजिक पद प्रतिष्ठा मान गौरव और स्वत्वाधिकार न देने का कोई विशेष कारण हो। संभव हैं कि हिन्दूजाति ने यह सोचा हो कि यह बहादुर लोग जो छिप छिपाकर भी हिन्दू

बना रहना चाहते हैं और मुसलमानी बादशाही लालच में अथवा उसके धार्मिक समान पद प्रलोभन में आकर अपना धर्म छोड़ने की कायरता नहीं दिखलाया चाहते वह यदि पुनः अपने उस द्विजातीय पद मर्य्यादा प्रतिष्ठित और स्थापित कर दिये जांय तो उनका अभीष्ट ही न सिद्ध हो क्योंकि इस बात के प्रकाश होजाने पर उस समय के मुसलमान जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों को ढूंढ़ २ कर ज़बरदस्ती मुसलमान बना दिया करते थे इन बेचारों को भी द्विजाति जानकर हिन्दू न रहने देते और मुसलमान बना डालते । अस्तु हिन्दू जाति के अग्रणी लोगों ने ऐसे दुरवसर पर चुप रहना ही उचित और नीति युक्त समझा।

परन्तु अब वह बात नहीं हैं। बृटिश गवर्नमेंण्ट का सुराज्य है। बाघ बकरी एकही घाट पानी पी रहे हैं । क्या ऐसे अवसर में भी वह अपने इस पीढी दर पीढ़ी के स्वधर्माभिमान स्वजात्याभिमान का आदर प्रतिष्ठा हिन्दू जाति से न पावेंगे । उस समय जो द्विजाति हिन्दू मुसलमान होजाता था उसे बादशाह की ओर से उसकी हसियत से कई गुनी बड़ी सम्पत्ति जागीर वा नौकरी के रूप में दीजाती थी। इस धन का लोभ न कर, इसकी चिन्ता न कर द्विजाति से शूद्र बनकर भी उन लोगों ने अपना धर्म रक्खा अपने हिन्दू होने का अभिमान रक्खा । क्या यह थोड़े आत्मिक साहस (Courage) और थोड़े आत्मिक बल (Moral Force) का काम हैं ? प्राणी सभी तो योद्धा नहीं होते और न सब को युद्ध विद्या आती है कि लड़कर प्राण दे देते । अस्तु इनका आध्यात्मिक बल प्रशंसा और पुरस्कार के योग्य है। सुतरां अपने पूर्व्व पद गौरव में पुनः प्रतिष्ठित कर दिए जाने के अतिरिक्त और किसी प्रकार से

हमारी समझ में हमारी धर्म और न्याय वीर हिन्दू जाति उन के दृढ़ पुरुषार्थ वा उनके स्वधर्म भक्ति और ममत्व का सन्मान तथा प्रत्युतकार नहीं कर सक्ती ?

ऐसे शूरबीर पतितों को फिर से शुद्धिकर धर्म वा जाति में लेने की आज्ञा है—वा नहीं यह मैं नहीं जानता। मैं संस्कृत और धर्म शास्त्र से नितान्त अनभिज्ञ हूं और जो कुछ पण्डित गुरुजनों की सेवा में प्रार्थना कर रहा हूं—वह आप सब जानते हैं। परन्तु अनुमान ऐसा ही है कि ऐसा कोई प्रमाण अवश्य होगा। धर्म्मशास्त्र में लिखा है—कि ऐसी सवारी जिसमें एक सहस्र से अधिक लोहे के कीले कांटे लगे हों तो उसमें बैठकर खाने पीने से छुवा छूत का दोष नहीं लगता और पुरुष धर्म्मभ्रष्ट नहीं होता क्योंकि वह अशक्यता और विवशता की बात होजाती है। इसके अतिरिक्त आप लोग सब जानते हैं कि महर्षि विश्वामित्र ने एक समय दुर्भिक्ष पड़ने पर अन्न न मिलने पर चाण्डाल के घर जाकर कुत्ते का मांस खाकर प्राण रक्षा की थी। वह इतने बड़े ब्रह्मतेज पूर्ण तपोबल वाले थे कि वह चाहते तो अपने तपोबल से करोड़ों मन अन्न उपस्थित कर सक्ते थे अथवा अपने तपोबल से दो चार दिन क्या दो चार वर्ष बिना कुछ खाए पीए केवल वायु भक्षणकर प्राण रक्षा कर सक्ते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया और चाण्डाल के बतला देने पर भी तथा उसके निवारण करने पर भी कुत्ते का मांस खाकर ही अपने प्राणों की रक्षा करनी चाहा इसीलिए कि उन्होंने देखा कि ऐसा करने से कुछ हानि नहीं है न धर्म्म वा जाति से पतित होनाही है आपात्तिकाल में मनुष्य विवश होकर किसी प्रकार अपनी रक्षा करता है यह उसका स्वाभाविक नियम है; अस्तु जो काम मनुष्य

का साधारण वा स्वाभाविक नियम से निकल जाना सम्भव है उसके लिये तपोबल का प्रयोग करना वा धर्म की दुहाई मचाना मानो आडम्बरात्याचारका प्रचार कराने के लिये उदारण बनना है। जो सर्वदा ऋषियों को इष्ट नहीं है।

अस्तु जब द्वापर त्रेता मे ऐसा नियम सिद्ध होता है तो कलि-युग में जब कि प्रजा दिनों दिन दुर्बल होती जाती है तो क्या उसे दया शील विधि का अधिकारी होना अनुचित होगा ? फिर जब अन्याय और अत्याचार द्वारा बलात् विधर्म्मीय बनाया गया हो तो उसे पुनः अपने धर्म्म और जाति में स्थापित कर देना और भी न्याययुक्त बोध होता है। क्योंकि ऐसा न होने से जिज्ञासा देवी प्रश्न उठाती है कि किसने सचमुच अन्याय अत्याचार किया उस विधर्म्मीय उस पराए ने जिसने इसका जबरदस्ती इसका धर्म छुड़ा कर विधर्म्मीय बना दिया परन्तु "अपना" बना लिया ! अथवा इस स्वधर्म्मी स्वजातीय ने जिसने अपने एक स्वधर्मीय को अपनी जाति पांति में नहीं रक्खा क्योंकि (१) किसी पराए ने उसे बलात् "बेधर्म" कर दिया। (२) उसे पराया मानना आरम्भ कर दिया। यद्यपि वह बेचारा हिन्दू रहने के लिए उत्कण्ठित है और अपनी लाचारी से लाचार है। कहिये कौन अत्याचारी है हम स्वयं या वह विधर्मीय बिजातीय ?

निदान मैं अब अधिक दीर्घ सूचना अपनी बिनती में नहीं किया चाहता। और यह कहकर अन्त करता हूं कि आप महाशय गण ! पतितपराबर्त्तन पर ध्यान दें जिससे यह कार्य सफल हो। शक्तिकेन्द्र भी यही समझें कि हिन्दू सर्वसाधारण सच्चे धर्मानुरोध से सहानुभूति और कल्याणेच्छा से अपनी उन्नति के लिये उन

शक्तिकेन्द्रों से यह आशा लाभ करने के प्रार्थी हैं। इसलिये प्रत्येक पढ़े लिखे हिन्दू सन्तान का काम है कि कुछ आर्थिक सहायता करके श्री सनातन भारत धर्म परिषद् में एक फण्ड स्थापित करादे जिसमें उन उन शक्तिकेन्द्रों से लिखा पढ़ी आरम्भ करदें और काम पूरा पड़े। और उद्योग इस कार्य्य की सफलता के लिये करने पड़ेंगे उसे विशेष कमेटी स्थिर करेगी। इत्यलम्।

जय विजय नारायणसिंह बरांब। (वेङ्कटेश्वर)

पुराणों में १०सहस्र मुसलमानों की शुद्धि

इस समय जब कोई मुसलमान वा अङ्गरेज शुद्ध होता है तो कई एक धर्मानभिज्ञ लोग कह उठते हैं कि यह भ्रष्टाचार हैं अधर्म है इत्यादि।

उन लोगों को दर्शाने के लिये पुराणों का एक इतिहास उद्धृत किया जाता है, ताकि उन भोले हिन्दुओं को प्रतीत हो कि उनके पूर्बजों ने न केवल अपने देश में प्रत्युत दूसरे देशों में जाकर अपने पवित्र धर्म के प्रभाव से सहस्रों मुसलमानों को शुद्धकर शूद्र वैश्य और क्षत्रिय की पदवियें दी।

देखो भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व खं० ४ अ० २१।

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्र देशमुपा ययौ।
म्लेच्छान् संस्कृत्य चा भाष्य तदा दशसहस्रकान्।१६
वशी कृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्त्तेमहोत्तमे।
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टवुश्च सरस्वतीम्। १७
पञ्च वर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती।
सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णायचाकरोत्। १८

कार वृत्तिकराः सर्वे बभूवु र्बहुपुत्रकाः ।
द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्याः बभूविरे ।१९
तन्मध्ये चाचार्य पृथु र्नाम्ना कश्यप सेवकः ।
तपसा च तुष्टाव द्वादशाब्दं महामुनिम् । २०
तदा प्रसन्नो भगवान् कण्वो वेद विदांवरः ।
तेषां चकार राजानं राजपुत्र पुरं ददौ । २१

सरस्वती (विद्या) की प्रेरणा से कण्व ऋषि मिश्र देश में गया और वहां दश हजार म्लेच्छों को संस्कृत पढ़ा और अपने वशीभूत करके पवित्र ब्रह्मावर्त्त में लाया।

उन संस्कृत म्लेच्छों ने तप से देवी सरस्वती को प्रसन्न किया और पांचवें वर्ष प्रसन्न होकर देवी ने उनको शूद्र वर्ण दिया-अनन्तर उनमें से दो हजार को वैश्य की पदवी दीगई।

उनमें से एक पृथु नाम ने बारह वर्ष पर्य्यन्त आचार्य्य की सेवा की तब प्रसन्न हुए वेदवेत्ता कण्व ने उसको राजा (क्षत्रिय) बनाया और राजपुत्र नाम नगर दिया उसी का आगे मागध पुत्र हुआ जिससे मगधराज्य की नींव पड़ी।

इसी के श्लोक ही से जब कलियुग को ७०० वर्ष बीते तब बौद्धमत प्रवर्त्तक शाक्यसिंह का गुरु :—

नाम्नागौत्तमाचार्यो दैत्यपक्ष विवर्द्धकः ।
सर्व तीर्थेषु तेनैव यंत्राणि स्थापितानिवै । ३३
तेषां मध्ये गता ये तु बौद्धाश्चासन् समंततः ।
शिखा सूत्र विहीनाश्च बभूवुर्वर्ण संकराः । ३४

दशकोट्यः स्मृताः भार्य्याः बभूवुर्बौद्ध पन्थिनः।
पंच लक्षास्तदा शेषाः प्रययुर्गिरि मूर्द्धनि। ३५
चतुर्वेद प्रभावेन राजन्याः वान्हि वंशजाः।
चत्वारिंशि भवायोद्धास्तैश्चबौद्धाः समुझिता। ३६
आर्य्या स्ताँस्ते तु संस्कृत्य विन्ध्याद्रे दक्षिणे कृतान्।
तत्रैव स्थापया मासु वर्ण रूपान् समंततः।३७

गौतम आचार्य्य हुआ, उसने संपूर्ण तीर्थों पर मठ नियत किये। जो लोग उसके वश में गये सब बौद्ध होगये, और सब ने शिखा सूत्र का परित्याग कर दिया। इस प्रकार दस करोड़ आर्य बौद्ध बन गये। तब शेष पांच लक्ष आर्य जो बौद्ध नहीं बने थे वह आबू पहाड़ पर गये और वहां हवन किया (इसी के प्रथम खण्ड में विषय व्याख्या देखिये) वहां चतुर्वेद के प्रभाव से अग्नि वंशज राजाओं ने बौद्धों को काटा। इन पतितों को पुनः शुद्धकर और वर्णाश्रमी बनाकर आर्य धर्म में स्थित किया।

इसी के आगे श्लोक ४८ से बतलाया है कि जब आर्यावर्त्त में म्लेच्छों का राज्य होगया और म्लेच्छों ने भी बौद्धों के तुल्य।

यंत्राणि कारयामासुः सप्तष्वेव पुरीषु च।
तदधो येगता लोकास्सर्वेते म्लेच्छतांगताः। ५२
महत्कोलाहलं जातमार्याणां शोककारिणाम्।

सातो पुरी में अर्थात् जगन्नाथ आदि प्रसिद्ध नगरों में अपनी मसजिदें बनालीं जो उनके वश में आये म्लेच्छ बन गये तब तमाम आर्यों में एक कोलाहल मच गया।

श्रुत्वाते वैष्णवाः सर्वे कृष्ण चैतन्य सेवकाः ।
दिव्यं मंत्रं गुरोश्चैव पठित्वा प्रययुः पुरीः ।

तब बैष्णव धर्म्मानुयायी कृष्ण चैतन्य के सेवक अपने गुरु से योग्य शिक्षा लेकर सातों पुरियों में फैल गये ।

रामानन्दस्य शिष्योवै चायोध्याया मुपागतः ।
कृत्वा विलोमं तं मंत्रं वैष्णवास्तान कारयत् ॥
भाले त्रिशूल चिन्हं च श्वेत रक्तं तदाभवत् ।
कण्ठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता ॥
म्लेच्छा स्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्द प्रभावतः ।
आर्य्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे ॥

उनमें से रामानन्द का शिष्य अयोध्या में गया । और वहां म्लेच्छों के उपदेशों को खण्डनकर उनको वैष्णव धर्म्मी बनाया माथे में त्रिशूलाकार तिलक दिया । गले में तुलसी की माला पहरा राम नाम का उपदेश दिया वह सम्पूर्ण म्लेच्छ रामानन्द के प्रभाव से वैष्णव बने । और शेष आर्य अयोध्या में रहने लगे ।

निम्बादित्योगतो धीमान् स शिष्यः कांचिकांपुरीम् ।
म्लेच्छ यंत्रं राजमार्गे स्थितं तत्र ददर्श ह । ५८
विलोमं स्वगुरोर्मंत्रं कृत्वा तत्र सचावसत् ।
वंशपत्र समारेखा ललाटे कण्ठमालिका । ५९
गोपी बल्लभ मंत्रोहि मुखे तेषां रराज सः ।
तदधो ये गता लोका वैष्णवाश्च बभूविरे।

म्लेच्छाः संयोगिनो ज्ञेया आर्यास्तन्मार्गे वैष्णवाः।

बुद्धिमान् निम्बादित्य कांची में गया और वहांपर म्लेच्छों के विरुद्ध उपदेश कर और सब को अपने वश में करके वैष्णव वना आया। उनके मस्तक में वंश पत्र के तुल्य तिलक कण्ठ में माला तथा गोपी बल्लभ का मंत्र सिखाता हुआ और वह सब वैष्णव बने।

विष्णु स्वामी हरिद्वारे जगाम स्वगणैर्वृतः।
तत्रास्थितं महामंत्रं विलोमं तच्चकार ह॥
तदधो ये गता लोका आसन् सर्वे च वैष्णवाः।

विष्णु स्वामी हरिद्वार में गया और वहां म्लेच्छों के विरुद्ध प्रचार कर सब को वैष्णव बनाया। एवं वाणी भूषण आदि विद्वानों ने काशी आदि स्थानो में जाकर सहस्रों म्लेच्छों को शुद्ध किया।

* अंत्यजों का परिवर्तन *

वंशानुगत (मौरूसी) वर्णाभिमान से आर्य्य जाति की जो हानि हुई उसको कौन विज्ञ पुरुष नहीं जानता। कौन नहीं जानता कि इस खानदानी जात्यभिमान ने ही ब्राह्मणों को वेद विहीनकर अपने बृत्त से पतित किया। कौन नहीं जानता कि स्वश्लाघी जात्यभिमानियों की घृणा और उदासीनता से सहस्रों जन पवित्र आर्य धर्म्म से वियुक्त हूए। क्योंकि वर्त्तमान वंशानुगत निर्मूल जातपात के नियमानुसार एक छोटी जाति का पुत्र कभी ऊंचा नहीं हो सकता। चाहे वह कितना ही विद्वान् और सदाचारी क्यों न हो। उसका स्पर्श दोष दूर नहीं होता चाहे उसका आहार आचार और व्यवहार एक मौरूसी ब्राह्मण से भी पवित्र क्यों न हो, परन्तु

प्राचीन समय में यह बात नहीं थी, क्योंकि रजक तथा चमार आदि जिनको अन्त्यज वा नीच कहा जाता है यह कोई भिन्न जाति नहीं है प्रत्युत ब्राह्मण क्षात्रिय आदि के व्यभिचार से उत्पन्न हुए संस्कार हीन पुरुष विशेषों की संज्ञा है जैसा कि निम्न लिखित प्रमाणों से ज्ञात होजाता है।

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्या द्वै देहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चांडालः सर्व धर्म्म वहिष्कृतः॥
(या० प्र० प्र० ३)

क्षत्रिय से ब्राह्मणी में जो पैदा हो वह सूत कहा जाता है वैश्य से ब्राह्मणी में जो पैदा हो वह वैदेहिक-और शूद्र से जो पैदा हो वह चांडाल कहा जाता है जो कि सर्व धर्म्म से वहिष्कृत होता है।

सूताद्विप्रसुतायां सुतो वेणुक उच्यते।
नृपायामेव तस्यैव जातो यश्च चर्म्मकारकः॥
(औशनस स्मृतिः-१-४)

सूत से जो ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न हो उसको वेणुक (वरूड़) कहते हैं। और उसी सूत से क्षत्रिय कन्या में जो हो उसको चर्मकार (चमार) कहते हैं।

चांडालाद्वैश्य कन्यायां जातः श्वपच उच्यते।
श्वमांस भक्षणं तेषां श्वान एवच तद्बलम्॥
(औशनस० १-११)

चांडाल से जो वैश्य की कन्या में उत्पन्न हो उसको श्वपच कहते हैं कुत्ते का मांस उसका भक्षण है और कुत्ता ही उस

का बल है।

नृपायां वैश्य संस... योगव इति स्मृता।
तन्तुवायाः भवन्त्येव वसुकांस्योप जीविनः। १२
शीलिकाः केचिद त्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते।
अयोगवेन विप्रायां जाता स्ताम्रोप जीवनः। १३
(औशनस)

क्षत्रिय की कन्या में जो वैश्य से पैदा हों उसको आयोगव (जुलाहा) कहते हैं। वह कपड़े बुनने और कांसे के व्योपार (कसेरापन) से जीवका करें। इनमें से जो वस्त्र पर रेशम आदि से कसीदा निकालते हैं वह शीलिक कहाते हैं। आयोगव से जो ब्राह्मण की कन्या में हों उसको ठठेरा कहा जाता है।

नृपायां शूद्र संसर्गाज्जातः पुल्कस उच्यते।
सुराबृत्तिं समारूह्य मधुविक्रय कर्मणः। १७
(औशनस १)

क्षत्रिय की कन्या में शूद्र से जो पैदा हो उसको पुल्कस (जुलाहा) कहते हैं यह सुरा (शराब) से जीविका करता है।

पुल्कसाद्वैश्य कन्यायां जातोरजक उच्यते। १८

पुल्कस से वैश्य की कन्या में जो पैदा हो उसे रजक (लिलारी) कहते हैं।

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः याचकः स्मृतः।
वैश्यायां शूद्रश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते॥ २२

वैदेहिक (गड़रिया) से क्षत्रिय की कन्या में जो पैदा हो उसे सूचिक (दरजी) वा पाचक रसोइया (सूद) कहते हैं। शूद्र से जो वैश्य की कन्यामें चोरी से पैदा हो उसे चक्री (तेली) कहते हैं।

वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकारः सउच्यते ॥ ३२

वैश्य की कन्या में जो चोरी से ब्राह्मण पैदा करे उसे कुम्हार कहा जाता है।

सूचकाद्विप्र कन्यायां जातस्तक्षक उच्यते।
शिल्पकर्म्माणि चान्यानि प्रासाद् लक्षणं तथा। ४३

दरजी से ब्राह्मण की कन्या में जो पैदा हो उसे तक्षक (बढ़ई) कहते हैं उसका काम (शिल्प) चित्रकारी वा मकान बनाना है।

इत्यादि प्रमाणों से प्रतीत होता है कि वह इन प्रत्येक व्यवसायियों का कोई भिन्न जाति नहीं। धर्म शास्त्र और इतिहासों के देखने से प्रतीत होता है कि जहां एक तरफ आर्यजाति ने एक क्रिया भ्रष्ठ दुराचारी को आर्य्यजाति से बाहिर कर और दण्डरूप से उसे निन्दित कर्म्मों में नियुक्त करके सदाचार को स्थिर रखने का प्रयत्न किया, वहां दूसरी ओर गुण कर्म्म और सदाचार के कारण एक नीच सन्तान को (बृत्तेनहिभवेद्द्विजः) के अनुसार अपना शिरोमणि रक्खा आर्य बृक्ष को ऊंचा किया। जैसे बाल्मीकि आदि।

शास्त्र पर्य्यालोचना से न केवल यह सिद्ध होता है कि बाल्मीक आदि अनेक नीच गृहोत्पन्न सदाचार से ऊंचे हुए। प्रत्युत यह भी निस्सन्देह मानना पड़ता है कि समयानुसार उनकी संज्ञा और कर्म में भी परिवर्तन होता रहा है।

कालवशात् जब कभी देश की पोलिटिकल अवस्था का परिवर्त्तन होता है, तो उसके साथ ही सोशियल अथवा सामाजिक नियमों में कुछ न कुछ परिवर्त्तन होने लगता है। और ऐसा होना अवश्यं भावी है। जो जाति देश कालानुसार समय के साथ साथ नहीं चलती वह जीती नहीं रह सकती। यही भाव था कि जिसने समय२ में ऋषियों को प्रद्योतित किया कि वह समयानुसार अपनी२ व्यवस्था दें, और यही कारण भिन्न २ स्मृतियों के लिखने का है। इसी की पुष्ठि में पराशर ऋषि अपनी स्मृति के प्रारम्भ में बतलाता है, कि :—

अन्येकृतयुगे धर्म्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगधर्मानुसारतः
(परा० १–२२)

सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग में धार्मिक व्यवस्था एक सी नहीं होती। इसी नियमानुसार समयान्तर में अन्त्यजों की संज्ञा-संख्या-तथा कर्म्म आदिकों में परिवर्त्तन किया गया। जैसा कि आगे के उदाहरणों से प्रतीत होगा।

शास्त्रों में यद्यपि अनेक प्रकार के पुत्रों का वर्णन है तथापि उत्पत्ति भेद से चार भेद कहे जा सकते हैं। प्रथम सवर्णी अर्थात् तुल्य वर्ण के स्त्री पुरुषों से उत्पन्न हुई सन्तान। दूसरा अनुलोमज अर्थात् उत्तम वर्णी पुरुष का हीन वर्णी स्त्री से उत्पन्न। तीसरा प्रतिलोमज अर्थात् हीनवर्णी पुरुष से उत्तमवर्ण स्त्री से प्राप्त हुआ चतुर्थ संकर अर्थात् पूर्वोक्त अनुलोमज प्रतिलोमजों से व्यभिचार रूप से सन्तानोत्पत्ति।

प्रतिलोमजों का वर्णन करते हुए मनु याज्ञवल्क्यादि लिखते हैं :-

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वै देहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्व धर्म वहिष्कृतः॥

(याज्ञवल्क्य ९३)

क्षत्रिय से ब्राह्मणी का पुत्र सूत नाम होता हैं । वैश्य से वैदेहिक, और शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ २ चाण्डाल कहाता है जो कि सर्व धर्म्मों से बहिष्कृत है !

समीक्षा—मनु ने इन सूत मागध और वैदेह को अपसद वा करार देकर लिखा कि :-

सूतानामश्वसारथ्य मम्बष्ठानां चिकित्सकम् ।
वैदेहिकानां स्त्रीकार्य्यं मागधानां वणिक्पथः॥

(मनु० १०-४७)

सूतों का काम सारथिपन (साईसी करना) अम्बष्ठों का चिकित्सा वैदेहिको का अन्तःपुर का काम और मागधों का स्थल मार्ग से व्यापार करना है। इसी आशय को लेकर मध्यमाङ्गिराने तो इनको साफ अन्त्यज ही लिख दिया। जैसे :-

चांडालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहिकस्तथा।
मागधा योगवौ चैव सप्तैतेऽन्त्या वसायिनः॥

चण्डाल, श्वपच, क्षत्ता-सूत, वैदेहिक, अयोगव (बढ़ई) यह सात नीच हैं। परन्तु समय के परिवर्त्तन से एक समय आया जब कि करीब करीब इन सब का परिवर्त्तन हुआ । तब उशनाचार्य ने सूत के विषय में व्यवस्था दी :-

नृपाद्ब्रह्मकन्यायां विवाहेषु समन्वयात्।
जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोम विधिद्विजः।
वेदानर्हस्तथा चैषां धर्म्माणा मनुबोधकः।

(औशनश अ० १–श्लो०–३)

ब्राह्मण की कन्यामें विवाह होने से क्षत्रिय द्वारासे जो पुत्र होता है वह सूत कहाता है। और वह प्रतिलोम विधि का द्विज है। उसको वेद का अधिकार नहीं है। परन्तु वह धर्मों का उपदेश कर सकता है।

यही सूत महाराजा दशरथ का प्रधान मंत्री बना जोकि बिना द्विजातियों के नहीं होसक्ता। और पुराणों के समय में इस सूत को इतनी उच्च पदवी दीगई कि सूत ने व्यास गद्दी पर बैठ ऋषियों को सम्पूर्ण पुराण सुनाए। पुराणवक्ता सूत ने भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय–१८ में इस बात को हर्ष और अभिमान से प्रकट किया है, कि मैंने प्रतिलोमज होकर भी ईश्वर भक्ति आदि गुणों से उच्च पदवी पाई। एवं ययाति ने ब्राह्मण कन्या से विवाह किया और उसकी सन्तान क्षत्रिय बनीं।

आगे मनु अ० १०–श्लो० १२ में लिखा है कि :–

शूद्रादा योगवः क्षत्ता चांडालश्चाधमो नृणाम्।
वैश्य राजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः॥

शूद्र से वैश्या में अयोगव–शूद्र से क्षत्रिया में क्षत्ता और ब्राह्मणी में चण्डाल पैदा होता है, और यह वर्ण संकर हैं। आगे श्लोक १६ में इन तीनों को अधम मानकर इनकी बृत्ति का वर्णन करते हुए लिखा कि :–

(त्वष्टिस्त्वा योगवस्यच। मनु १०—श्लोक ४८)

क्षत्त्रुग्र पुक्कसानांतु विलोको वध बन्धनम् । ४९

अयोगव का काम लकड़ी छिलना [बढ़ई का कर्म्म करना] है। और क्षत्ता का काम बिल में रहने वाले गोधा आदि जीवों का पकड़ना और बांधना है। परन्तु समय के परिवर्त्तन से इनकी संज्ञा उत्पत्ति और बृत्ति में परिवर्त्तन किया गया।

उशनाचार्य अपनी स्मृतिके श्लोक बारह में लिखता है किः—

नृपायां वैश्य संसर्गादा योगव इतिस्मृतः ।
तन्तुवाया भवन्त्येव वसुकांस्योप जीविनः ॥

क्षत्रिय की कन्या में जो वैश्य से उत्पन्न हो आयोगव [जुलाहा] कहाता है और उसका काम कपड़ा बुनना वा [कांस्योपजीवन] अर्थात् भांड बेचना [कसेरापन] है।

एवं आगे श्लोक ४२ में बतालाया किः—

शूद्रायां वैश्य संसर्गाद्विधिना सूचकः स्मृतः।
सूचकाद्विप्र कन्यायां जातस्तक्षक उच्यते॥

विधि से विवाही शूद्र कन्या में जो वैश्य से उत्पन्न हो उस को सूचक [दरजी] कहते हैं। और सूचक से ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न तक्षक [बढ़ई] कहा जाता है।

कहां मनु के समय में शूद्र से उत्पन्न आयोगव वा क्षत्ता का काम बढ़ईपन, और कहां उशनस् के समय सूचकोत्पन्न तक्षक।

मनु तथा याज्ञवल्क्य की व्यवस्था थी कि :—

निषाधः शूद्र कन्यायां यः पारशव उच्यते ।

मनु० १०—८

ब्राह्मण से शूद्र कन्या में पैदा हुए की निषाध संज्ञा है, जिस का दूसरा नाम पारशव है, और आगे श्लोक-१२ में शूद्र से क्षत्रिया में जो उत्पन्न हो उसे क्षत्ता कहा है परन्तु महाभारत के समय में इसका व्यतिक्रम होगया। क्योंकि व्यास से दासी में उत्पन्न हुए विदुर की निषाध संज्ञा नहीं थी, प्रत्युत क्षत्ता थी।

इसी की पुष्टि में भारत के अनुशासन पर्व अध्याय ४८ श्लोक बारह में लिखा है (शूद्रान्निषाधोमत्स्यघ्नः क्षत्रियायांव्यतिक्रमात्) इसके भाष्य में टीकाकार लिखता है :—

"अत्र मनुना निषेधोऽनुलोमजेषु क्षत्ताच प्रतिलोमजेषूक्तः। व्यासेनतु विपरीत मुक्तं विदुरे क्षतृ शब्दं तत्रतत्र प्रयुंजानेन। अतएव—शूद्रायां निषाधोजातः पारशवोऽपिवा, क्षत्रिया मागंध वैश्यात् शूद्रात् क्षत्तार मेववा, इति याज्ञवल्क्य उभयत्र वा शब्दं पठन् अनयो र्निषाधत्वक्षतृत्वे सूचयति तेन विप्रात् शूद्रायां क्षत्ता क्षत्रियायां निषाध इत्यर्थ साधुता।

मनु ने निषाध को अनुलोमजों में लिखा है, और क्षत्ता को प्रतिलोमजों में। परन्तु व्यास ने इसके विपरीत लिखा है क्योंकि विदुर के लिये जहां तहां क्षत्ता शब्द दिया है।

अपने पक्ष के समर्थन में याज्ञवल्क्य दो श्लोकों की व्यवस्था लगाकर कहता है कि जो श्लोक—९१—९४ में वा शब्द

का प्रयोग किया है, इससे भी मालूम होता है कि ब्राह्मण से शूद्र कन्या में उत्पन्न की क्षत्ता—और शूद्र से क्षत्रिया में उत्पन्न की निषाध संज्ञा भी वह मानते हैं।

यदि ब्राह्मण से शूद्रकन्या में उत्पन्न हुआ निषाध ही रहता तो व्यास आदि भी ब्राह्मण न बनते। परन्तु इतिहास बतलाता है कि :—

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः॥

कैवर्त्त (दास) की कन्या में उत्पन्न व्यास-तथा श्वपाकी (चांडाली) से उत्पन्न पराशर, तथा और बहुत कर्म वश से ब्राह्मण बनें जो प्रथम इतर थे।

मनु कहता है कि :—

वृषली फेन पीतस्य निश्वासोपहतस्यच॥
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥

मनु ३—१९

वृषली के मुख चुम्बन करने वाले को उसके मुख का श्वास लेने वाले तथा वृषली में उत्पन्न की शुद्धि नहीं।

वृषली का अर्थ करते हुए अंगिरा ऋषि लिखता है कि (चांडाली बंधनी वैश्या) चाण्डाली बंधनी और वैश्या आदि पांच वृषली संज्ञिक हैं।

परन्तु इतिहास बतलाता है कि :—

गणिका गर्भ सम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम्॥

वैश्या के गर्भ से उत्पन्न वशिष्ठ मुनि तप से ब्राह्मण बना, संस्कार ही इसमें कारण हैं। अर्थात् यदि कर्म उच्च हों तो योनि दोष नहीं रहता।

दूर क्यों जांये तनिक वर्त्तमान दशा की ओर दृष्टि दें मनु ने अ० १० श्लोक ११ में लिखा है कि वैश्या से क्षत्रिया में जो सन्तान उत्पन्न हो वह मागध संज्ञिक होती है और आगे श्लोक १७ में उसको अपसद लिखा। इसी को मध्यम अंगिरा ने अन्त्यावसायी लिखा इसके विषय में भारत अनुशासनपर्व० अध्याय ४८ में लिखा कि :-

चतुरो मागधीसूते क्रूरान्मायोप जीविनः।
मासं स्वादुकरं क्षौद्रं सौगन्धमिति विश्रुतम् ॥

मागधी चार पुत्र उत्पन्न करती है जिनका काम मांसादि बेचना है और उनमें (क्षौद्र-सूद-और शूद्र) ये तीनों एक के नाम हैं और उनका काम शाक आदि बनाना तथा अन्न बनाना है। कोशों ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए लिखा कि (सूदन्ति छागानीतिसूदः) इस क्षौद्र वा सूद का काम बकरों को मारना है परन्तु राजाओं के संसर्ग तथा कर्म की उत्तमता से आज सूद द्विज हैं।

व्यास ने :—

वर्द्धकोनापितो गोप आशायाः कुम्भकारकः ॥
वाणिक् किरात कायस्थमाला कार कुटुम्बिनः ॥

व्यास—१—१०

व्याज लेने वालों, नाई गोप, और बणिया तक को अन्त्यज लिख दिया। परन्तु इसी व्यास ने ३—५१ में लिखा कि :—

नापिताचयमित्रार्द्ध सीरिणोदास गोपकः ॥
शूद्राणा मप्यमी षान्तुभुक्त्वाऽन्नं नैवदुष्यति ॥

नाई, वाहक, दास (कैवर्त्त) गोप, आदि के अन्न खाने में दोष नहीं। यही व्यवस्था पराशर ११-२२ में (दास नापित गोपालों को दी है । न केवल अन्न खाने का अधिकार दिया गया, प्रत्युत नाई तथा निषाध आदि कई एक को तो वेद मंत्र पढ़ने का भी अधिकार दे दिया । जैसे :—

आचान्तोदकाय गौरिति नापित स्त्री ब्रूयात् ॥

गोभिलीय० गृ० सू० प्र० ४

ऊपर निवेदन किया गया कि मध्यम अंगिरा ने सूत और क्षत्ता आदि को भी अन्त्यज माना । व्यास ने अपने समय में व्याज लेने वाला आदि को अन्त्यज माना, परन्तु समय के परिवर्त्तन से पीछे के अत्रि, अंगिरा, यम, आदि स्मृतिकारों ने इन सब को काटकर :—

रजकश्चर्म कारश्च नटो वरुड़ एवच ॥
कैवर्त्त भेद भिल्लाश्च सप्तैतेऽन्त्यजाः स्मृताः ॥

केवल रजक (लिलारी) चमार, नट वरुड़ (वांस बनाने वाले) कैवर्त्त, मल्लाह, भेद तथा भील को अन्त्यज माना । देखो अत्रिस्मृतिः श्लोक १९५-अंगिरा श्लोक २ यम श्लोक ३२। और हम देखते हैं कि वर्त्तमान समय में व्यास के कथनानुसार गोप आदि को अन्त्यज नहीं माना जाता मनु ने अध्याय ४ श्लोक २१० वा २१९ में लिखा कि गाने वाले तथा नाचने वाले का अन्न नहीं खाना चाहिये परन्तु समय के परिवर्त्तन से पद्मपुराण ब्र० ख० ३ अ०६ में लिखा है कि :—

कुशीलवः कुम्भकरश्च क्षेत्र कर्मक एवच ॥
एते शूद्रेषु भोज्यान्नादृष्ट्वास्वल्पगुणं बुधैः ॥ १७

नाचने वाले, गाने वाले, कुम्भकार, तथा क्षेत्र कर्म करनेवाले अर्थात् वाहक वा वर्त्तमान बाहती जाट इनमें थोड़ा सा भी गुण देखकर इनका अन्न खा लेना चाहिये । कहां तक लिखे इसी के प्रथम श्लोक तथा पराशर ११ । २२ में तो यहां तक लिखा है कि (यश्चात्मानं निवदयेत) जो अपने आपको तुम्हारे अर्पण करता है अर्थात् जो यह कहे कि मैं तुम्हारा हूं उसका अन्न खा लेना चाहिये अर्थात् वह शुद्ध है ।

मनु ने ४ । २०९ में लिखा कि (गणान्नंगणिकान्नंच) समुदाय का अन्न नहीं खाना चाहिये परन्तु देखा जाता है कि आजकल वर्षा ऋतु में चन्दा से इकठ्ठा किये धन से प्रवर्त्तित यज्ञों में सहस्रों ब्राह्मण न्योता जीमते हैं । मनु ने ४ । २१२ । में लिखा कि (चिकित्सकस्य मृग्योश्च) वैद्य वा शिकारी का अन्न न खावे प्रत्युत आज ऐसा नहीं । मनु० ४ । २१४ । में लिखा है (पिशुनानृतिनोश्चान्नं) चुगलखोर और झूटी गवाही देने वाले का अन्न नहीं खाना चाहिये । मनु० ४ । २०९ में उन्मत्त, चोर आदि के अन्न का निषेध है परन्तु इस समय ऐसा नहीं है मनुः ४ । २१९ में सुनार के अन्न का निषेध है परन्तु इस समय ऐसा नहीं :—

इत्यादि प्रमाणों तथा उदाहरणों से निस्सन्देह मानना पड़ता है कि समय समय पर परिवर्त्तन होता रहा है ।

❀ पुराणों में चांडाल की शुद्धि ❀

पौराणिक इतिहासों से प्रतीत होता है कि कभी कभी बिना प्रायश्चित्त विधि के ही चाण्डालादिकों को शुद्धकर आचार्य तथा

मठाधीश वनायागया। जैसे कि नीचे के उदाहरणों से सावित होगा पीछे इसके कि, चांडाल की शुद्धि वतलाई जावे, प्रथम यह वतला देना चाहता हूं कि शास्त्र चांडाल किसको मानते हैं संपूर्ण धर्मशास्त्र (स्मृतियें) और तमाम पुराण इसके सहायक हैं कि :-

ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चांडाल उच्यते ।
सीसाभरणं तस्य कार्ष्णायस मथापिवा ॥ ८
वध्री कंठे समा वध्य मल्लरीं कक्षतोऽपिवा । ९
मलाप कर्षणं ग्रामे पूर्वाण्हे परिशुद्धिकम् ।
नपराण्हे प्रविष्टोऽपि वहिर्ग्रामाच्चनैऋते । १०

(औशनस)

ब्राह्मणी में जो शूद्र से उत्पन्न हो उसे चांडाल कहते हैं। इस के सीसे वा लोहे के भूषण होते हैं । यह कण्ठ में वध्री (चमड़े का पट्टा) और बगल में झाडू बान्ध कर मध्यान्ह से प्रथम ग्राम में शुद्धि के लिये मल को उठावे । और मध्यान्ह के उपरान्त ग्राम में प्रवेश न करे, ग्राम के बाहिर नैऋत कोण में वास करे ।

ऊपर के लेख से प्रतीत होगया होगा कि चांडाल किसका नाम है । अब इनकी शुद्धि देखिये भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व ३ खंड दो अध्याय ३४ ।

ऋषय ऊचुः :—

वाग्जंकर्म स्मृतं सूत ! वेद पाठं सनातनम् ।
बहुत्वात्सर्व वेदानां श्रोतुमिच्छा महे वयम् ॥ १
केन स्तोत्रेण वेदानां पाठस्य फलमाप्नुयात् ।

पापानि विलयं यान्ति तन्नोवद विलक्षण ! ॥ २

ऋषि बोले कि सूत जी वेद पाठ सनातन वाचिकधर्म्म है परन्तु सारे वेदों का पढ़ना बहुत कठिन है, इसलिये हमें कोई ऐसा स्तोत्र बताओ जिस एक के पढ़ने से वेद पाठ का पुण्य प्राप्त और सम्पूर्ण पापों का नाश हो ।

सूत उवाच :—

विक्रमादित्य राज्येऽस्तुद्विजः कश्चिदभूद्भुवि ।
व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत् ॥ ३

सूत ने कहा, कि विक्रमादित्य के राज्य में व्याध कर्मा नाम से प्रसिद्ध द्विज हुआ, जो शूद्र वीर्य से ब्राह्मणी के उदर मे से जन्मा था । अर्थात् चांडाल था । इसका विवर्ण करते हुए कहा :—

त्रिपाठिनो द्विजस्यैव भार्य्या नाम्नाहि कामिनी ।
मैथुनेच्छावती नित्यं महा घूर्णित लोचना ॥ ४
द्विजः सप्तशती पाठे वृत्त्यर्थं कर्हिचिद्गतः ।
ग्रामे देवलके रम्ये बहु वैश्य निषेविते ॥ ५
तत्र मासगतः कालो नायथौ च स्वमन्दिरे ।

त्रिपाठी नाम ब्राह्मण की मदोद्धित कामिनी नाम स्त्री थी जोकि बहुत काम प्रिया थी । एकदा वह त्रिपाठी ब्राह्मण सप्तशती (चण्डी) पाठ के लिये देवल नाम एक वैश्य वस्ती में गया और एक मास पर्यंत वहां ही रहा ।

तदातु कामिनी दुष्ठा रूपयौवन संयुता ।
दृष्ट्वा निषादं सबलं काष्ठ भारोपजीवितम् ॥

तस्मै दत्वा पञ्च मुद्राः बुभुञ्ज कामपीड़िता ॥ ७

तब रूप यौवन संयुक्त उस दुष्टा कामिनी ने एक काष्ठ भार के उठाने वाले बलवान् निषाद को देखा और पांच रुपये देकर व्यभिचार किया ।

तदा गर्भं दधौ सा च व्याध वीर्य्येण सेचितम् ।
पुत्रोऽभूद्दश मासान्ते जातकर्म पिता ऽकरोत् ॥

उस व्याध से कामिनी को गर्भ स्थिति हुई, दश मास पीछे पुत्र उत्पन्न हुआ, और पिता ने जात कर्म संस्कार किया ।

द्वादशाब्दे गतेकाले सधूर्तो वेदवर्जितः ।
व्याधकर्म करो नित्यं व्याधकर्म्मा यतोऽभवत् ॥ ९
निष्कासितौ द्विजेनैव मातृपुत्रौ द्विजाधमौ ।
त्रिपाठी ब्रह्मचर्य्यं तु कृतवान् धर्म्म तत्परः ॥ १०

बारह बर्ष की अवस्था में वह धूर्त वेद त्याग व्याध कर्म्म में आसक्त होगया । इससे उसका नाम व्याधकर्म्मा हुआ । यह देख उस त्रिपाठी ब्राह्मण ने उन दोनों अर्थात् अपनी स्त्री और पुत्र को घर से निकाल दिया और स्वयं ब्रह्मचर्य धारण कर धर्म्म परायण हुआ ।

निषादस्य गृहे चोभौ बने गत्वोषतुर्मुदा ।
प्रत्यहं जारभावेन बहुद्रव्य मुपार्जितम् ॥ १२
व्याधकर्म्मा तु चौर्य्येण पितृमातृ प्रियंकरः

वे दोनों माता पुत्र हर्ष से उस निषाद के घर रहने लगे ।

वहां वह प्रतिदिन जार भाव से धन एकत्र करती, और व्याध-कर्म्मा चोरी से।

कदाचित्प्राप्त वांस्तत्र द्विजवस्त्र समुद्गतम्।
श्रुतमादि चरित्रं हि तेन शब्द प्रियेण वै ॥ १५
पाठ पुण्य प्रभावेण धर्म्म बुद्धिस्ततोऽभवत्।
दत्वा चौर्य्य धनं सर्वं तस्मै विप्राय पाठिने।
शिष्यत्व मगमत्तत्राऽक्षरमैशंजजाप ह।
वीज मंत्र प्रभावेण तदंगात्पाप मुल्वणम्।
निसृतं कृमिरूपेण बहुवर्णेनतापितम्।

कदाचित् उसने उस ब्राह्मण के वस्त्र से निकलते हुए आदि चरित्र को एक ब्राह्मण से सुना और उस पाठ के प्रभाव से उस की बुद्धि में धर्म्म भाव उत्पन्न हुआ। वह अपने चोरी के सब धन को ब्राह्मण के अर्पण कर उसका शिष्य बना और अक्षर (अवि-नाशी) ब्रह्म का जप करने लगा। उस वीज मंत्र के प्रभाव से उस का वह बड़ा पाप नष्ट होगया।

त्रि वर्षान्तेच निष्पापो बभूव द्विजसत्तमः।
पठित्वाक्षर मालाञ्च जजापादि चरित्रकम् ॥ १९
द्वादशाब्दामितेकाले काश्यां गत्वातु सद्विजः।
अन्न पूर्णा महादेवीं तुष्टाव परयामुदा ॥ २०

तीन वर्ष के अनन्तर वह शुद्ध ब्राह्मण होगया, अनंतर उसने काशी में जाकर बारह वर्ष अन्नपूर्णा की स्तुति की।

साइत्यष्टोत्तरे जप्ता ध्यानास्तिमितलोचना ।
सुष्वापतत्र मुदिता स्वप्ने प्रादुरभूच्छिवा ।
दत्वा तस्यै ऋग्विद्यां तत्रैवान्तर धीयत ॥ २२
उत्थाय स द्विजो धीमान् लब्ध्वाविद्या मनुत्तमाम् ।
विक्रमादित्य भूपस्य यज्ञाचार्य्यो बभूवह ॥ २४

तब प्रसन्न हो देवी ने उसको ऋग्विद्या प्रदान की और वह ब्राह्मण उस उत्तम वेद विद्या को पाकर विक्रमादित्य के यज्ञ में आचार्य बना ।

एवं एक उदाहरण सनतानधर्म मार्तण्ड (जिसको शाहजहांपुर की धर्म सभा ने ज्येष्ठ शुक्ल संवत् १९३५में प्रकाशित किया) से उद्धृत किया जाता है, जिस से पाठकों को प्रतीत होगा, कि उस समय भी लोगों ने कार्य वशात् बिना प्रायश्चित्त के ही चण्डाल आदिकों को शुद्धकर मठाधीश और आचार्य बनाया ।

करीबन सात सौ वर्ष हुए कि रामानुज संप्रदाय चली रामानुज सम्प्रदाय के प्रथमाचार्य षट्कोपतीर्थ वे जाति के कंजर थे यह उन्हीं के ग्रंथों में से दिव्य सूरि प्रभादीपिका के चतुर्थसर्ग में लिखा है :-

विक्रीयसूर्पं विचचार योगी ।

योगी षट्कोपजी सूप बेचकर विचरते हुए । इस वाक्य से उनकी जाति का निश्चय होता है, और उनका टोप आज तक उनकी सम्प्रदाय वाले पूजते हैं ।

दूसरे आचार्य मुनिबाहन हुए यह आचार्य जाति के चण्डाल थे । इनकी भी कथा उनके ग्रंथों में लिखी है ।

दक्षिण में "तोतादरी" और "रङ्ग" जी दो स्थान हैं वहां एक चण्डाल चुराकर मंदिर के सहन में बुहारी (झाड़ू) देजाता था। एक दिन पुजारी लोगों ने जाना तो उसको बहुत मारा और बाहर निकाल दिया। पुनः एक पुजारी ने कहा कि मुझे एक स्वप्न भया है, कि उसी चण्डाल को अपना अधिष्ठाता बनाओ। सब लोगों ने उसका नाम मुनिवाहन रक्खा। उसका चेला एक मुसलमान भया उसका नाम तिक्तयामुनाचार्य रक्खा। उनके चेले महा पूर्ण और तिनके चेले रामानुज भये।"

देखो सनातन धर्म मार्तण्ड पृ० १८७।

सच तो है। **जाति गंगा गरीयसी।**

अत्रि भी कहते हैं :—

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च।
पूयन्ते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये॥

(अत्रि० २७४)

यदि जाति स्वीकार करे और ब्राह्मणों की अनुग्रह हो तो नीच से नीच भी पवित्र होजाते हैं।

इसी आशय को लेकर मैं वर्त्तमान हिन्दू जाति से सविनय निवेदन करूंगा कि वह अपनी सामाजिक उन्नति वा जाति कल्याण के लिये जाति के प्रत्येक भाग को धर्मानुसार ऊंचा करने का प्रयत्न करें। क्योंकि किसी जाति का सामाजिक बल अथवा धार्म्मिक बल नहीं बढ़ सकता, जब तक कि उसका प्रत्येक भाग संघरूप से एक दूसरे का सहायक का सेवक नहीं बनता। न केवल इस उदाहरण से प्रत्युत स्मृतियों में चांडालों की शुद्धि के

लिये प्रायश्चित्तों का भी उपदेश पाया जाता है।

अत्रि ऋषि श्लोक १२८ में लिखता है कि :-

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिबेत्।
एष व्यास कृतः कृच्छ्रः स्वपाकमपिशोधयेत् ॥

कपिला गौ की धारा का गरम दूध पीवे। इसका नाम व्यास ने कृच्छ् कहा है और यह चांडाल को भी शुद्ध करता है। यही श्लोक रणवीर कारित प्रा० प्र० १९ पर इसी अर्थ में आया है दूध कितना पीना चाहिये कितने दिन पीना चाहिये इसकी विशेष व्याख्या भी मिल सकती है।

एवं पराशर अध्याय ११ में लिखा है कि :-

ब्रह्म कूर्म महोरात्रं स्वपाकम पिशोधयेत् ॥

अहो रात्र का ब्रह्म कूर्म नाम व्रत श्वपाक चांडाल को भी शुद्ध कर देता है।

❀ खान-पान और विवाह ❀

संसार की गति भी एक विचित्र गति है। आर्य्य जाति जो कभी विद्या की कान थी जिस के निष्कलङ्क चरित्र और उच्च शिक्षा के सामने दूसरी जातियें मस्तिष्क नवाती थी। जिसका धर्म पवित्र और सच्चा धर्म माना जाता था उसने समय के परिवर्तन और अपने आलस के कारण उस निर्म्मल धर्म को अपना भ्रम जनक कल्पित कल्पनाओं से इतना कलङ्कित कर दिया कि वह न केवल दूसरों को ही भ्रम जाल भासने लगा, प्रत्युत स्वयं आर्य्य (हिन्दू) जाति भी उसे कच्चा धागा समझने लगी। जिसका तोड़ना वायु के अति निस्सार झोंकों ने सुकर समझा। चाहे वह पूर्व से आये हों

वा पश्चिम से। तिस पर भी आश्चर्य्य यह कि संसार में तो कच्चा धागा तनक जिह्वा के रस और हाथों की मरोड़ से गांठा जाता है, परन्तु इसकी त्रुटि की पूर्ति सहस्रों वर्षों से असम्भव मानी गई।

एक आर्य्य (हिन्दू) न केवल म्लेच्छ के छूए जल पान से न केवल (घ्राणञ्त्वार्ध खादनम्) के निर्मूल सिद्धान्तानुसार दूसरों के अन्न सूंघने से ही पतित होने लगा प्रत्युत अपनी जाति माता तथा भ्राता के हाथसे भी भोजन कर अपने आपको पतित समझने लगा॥

परमात्मा वेद द्वारा आज्ञा देते हैं,

समानी प्रपा सहवोऽन्न भागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। ६—अथर्व—कां० ३ सू० ३०

हे एकता चाहने वाले मनुष्यो! तुम्हारी प्रपा अर्थात् पानी पीने का स्थान एक हो। तुम्हारा भोजन आदि साथ हो,

इस पर भाष्य करते हुए सायणाचार्य्य लिखते हैं—

(सहवोऽन्नभागाः) अन्नभागश्च सह एव भवतु परस्परानुरागवशेन एकत्रावस्थितमन्नपानादिकं युष्माभि रुपभुज्यता मित्यर्थः॥

तुम्हारा अन्न भाग साथ ही हो। अर्थात् परस्पर की एकता वा स्नेह बढ़ाने के कारण एक साथ बैठ कर खान पान करो।

शोक जिस जाति का इतना उच्च सिद्धान्त हो, उस के पुत्र आज मनामाने खान पान के बन्धन मे फंस कर न केवल चतुर्वर्णियों से प्रत्युत माता पिता से भी पृथक् चौका लगा इस वैदिक सिद्धान्त पर चौका फेर रहे हैं।

परन्तु वे लोग जिनका धर्म्म उनकी कपोल कल्पित सखरी

निखरी वा लून मरच पर ही आ ठहरा है, उनको स्मृति रहे कि प्राचीन समय में ऐसा नहीं था।

इतिहास बतलाते हैं, कि पूर्व समय में राज सूय आदि यज्ञों में चारों वर्ण एकत्रित होते थे, सब एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करते थे, वहां कोई गौड़ ब्राह्मण बावर्ची नहीं होता था। प्रत्युत सूद सूपकार आदि दास लोग भोजन बनाते थे। जैसे—

आरालिकाः सूपकाराः राग खाण्ड विकास्तथा
उपातिष्ठन्तु राजानं धृतराष्ट्रं यथा पुरा—

भा० आ० अ०

कि अरालिक सूपकार आदि रसोई किया करते थे। एवं श्री रामचद्र जी अपने यज्ञ के लिये आज्ञा देते हैं।

अन्तरा यण वीथ्यश्च सर्वे च नट नर्तकाः
सूदानार्थ्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः।

बा० रा० उ० स० ९१

सब बाजार और व्यापारी नट (नर्तक) रसोइये और रसोई बनाने वाली स्त्रियें भरत जी के संग जावें। और यह सब लोग दास और शूद्र थे। जैसा कि भा० अश्वमेध पर्व—अ ८५ में—

विविधान्न पानानि पुरुषा ये ऽनुयायिनः

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है,

कि सूद आदि संकर जाति होकर भी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के यहां ही भोजन बनाते थे और द्विजाति खाते थे। और क्यों न खाते, जब ऋषियों की आज्ञा है। कि :—

आर्य्याधिष्ठिता वा शूद्रा संस्कर्तारः स्युः। ४

आप० ध० २—२—३

कि आर्यों की अध्यक्षता में सूद रसोई बनावें। क्या महाराज युधिष्ठिर वा श्रीरामचन्द्रादि आर्य नहीं थे। यदि आर्य थे तो क्या ऋषियों की यह आज्ञा नहीं कि :-

यन्त्वार्य्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति सधर्म्मो
यद् गर्हन्ते सोऽधर्मः। ७

आप० १-७-२०

जिसको आर्य अच्छा कहते हैं वह धर्म है, और जिसकी निन्दा करते हैं वह अधर्म्म है।

यदि ऐसा है तो क्या कोई बतला सकता है ? कि श्रीरामचन्द्र जी, धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर, अथवा उस समय के ऋत्विज लोग आजकल के "नौ कनौजी और दस चूल्हा" के अनुसार आप पकाकर खाते थे ? नहीं, प्रत्युत वह एक पङ्क्ति में बैठकर सूदों का पकाया खाते थे।

देखिये—

ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसाः भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥१२
बृद्धाश्चव्याधिताश्चैव स्त्री बालास्तथैवच।
नाना देशा दनुप्राप्ताः पुरुषास्त्री गणास्तथा।
अन्न पानैः सुविहितास्तस्मिन् यज्ञे महात्मनः।१६।
अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः।
अहो ! "तृप्तास्म भद्रन्ते" इति शुश्राव राघवः।१७।

स्वलङ्कृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान्पर्य्य वेष्टयन् ।१८।

वा० रा० स०

महाराज दशरथ के यज्ञ में ब्राह्मण शूद्र तपस्वी और सं-न्यासी बृद्ध रोगी स्त्री और बाल सब इच्छा पूर्वक भोजन पाने लगे अनेक देशों के स्त्री पुरुष इस महात्मा राजा के यज्ञ में आकर खान पान करने लगे । भोजन के समय ब्राह्मण लोग सुंदर स्वादु भोजनों की प्रशंसा करते थे । और "हम तृप्त हुए हैं आप की कल्याण हो" इस प्रकार राजा का यश गाते थे। और वहुत से सुवेश धारी रसोइये ब्राह्मणों के आगे अन्न परोसते थे ॥

यदि इसमें संदेह हो कि वहां शायद पूरी वा परोठा आदि पक्कान्न होगा, तो इस संदेह की निवृत्ति के लिये देखें बालमीकीय रामायण उत्तर काण्ड सर्ग? ९ जहां श्री रामचन्द्रजी ब्राह्मणों और ऋषियों को निमंत्रण देते हैं, वहां साथ ही लक्ष्मण जी को आज्ञा देते हैं कि—

शतंवाह सहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् ।
अयुतं तिल मुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल ! ॥१९॥
चणकानां कुलत्थानां माषाणां लवणस्यच ।
अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्ध संक्षिप्तमेवच ॥२०॥

हे महाबली लक्ष्मण!बड़े हृष्ट पुष्ट एक लाख बैलों की गाड़ी मे चावल भर कर वहां भेज दीजिये ॥

दस हज़ार गाड़ी तिल और मूंग की भर कर अभी वहां भेजवा दीजिये ॥

और इस के अनुसार चणा, कुलत्थ माष और लून, तदनु-सार घी तथा और सुगन्धित द्रव्य वहां भेजवा दीजिये ॥

यहां न केवल माष आदि दालें भेजी गयीं प्रत्युत लून भी भेजा गया जिसको आज धर्म नाशक समझा जाता है ॥

एवं भारत सभापर्व अध्याय ४ में महाराज युधिष्ठिर ने

चोष्यैश्च विविधैराजन् पेयैश्च बहु विस्तरैः ॥४॥

लेह्य पेय आदि अनेक प्रकार के भोजनों से ब्राह्मणों को तृप्त किया ॥

इतिहासों के देखने से यह भी प्रतीत होता है कि श्री राम-चन्द्रादि अनेक धर्म्मिष्ठों ने उनके हाथ से भी छूत नहीं मानी, जिन हिन्दू जातियों को इस समय नीच माना जाता है ॥

जब श्री रामचन्द्रजी शवरी (भीलनी के) आश्रम में गये,

तौ दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्यच धीमतः ॥६॥
पाद्य माचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद् यथा विधि ॥७॥

वा० रा० सु०

तो उन दोनों भाइयों को देखकर वह हाथ जोड़ कर उठी पाओं छूए और यथा विधि पाद्य आचमन दिया। एवं भारत-वन पर्व अध्याय में लिखा है कि—

प्रविश्यच गृहं रम्य मासनेनाभि पूजितः,
पाद्य माचनीयञ्च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ।

एक वेदवेत्ता कौशिक ब्राह्मण मिथिला देश में एक व्याध (कसाई) के गृह में जाता है और उससे जल लेकर आचमन करता है ॥

मेरे इस कथन का यह तात्पर्य नहीं हैं कि भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नहीं होना चाहिये अथवा कोई अभोज्यान्न नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि शास्त्रों में चतुर्वर्णियों में से किसी वर्ण विशेष को इस लिये अभोज्यान्न नहीं लिखा कि वह अमुक वर्ण में उत्पन्न हुआ है। प्रत्युत शास्त्र बतलाते हैं कि जिसका आचार भ्रष्ट हो, जो क्रिया-हीन हो जो भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करता हो उसका अन्न नहीं खाना चाहिये, चाहे वह ब्राह्मण गृह में ही उत्पन्न हुआ हो जैसे

नाश्रोत्रियतते यज्ञे मनुः—४—२०५

अश्रोत्रिय से कराये यज्ञ में अन्न नहीं खाना चाहिये।

दत्तान्न मग्नि हीनस्य न गृह्णीयात्कदाचन

याज्ञवल्क्य०

अग्निहीन का अन्न नहीं खाना चाहिये। इत्यादि यदि वर्ण दृष्टि से भोज्याभोज्य की व्यवस्था होती तो राजा के अन्न का निषेध न होता। मनु बतलाता है कि—

राजान्नं तेज आदत्ते मनुः ४—२१८

राजा का अन्न नहीं खाना चाहिये, क्योंकि राजा का अन्न तेज को हर लेता है ॥

परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक राजा का अन्न नहीं खाना चाहिये। क्योंकि प्राचीन समय में ऋषि महर्षि तथा ब्राह्मण राजाओं का अन्न खाते थे और इस समय ब्राह्मण राजाओं

का अन्न खाते हैं, यदि खाते हैं तो "राजान्नं तेज आदत्ते" का क्या मतलब ?

उपनिषध में एक इतिहास आता है कि जब ऋषियों ने राजा अश्वपति का धन नहीं लिया तो राजा ने कहा कि—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
ना ना हिताग्निर्ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥
छां० ५ । ११

आप मेरी भेंट क्यों नहीं स्वीकार करते मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई कदर्य (कृपण) नहीं, कोई मद्यप (शराबी) नहीं कोई अग्नि शून्य नहीं (अर्थात् ऐसा कोई नहीं जो नित्यप्रति अग्नि होत्र न करता हो) कोई अनपढ़ (मूर्ख) नहीं, कोई व्यभिचारी नहीं तो फिर व्यभिचारिणी कहां ?

इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि शास्त्र चोर अव्रती मद्यपायी आदि भ्रष्टाचारी का अन्न अभोज्यान्न बताते हैं, और जिस राजा का आचार भ्रष्ट हो जिसका अन्न अन्याय से आया हो ऐसे राजा का अन्न नहीं खाना चाहिये ॥

क्योंकि उस मलिन अन्न से एक व्रती ब्राह्मण का मन मलीन होता है और तेज नष्ट हो जाता है ।

जैसा कि याज्ञवल्क्य श्लोक १४० स्नातक प्र० में लिखा है

नराज्ञः प्रति गृह्णीया ल्लुब्धस्यो च्छास्त्रवर्त्तिनः ॥

कृपण और शास्त्राज्ञा के प्रतिकूल चलने वाले राजा का अन्न न लेवे ।

यही भाव शूद्र शब्द का है ! जहां यह आता है कि शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिये । जैसाकि इसी राजान्नं तेज आदत्ते के आगे

शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसं । मनु ४–२१८ लिखा है । यहां यह मतलब नहीं है कि शूद्र वर्ण में उत्पन्न हुए का अन्न नहीं खाना चाहिये प्रत्युत यहां ऋषियों का तात्पर्य यह है कि:—

(शुचं द्रवतीति शूद्रः) जो पवित्रता से रहित हो उसका अन्न नहीं खाना चाहिये ॥ और इस भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में प्रत्येक विद्वान् ने यही अर्थ किया है ॥ क्योंकि यदि शूद्र वर्ण से ही तात्पर्य होता तो **(कर्मारस्य निषादस्य रंगावतारकस्यच)** मनुः ४–२१५ लुहार सुनार निषाध आदि के नामोंकी क्या आवश्यकता थी, क्या ये एक शूद्र शब्द वा अंत्यज शब्द में नहीं आ सकते थे,इससे सिद्ध होता है कि जहां पतित वा चांडालादि क्रियाभ्रष्ट और मलिन अन्न वालों का वर्णन किया वहां शूद्र शब्द से अपने कर्त्तव्य भ्रष्ट शौचाचार विहीन चतुर्वर्णियों का भाव है न कि शूद्र वर्ण का ॥

महर्षि आपस्तंब अपने धर्म सूत्र में भोज्याभोज्यान्न का वर्णन करते हुए प्रश्नोत्तर रूप से लिखते हैं कि—

प्र० क आश्यान्नः—१।६–१९ किसका अन्न खाना चाहिये

उ० इप्सेदिति कण्वः—३।१।६–१९ कण्वऋषि उत्तर देते हैं कि जो खिलाना चाहे !

इस में यह संदेह था कि तब तो चांडालादि सब का खा लेना चाहिये इस लिये कौत्स ऋषि कहते हैं कि—

पुण्य इतिकौत्सः ।४। १–६–१९

जो पवित्र शुद्धाचारी हो उसका अन्न खाना चाहिये ॥

वार्ष्यायणि ऋषि का मत है कि—

यः कश्चिद् दद्यादिति वार्ष्यायणिः॥५॥१—६—१९

चतुर्वर्णियों में से जो कोई दे देवे उसी का खा लेना चाहिये।

इस में आपस्तंब १—६—१८ में ऋषि अपना सिद्धान्त प्रकट करता है।

सर्व वर्णानां स्वधर्मे वर्त्तमानानां भोक्तव्यम् ।१३॥

अपने २ धर्म में वर्त्तमान सब वर्णों का अन्न खाना योग्य है यह लिखकर आगे कहता है कि (शूद्र वर्ज्ज मित्येके) कोई२ यह भी कहते हैं कि शूद्र का नहीं खाना चाहिये परंतु इस में अपना सिद्धान्त प्रकट करते हुए आगे सूत्र १४ में लिखा

(तस्यापि धर्मोपनतस्य) अपने धर्म में स्थित शूद्र का भी खा लेना चाहिये ॥

यही सिद्धान्त मनु के इस श्लोक से भी पाया जाता है।

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वान श्राद्धिनोद्विजः ॥

मनुः ४—२२३

विद्वान् ब्राह्मण श्राद्ध से शून्य शूद्र का अन्न न खावे। किसी २ टीका कारने (अश्राद्धिनः) के स्थान में (अश्रद्धिनः) पाठ रक्खा है कि श्रद्धाहीन का अन्न नहीं खाना चाहिये ॥ और आपस्तंब आदि के (धर्मोपनतस्य) आदि वचनों से यही युक्त भी प्रतीत होता है। अस्तु इस से झगड़ा नहीं क्योंकि श्राद्ध भी श्रद्धा से ही किया जाता है । इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि अपने २ धर्म में तत्पर चारों वर्णों का अन्न भोज्यान्न है।

यदि उत्पत्ति क्रम से ही शूद्र अभोज्यान्न होता तो "दास नापित गोपाल कुल मित्रार्द्ध सीरिणः" पराशर ११–२२ दास (कैवर्त्त) नाई–गोपाल आदि को भोज्यान्न न लिखते क्योंकि—

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च ।
कैवर्त्तमेद भिल्लाश्च सप्तैतेंऽत्यजाःस्मृताः॥अत्रि२९५

सब ने दास (कैवर्त्त) को अंत्यज लिखा है। एवं व्यासस्मृति १–१० में (वर्द्धको नापितो गोपः) व्याज लेने वाले, नाई, तथा गोप को अंत्यज लिखा परन्तु आगे इन्हीं को व्यासस्मृति–३–५१ में भोज्यान्न लिखा है और विरुद्ध इस के ऐसे भी अनेक प्रमाण पाये जाते हैं जिन में क्रिया भ्रष्ट ब्राह्मण कुमारों को भी अभोज्यान्न में लिखा है जैसे—

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धा चरणस्य च ।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्य्या द्दिनमेकमभोजनम् ॥
पराशर १२–५७

दुराचारी–और निषिद्ध आचारण वाले ब्राह्मणोत्पन्न का अन्न खा कर द्विज एक दिन उपवास करें ॥

यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ।
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं बृथापाको हि सः स्मृतः ॥

जो विवाह की अग्नि लेकर पुनः उसकी रक्षा नहीं करता अर्थात् अग्नि होत्र नहीं करता। उसका अन्न नहीं खाना चाहिये, क्योंकि वह वृथापाकी है ॥

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्व धर्म विवर्जितः ।
निर्दयः सर्व भूतेषु विप्र श्चाण्डाल उच्यते॥ अत्रि३८१

जो ब्राह्मण के गृह में उत्पन्न होकर क्रियाहीन हो, मूर्ख हो अध्ययनाध्यापनादि धर्म से रहित हो, निर्दयी हो वह चाण्डाल है॥ अतएव आपस्तंब ने सिद्धान्त किया कि अपने २ धर्म में स्थित चारों वर्णों का अन्न खाना चाहिये॥

अब प्रश्न यह होता है कि यदि वे (समानी प्रपाः सहवोऽन्नभागः) इस वेदाज्ञाके अनुसार चतुर्वर्णी सह भोजी हैं, तो पुनः भ्रष्टाचारी का क्या और पतित का क्या ? क्यों न इस खान पान की कैद को ही उठा दिया जावे इस के उत्तर में निवेदन है कि आर्य्य जाति के संमुख सदा से एक लक्ष्य रहा है जिसको उसने अपने जीवन का मुख्योद्देश्य माना है, और जिसकी पूर्ति के लिये ही संपूर्ण नियमोपनियमों का अनुष्ठान है, उसका नाम आत्म ज्ञान वा ब्रह्म प्राप्ति है॥

वेद कहता है कि वह (शुद्धमपापविद्धम्) यजुःअध्या० ४०। शुद्ध पवित्र और निष्पाप है अतः उसकी प्राप्ति के लिये शुद्धि की आवश्यकता है, बृद्ध गौतम कहता है कि—

त्रिदण्ड धारणं मौनं जटा धारण मुंडनम् ।
बलकला जिनवांशो ब्रतचर्य्याभि षेचनम् ॥
अग्निहोत्रं बनेवासः स्वाध्यायोध्यान संस्क्रिया ।
सर्वाण्येतानि वै मिथ्या यदि भावो न निर्मलः ॥

त्रिदंड धारण करना—मौनसाधन अथवा मुंडन आदि सब

वृथा हैं अर्थात् केवल इन से आत्मिक ज्ञान नहीं होता जब तक कि भाव शुद्ध न हो । और भाव (चित्त) की शुद्धि विना आहार शुद्धि के असंभव है जिसका अन्न अपवित्र है इसका भाव निर्मल नहीं हो सकता ॥

ऋषियों का सिद्धान्त है कि—

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः

आहार की शुद्धि से चित्त की शुद्धि होती है, और चित्त शुद्धि से सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है । अतः ऋषियों ने वेदानुसार शौच को धर्म का एकांग मान कर शौचाचार का उपदेश किया ॥

ऋषियों का सिद्धान्त है कि—

शौचाचार विहीनस्य समस्ताः निष्फलाः क्रियाः

दक्ष० अ० ५

शौचाचार से जो हीन है उसके सब कर्म निष्फल हैं । वह शौच क्या है इसका उत्तर देते हुए अत्रि ऋषि लिखता है कि—

अभक्ष्य परिहारश्च संसर्गश्चाप्य निन्दितैः ।
आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते॥अत्रि३५

अभक्ष्य का त्याग, निन्दित (पतितों) का त्याग और अपने आचार में स्थिति को शौच कहा है ॥

और यह शौच धर्म चतुर्वर्णियों का साधारण धर्म है मनु ने जहां चतुर्वर्णियों के (अध्ययनाध्यापन) आदि भिन्न २ धर्मों को

बतलाया, वहां साधारण धर्मों का वर्णन करते हुए लिखा कि—

अहिंसा सत्य मस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

मनुः १०–६३

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) शौच और इन्द्रिय दमन यह चारों वर्णों के सामान्य धर्म हैं ॥

यदि मनु के कथनानुसार यह सत्य है कि शूद्र का भी शौच धर्म है जैसा ब्राह्मण का और यदि यह सत्य है कि जो अभक्ष्य भक्षण से रहित और अपने आचार में स्थित है वह शुद्ध पवित्र है, तो अवश्य मानना पड़ता है कि जहां शूद्र के अन्न का निषेध है वहां (शुचं द्रवतीति शूद्रः) पूर्वोक्त शौच को त्यागने वाले का नाम शूद्र है चाहे किसी वर्ण में उत्पन्न हुआ हो ॥ और आपस्तंब का यह कथन सत्य है कि (सर्व वर्णानां स्वधर्मेवर्त्त मानानां भोक्तव्यम्) अपने धर्म में स्थित चारों वर्णों का अन्न खाने योग्य है, और पतित भ्रष्टाचारी का अन्न नहीं खाना चाहिये इति ।

वेद ने जहां "समानीप्रपाः" का उपदेश किया साथ ही यह भी आज्ञा दी ।

सप्तमर्य्यादाः कवयस्तक्षु स्तासामेकामि दभ्यंहुरोगात ऋ० अष्टक ७ अ० ५ व० ३३ ॥

सात मर्यादाएं (अर्थात् काम क्रोधादादि से उत्पन्न भ्रष्ट रास्ते) नियत की गई हैं । जो मनुष्य उन में से किसी एक को भी ग्रहण करता है वह पापी (पतित) हो जाता है ॥

वह सात मर्यादाएं कौन हैं इनका सायणाचार्य निरुक्त६-२७ से उद्धृत करता है ।

स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्या सुरापानं दुष्कृत कर्म्मणः पुनः पुनः सेवनं पातकेऽनृतो घमिति ॥

चोरी, गुरु स्त्री गमन, ब्रह्महत्या, मद्यपान, दुष्कर्मों का बार २ सेवन और पातक में झूठ ॥

इन्हीं की शास्त्रों में विशेष व्याख्या है इनका अन्न तथा संसर्ग त्याज्य है जब तक कि युक्त प्रायश्चित्त न करें ॥

यथा । न भक्षयेत् क्रियादुष्टं यद् दुष्टं पतितैः पृथक् ।

क्रिया दुष्ट और पतितों से दुष्ट अन्न को न खाना चाहिये ॥

२ अभक्ष्याणि द्विजातानाम मेध्यप्रभवाणि च ॥

अमेध्य अपवित्र स्थान में उत्पन्न को न खाना चाहिये जैसे।

मृद्वारि कुसमादींश्च फलकंदेक्षुमूलकान् विण्मूत्र दूषितान्न प्राश्य चरेत् कृच्छ्रं च पादतः ॥

लघु विष्णुः ।

फल गन्ना मूली आदि यदि विष्ठा मूत्रसे दूषित हो अर्थात् अपवित्र स्थान में उत्पन्न होतो उनको खाकर कृच्छ्र व्रत को एक पाद करे ।

म्लेच्छान्नं म्लेच्छ संस्पर्शः म्लेच्छेन सह संस्थितिः

देवलः ।

म्लेच्छों का अन्न खाकर म्लेच्छों से स्पर्श कर तथा स्थिति करके तीन रात्रि उपवास करना चाहिये ॥

एवं । संसर्ग दुष्टं यच्चान्नं क्रियादुष्टं च कामतः । भुक्त्वा स्वभाव दुष्टं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥व्यास।

संसर्गदुष्ठ, क्रिया दुष्ट और स्वभावदुष्ठ अन्न को खाकर तप्त कृच्छ्र व्रत करे ॥

स्वभावदुष्ट ॥ मांस मूत्र पुरीषाणि प्राश्य गो मांसमेव च।
श्व गो मायुकपीनांच तप्त कृच्छ्रं विधीयते॥पाठीनसिः

मांस मूत्र पुरीष (विष्टा) तथा गो कुत्ता, गीदड़, कपि का मांस खाकर तप्तकृच्छ्र व्रत करे।

संसर्गदुष्ट ॥ केशकीरावपन्नं तु नीली लाक्षोपघातितम्।
स्नाय्वस्थि चर्म संस्पृष्टं भुक्त्वान्नंतूपवसेदहः ॥

वृहद्यमः

केश (बाल) कीर, नील, लाक्षा से युक्त तथा हड्डी चर्म आदि से छूत अन्न को खाकर उपवास करना चाहिये।

जाति दुष्ट—अविखरोष्ट्र मानुषीक्षीर प्राशने तप्तकृच्छ्रः ।

भेड़, गधी, ऊंटनी और मानुषी का दूध पीकर तप्त कृच्छ्र करे।

एवं रस दुष्ट गुण दुष्ट और काल दुष्ट अन्न का निषेध है जिन से शारीरिक और आत्मिक उन्नति में बाधा पड़ती हो।

* विवाह *

इसमे सन्देह नहीं कि तुल्य वर्ण का विवाह अर्थात् ब्राह्मण गुण युक्त ब्राह्मण कुमार का तदनुकूल ब्राह्मण कुमारी से विवाह उत्तम और श्रेयस्कर है और इसकी सबने प्रशंसा की है, क्योंकि उत्तम वीर्य और उत्तम क्षेत्र के संयोग से उत्तम संतान की विशेष संभावना है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि अपने से नीचे वर्ण में विवाह करने वाला पतित होजाता है। क्योंकि ऋषियों ने वर्ण क्रम से चार, तीन, दो और एक वर्ण में विवाह की आज्ञा दी है:-

शूद्रैव भार्य्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृतः ।
ते च स्वा चैव राज्ञ श्चताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥

मनुः ३–१३

ब्राह्मण की ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा स्त्री होसक्ती है, अर्थात् ब्राह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता है । क्षत्रिय तीन में वैश्य दो में शूद्र केवल एक शूद्र वर्ण में ।

हां याज्ञवल्क्य आदि ने ब्राह्मण का शूद्रा से विवाह का निषेध किया, परन्तु प्राचीनकाल में अनेकों ने मनु की इस आज्ञा का अनुकरण किया और वे पतित नहीं हुए ॥

मनु का सिद्धान्त हैं कि :–

याद्दग्गुणेन भर्त्रा स्त्री सं युज्येद् यथाविधिः ।
ताद्दग् गुणा साभवति समुद्रेणेवनिम्नगा ॥

मनुः ९–२२

स्त्री जैसे भर्त्ता से विवाही जाती है, वैसी ही होजाती है जैसे समुद्र में मिली हुई नदी । अर्थात उसका वही वर्ण और गोत्र हो जाता है जो पति का :–

इसके आगे उदाहरण रूप से वताया है कि–

अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ता धम योनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणी यताम् ॥

मनुः ९–२३

अधम योनि में उत्पन्न अक्षमाला वशिष्ठ के संग से तथा शारङ्गी मन्दपाल के सङ्ग विवाह करने से पूज्य वनीं । अतएव सम्पूर्ण

ऋषियों ने (बुद्धिमतेकन्यां प्रयच्छेत्) आश्वला० गृ० सू० १-५-२।

नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् । मनुः

इस बात पर बल दिया कि गुण कर्मानुसार योग्य वर को कन्या देनी चाहिये।

इतिहासों के देखने से प्रतीत होता है कि भृगु आदिकों ने न केवल अनुलोमज विवाह किया प्रत्युत बहुत से द्विजातियों ने उन की कन्याओं से विवाह किया जिनको नीच वा अन्त्यज कहा जाता है।

महाराजा शन्तनु कैवर्त्य (अन्त्यज) की कन्या को देखकर कहता है :—

न चास्ति पत्नी मम वै द्वितीया ।
त्वं धर्म पत्नी भव मे मृगाक्षि ॥

दे० भा० स्कं० २ अ० ५

हे मृगनयनी ! मेरे आगे कोई स्त्री नहीं है, तू मेरी धर्म पत्नी बन।

जब कैवर्त्त के आग्रह से भीष्म ने राज्य और विवाह दोनों के त्याग की प्रतिज्ञा की तो :—

एवं कृत प्रतिज्ञांतु निशम्य षझजीविकः ।
ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वाङ्ग शोभनाम् ॥

इस कैवर्त्त ने अपनी सत्यवती कन्या शन्तनु को विवाह दी

एवं पराशर तथा व्यासका शूद्र कन्या से पुत्र उत्पन्न करना अर्जुन का उलोपी से विवाह भीमसेनका हिडिम्बा से पुत्र उत्पन्न करना इसका साक्षी है कि निचले वर्ण से कन्या लेने में कोई पतित नहीं हुआ ॥

विशेष क्या कहें ऋषियों ने तो पतितों की कन्या भी ले लेने की आज्ञा दी है देखो याज्ञवल्क्य प्रा० प्र० श्लोक २६१—और इस की मिताक्षरा टीका ।

कन्यां समुद्वहे देषां सोपवासाम किञ्चनाम् ।२६१

पतितों की कन्या को विवाह ले—जो उन पतितों के धन से रहित हो और जिसने उपवास किया हो ॥

मिताक्षरा (पतितोत्पन्नापि सा न पतिता) पतित से उत्पन्न हो कर भी कन्या पतित नहीं होती ॥

वसिष्ठ कहता है

पतितोत्पन्नः पतित इत्याहुरन्यत्र स्त्रियः ।
सा हि पर गामिनी तामरिक्था मुपादेयादिति ॥

पतित की संतान पतित होती है बिना कन्या के, अर्थात् कन्या पतित नहीं होती, क्योंकि कन्या दूसरे घर जाने वाली होती है, वह त्यागने योग्य नहीं ।

इस लिये उन पतितों के धन से रहित उसको विवाह लेना चाहिये ॥

हारीत—पतिस्य कुमारीं विवस्त्रामहोरात्र मुपोषितांप्रातः शुक्लेन वाससाच्छादितां "नाह मेतेषां नममैत"

इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत् ।

पतित की कन्या जो वस्त्र से रहित हो जिसने एक रातदिन का उपवास कर लिया हो प्रातःकाल नवीन वस्त्र से आच्छादित हो और जो तीनवार उच्च स्वर से कहदे कि "न मैं इनकी और न यह मेरे" अर्थात् उन पतितों का संसर्ग छोड़ दे उसको विवाह लेना चाहिये। मिताक्षराकार यह व्यवस्था देता हुआ लिखता है :-

एवं च सति पतित योनि संसर्ग प्रतिषेधो भवति।

ऐसा करने से पतित योनि संसर्ग दोष दूर होजाता है अत एव मनु की आज्ञा है कि :-

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च रत्नानि समादेयानि सर्वतः ॥

मनुः २-२४०

स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म्म, शौच, और सुभाषित जहां से मिले ले लेना चाहिये ॥

* पतित और प्रायश्चित्त *

१ अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितञ्च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु, प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

मनुः-११-४४

विहित कर्मों के न करने से निन्दित कर्मों के सेवन तथा इन्द्रियासक्ति से मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है ॥

जैसे निर्मल दर्पण कालिया आदि के संसर्ग से मलिन हो

कर प्रतिविम्ब दर्शन के योग्य नहीं रहता, जब तक कि युक्त साधनों द्वारा उसका मार्ज्जन न किया जावे ।

एवं मनुष्य का अन्तःकरणावच्छिन्न जीवात्मा मोहा वरण से आच्छादित होकर अभक्ष्य भक्षणादि पापाचार से मलिन वा अपवित्र हो जाता है, जब तक कि उसको युक्त रीति से शुद्ध न किया जावे ॥ अतएव ऋषियों ने आज्ञा दी कि :—

एवमस्यान्तरात्माच लोकश्चैव प्रसीदति ॥

पा० प्रा० प्र० ३–२२०

इस (प्रायश्चित्त) से प्रायश्चित्ती का अन्तरात्मा और लोग प्रसन्न हो जाते हैं ॥ क्योंकि प्रायश्चित्त का अर्थ ही पापों से छूटना और निर्मलता को स्वीकार करना है । जैसे :—

प्रायः पापं विजानीयाश्चित्तं वै तद्विशोधनम् ।

प्रायः, नाम पाप का है और चित्त उसकी शुद्धि है तथा

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते ।
तपो निश्चय संयुक्तं प्रायश्चित्तं तदुच्यते ॥

प्रायः नाम तप का है और चित्त नाम निश्चय का है, तप और निश्चय को प्रायश्चित्त कहते हैं । अर्थात वह साधन जो शास्त्रों तथा देशकालानुसार विद्वान् पुरुषों ने नियत किये हों, जिन के अनुष्ठान से पातकी के आत्मा तथा जाति की प्रसन्नता हो, उसका नाम प्रायश्चित्त है ॥ अत्रि ऋषि इस प्रकार से इसका नाम शौच रखते हैं—जैसे

अभक्ष्य परिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ।
आचारेषु व्यवस्थानं शौच मित्यभिधीयते ॥

अत्रि० श्लो० ३५

अभक्ष्य का परित्याग नीच संसर्ग से वियुक्ति और अपने वर्णाश्रमानुकूल सदाचार में स्थिति का नाम शौच वा शुद्धि है॥

में इस प्रायश्चित्त निर्णय से प्रथम यह प्रकट कर देना चाहता हूं कि इस विषय में संप्रति प्राचीन आर्य जाति से हम बहुत दूर चले गये हैं । प्राचीन समय में क्या शास्त्र दृष्टि से और क्या कर्मानुष्ठान से जिसको जातिच्युत (पतित) समझा जाता था इस समय के अनुष्ठान में ऐसा नहीं दीख पड़ता चाहे शास्त्र दृष्टि में वह अब भी ऐसे ही पाप हैं जैसे कि इस से प्रथम थे । मनु बतलाता है कि

ब्राह्मणस्य रूजः कृत्वा घ्राति रघ्रेयमद्ययोः
जैह्मयं च मैथुनं पुंसि जाति भ्रंशकरं स्मृतम् ॥

मनु० ११ । ६७ ।

ब्राह्मण को लाठी आदि से दुःख देने वाला, मद्य और दुर्गन्धि युक्त पदार्थों को सूंघने वाला, कुटिल, तथा पुरुष से मैथुन करने वाला, जातिच्युत (पतित) होता है ॥

जाति भ्रंशकरं कर्म्म कृत्वाऽन्यतम मिच्छया ।
चरेत्सां तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यम निच्छया ॥

मनु० ११ । १२४

इन (पूर्वोक्त) में से कोई भी कर्म्म इच्छा के करने से प्राजापत्य ब्रत करे ॥ परंतु आज कल ऐसे कर्म्म करने वालों को जाति च्युत नहीं किया जाता ॥

शास्त्रों में लिखा है कि

ब्रह्महत्यां सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥
अनृतं च समुत्कर्षे राजगामिच पैशुनम् ।
गुरोश्चालीक निर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ इत्यादि

मनुः–११ श्लो० ५४–५८

ब्रह्महत्या, सुरापान (शराब पीना) चोरी– और गुरु-की स्त्री से संग यह महा पाप हैं। और इन से संसर्ग करने वाला भी महा पातकी है तथा असत्य बोलना, चुगलीखाना, वेद की निन्दा, झूठी साक्षी देना, धरोहर का हर लेना आदि को पूर्वोक्त महा पातकों के तुल्य लिख कर नाना प्रायश्चित्त लिखे जिनमें प्राणान्त तक भी दण्ड विधान है। जिनकी ओर आज कल दृष्टि नहीं दी जाती। इसका यह मतलब नहीं कि अब वह पाप नहीं रहे। तात्पर्य यह है कि समय के प्रभाव से सुरापान वा असत्यभाषण आदि से किसी को जातिच्युत नहीं समझा जाता। और ब्रह्महत्या आदि में यदि दंड दिया जाता है तो वह राज्य की ओर से ही होता है॥

अतः उन सब को विस्तार भय से छोड़कर इस पुस्तक में केवल उन्हीं पातकों वा उपपातकों को दरशाया गया है जिनसे

इस समय मनुष्य पतित किया जाता है और जिनकी शुद्धि में विवाद होरहे हैं।

क्या प्राचीन समय में और क्या वर्त्तमान् में आर्यजाति सदैव गोहत्या और गोमांस भक्षण को पाप मानती रही है और मानती है। और इस पाप में ग्रस्त को जातिच्युत समझा जाता है। इस लिये सब से प्रथम इसी का वर्णन किया जाता है।

मन्वादि सकल स्मृतिकारों ने गोवध को उपपातकों में स्थान दिया है, और उसके प्रायश्चित्त का भी देश काल पाप वा शक्त्यनुसार न्यूनाधिकतया वर्णन किया है।

मनुने अध्याय ११ श्लो० १०८--११६ में लिखा है कि:-

उपपातक संयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिबेत्।
कृतवापो वसेद् गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः। १०८

उपपातक युक्त गो घातक एक मास पर्यन्त यवों को पीवे, मुण्डन कराकर गौ का चर्म ओढ़ गोशाला में रहे।

जितेन्द्रिय होकर क्षार लवण रहित अन्न को चौथे प्रहर खावे और दो मास पर्यन्त गोमूत्र से स्नान करे॥

चलती के पीछे चले बैठने पर बैठ जाय इत्यादि सेवा बतला कर कि इसप्रकार जो गौ हत्यारा गौ की सेवा करता है यह तीन मास में उस पाप से छूटकर शुद्ध होजाता है।

व्रत के उपरान्त दस १० गौयें और एक बैल वेदवेत्ता ब्राह्मण को देवें यदि इतनी शक्ति न रखता हो तो सर्वस्व दे देवे।

याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि:-

पंच गव्यं पिबेद् गोघ्नो मासमासीच्च संयतः।
गोष्ठेशयो गोनुगामी गोप्रदानेन शुद्धयति॥
(या० प्रा० प्र ३)

गौ हत्यारा मास पर्यन्त संयम से पञ्चगव्य पीने से, गोष्ठ में शयन करने से गौके पीछे चलने तथा गोदान से शुद्ध होजाता है।

समय के परिवर्त्तन से संवर्त्ताचार्य ने १५ दिन में इसकी शुद्धि की व्यवस्थादी।

गोघ्नः कुर्वीत संस्कारं गोष्ठे गोरुपसन्निधौ।
तत्रैवक्षितिशायी स्यान्मासार्द्धं संयतेन्द्रियः॥ १३३
स्नानं त्रिषवणं कुर्य्यान्नख लोम विवर्ज्जितः।
सक्तु यावक भिक्षाशी पयोदधि सकृन्नरः॥ १३४
एतानि क्रमशोऽश्नीयात् द्विजस्तत्पापमोक्षकः।
गायत्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः॥१३५
पूर्णे चैवार्द्ध मासेच सविप्रान् भोजयेद् द्विजः।
भुक्तवत्सु च विप्रेषु गांच दद्यात् विचक्षणः॥
(संवर्त्त० १३६)

गोघातक गोशाला में जाकर संस्कार करे, वहां ही पृथिवी पर १५ दिन शयन करे, तीन वक्त स्नान करे, नख तथा लोम कटवादे, मांगकर यवों के सत्तु खाये, अथवा एक वक्त दूध वा दही खाये, गोहत्या से मुक्त होने के लिये इन साधनों को करे।

गायत्री तथा अन्य पवित्र अघमर्षण आदि यवों का जप

करे जब १५ दिन पूर्ण होजावे, तो ब्रह्मभोज करे और गौदान देवे।

एवं संपूर्ण उपपातकों के भिन्न २ प्रायश्चित्त बतलाकर अन्त में सर्व साधारण प्रायश्चित्त का उपदेश किया :-

उपपातक शुद्धिः स्याच्चान्द्रायण ब्रतेन च।
पयसा वापि मासेन पराकेणाथ वा पुनः ॥
(या० प्रा० प्र० ६-२६५)

चान्द्रायण ब्रत से, वा एक मास पर्यन्त दूध पान करने से, अथवा पराक ब्रत करने से ही गोहत्या आदि सकल उपपातकों की शुद्धि होजाती है। इसमें मिताक्षराकार व्यवस्था देता है कि याज्ञवल्क्य ने देश काल शक्ति की अपेक्षा से अज्ञानकृत गोहत्या में चार ब्रत नियत किये हैं। १. चान्द्रायण २ मास पर्यन्त दुग्धपान, मास पर्यन्त पञ्चगव्य, वा पराकब्रत, शक्त्यानुसार इनमें कोई एक करने से शुद्धि होजाती है। और ज्ञान से गोबध में मनु का सिद्धान्त है कि :-

अवकीर्णी वर्ज्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायण मथापिवा।
(मनुः ११-११७)

बिना अवकीर्णी के शेष सब उपपातकियों की चान्द्रायण से शुद्धि होजाती है।

* अभक्ष्यभक्षण तथा अगम्या गमन *

अभोज्यानांञ्च भुक्त्वान्नं स्त्री शूद्रोच्छिष्ट मेवच।
जग्ध्वा मांस मभक्ष्यंच सप्तरात्रं यवान् पिबेत् ॥
(मनुः ११-१५२)

अभोज्य अर्थात् पतित म्लेच्छ आदिकों का अन्न खाकर स्त्री और शूद्र का जूठा अन्न खाकर तथा अभक्ष्य मांस (गोमांसादि) खाकर सात रात्रि जौ के सत्तु वा (लप्सी) खाने से शुद्धि होजाती है। एवं अत्रिस्मृतिः पृ० ३ श्लो० ७२।

अमेध्य रेतो गोमांसं चांडालान्न मथापिवा।
यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥
(पराशर–११–१)

अपवित्र वीर्य—गोमांस तथा चांडाल का अन्न खाकर ब्राह्मण कृच्छ्र चान्द्रायण से शुद्ध होता है॥ (ऐसे स्थानों पर जहां केवल ब्राह्मण का ही नाम हो (क्षत्रिय विट् शूद्राणां तु पादपाद हानिः) का सिद्धान्त याद रक्खें अर्थात नीचे २ वर्ण में एक२ पाद कम हो जाता है।

अगम्या गमनं कृत्वा मद्य गोमांस भक्षणम्।
शुद्धयेच्चाद्रायणाद्विप्रः प्राजायत्येन भूमिपः ॥
वैश्यः सांतपनाच्छूद्रः पंचाहो भिर्विशुद्धयति ॥
गरुड़पु० सू० अ० २१४– श्लो० ४९

न गमन करने योग्य स्त्री से गमन कर, मद्य और गो मांस भक्षण करके ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करे, क्षत्रिय प्राजापत्य वैश्य सांतपन और शूद्र पांच दिन के व्रत से शुद्ध हो जाता है॥

भुंक्ते ज्ञानाद द्विजश्रेष्ठश्चाण्डालान्नं कथंचन।
गोमूत्र यावकाहारो दशरात्रेण शुद्धयति ॥
पराशर० ६–३२

ब्राह्मण यदि ज्ञान पूर्वक चाण्डाल का अन्न खाले, तो दस दिन यव खाने तथा गो मूत्र पीने से शुद्ध हो जाता है ॥

अन्त्यजोच्छिष्ट भुक् शुद्ध्येत् द्विजश्चान्द्रायणेनच।
चाण्डालान्नं यदा भुंक्ते प्रमादादैन्दवं चरेत् ॥
क्षत्रजातिः सान्तपनं पक्षो रात्रं परे तथा ॥

गरुड़–पू० आ० २१४–१२

द्विज अन्त्यजों का जूठा खाकर चाद्रायण व्रत से शुद्ध होता है यदि ब्राह्मण प्रमाद से चांडाल का अन्न खाले तो चान्द्रायण क्षत्रिय सांतपन वैश्य पाक्षिक और शूद्र एक रात्रि के व्रत से शुद्ध हो जाता है ॥

चाण्डालपुल्कसादीनां भुक्त्वा गत्वा च योषिताम्।
कृच्छ्राष्टमा चरेत्कामाद कामादैन्दवं चरेत् ॥

यमस्मृ० २८

इच्छा पूर्वक चांडाल आदिकों का अन्न खाकर और उनकी स्त्रियों से मैथुन कर आठ कृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध हो जाता है ॥

असंस्पृष्टेन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥

अत्रि० श्लो० ७३

नस्पर्श करने योग्यसे स्पर्श कर केवल स्नान से शुद्ध होजाताहै।

सर्वान्त्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ।
पराकेण विशुद्धिः स्याद् भगवान त्रिरब्रवीत् ॥१७

भगवान् अत्रि कहते हैं कि सपूर्ण अंत्यज जातियों के अन्न खाने से उनमें गमन करने से पराक व्रत से शुद्धि होती है ॥

संस्पृष्टं यस्तु पक्कान्न मन्त्यजैर्वा प्युदक्यया ।
अज्ञानाद्द ब्राह्मणोऽश्नीयात् प्राजापत्यार्द्धमा चरेत॥

अत्रि १.७२

ब्राह्मण अंत्यज तथा रजस्वला के स्पर्श किये पक्क अन्न को यदि अज्ञान से खाले तो आधा प्राजापत्य व्रत करे–और ज्ञान से खाले तो सारा ।

अन्त्यजानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः ।
चान्द्रं कृच्छ्रं तदर्द्धं च ब्रह्म क्षत्र विशांविदः ॥

अंगिराः–२

अन्त्यजों के भी पकाए अन्न को खाकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य क्रम से चान्द्रायण, कृच्छ्र और आधा कृच्छ्र कर शुद्ध हो जाते हैं ॥

कापालिकान्न भोक्तृणां तन्नारी गामिनां तथा ।
कृच्छ्राब्दमा चरेज् ज्ञानाद ज्ञानादैन्दवं द्वयम् ॥

यम–२१

ज्ञान से कापालिकों का अन्न खाकर और उनकी स्त्रियों से गमन कर वर्ष पर्यन्त कृच्छ्र व्रत करे और यदि अज्ञान से करे तो चान्द्रायण व्रत करे ॥

महा पातकिनामन्नं योऽद्याद ज्ञानतो द्विजः ।

अज्ञानात्तप्तकृच्छ्रं तु ज्ञानाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥

बृदत्पा० ६-१८९

जो द्विज महा पातकियों के खाले तो अज्ञान से खाने में तप्त कृच्छ्र व्रत करे। और ज्ञान पूर्वक खाने में चान्द्रायण व्रत कर शुद्ध हो जाता है ॥

अभक्ष्य भक्षणे विप्रस्तथैवा पेयपान कृत्।
व्रतमन्यत् प्रकुर्वीत वदन्त्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥

बृ० पा० ६-२०६

कई विद्वान् ब्राह्मणों का कथन है कि ब्राह्मण अभक्ष्य भक्षण कर तथा अपेय पानकर कोई एक व्रत कर शुद्ध हो जाता है ॥

शलूषीं रजकीं चैव वेणु चर्म्मोपजीवनीम्।
एताः गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चान्द्रायण व्रतम् ॥

संवर्त्त-१५४

द्विज मोह से नटी, रजकी, डूमणी, अथवा चमारी से संगम करके चान्द्रायण व्रत करे ॥

चांडालीं च श्वपाकीं वा अनुगच्छति यो द्विजः।
त्रिरात्र मुपवासीत विप्राणा मनुशासनात्। ५
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत्।
ब्रह्म कूर्चं ततः कृत्वा कुर्य्याद्द ब्राह्मण तर्पणम् ॥६
गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्द गो मिथुन द्वयम्।
विप्राय दक्षिणां दद्यात् शुद्धिमाप्नोत्य संशयम् ॥७

परा० १०

जो द्विज चांडाली वा श्वपाकी का संग करे। वह ब्राह्मणों की आज्ञानुसार तीन दिन उपवास कर शिखा सहित मुंडन करा कर, अनन्तर ब्रह्म कूर्च करके ब्राह्मणों को प्रसन्न करे,नित्य गायत्री जप करे और दो गौ का दान करे तो शुद्ध हो जाता है ॥

म्लेच्छान्नं म्लेच्छ संस्पर्शो म्लेच्छेन सह संस्थितिः
वत्सरं वत्सरादूर्ध्वं त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ देवल०

जिसने एक वर्ष वा वर्ष से अधिक म्लेच्छों का अन्न खाया हो म्लेच्छ सहवास किया हो उसकी शुद्धि तीन दिन व्रत करने से होता है ॥

म्लेच्छः सहोषितो यस्तु पंच प्रभृति विंशतिम् ।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायण द्वयम् ॥देव

जो पांच वर्ष से लेकर बीस वर्ष पर्यन्त म्लेच्छों के साथ रहा हो उसकी शुद्धि दो चान्द्रायण व्रत करने से होजाती है ।

* चाण्डालादिकों के जलपान में शुद्धिः *

चाण्डाल भाण्डे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ।
गोमूत्र यावकाहारो सप्त षट् त्रिः द्व्यहान्यपि ॥

(अत्रि० १७१)

ब्राह्मण आदि यदि चाण्डाल के घड़े में से जल पीलें तो क्रम से सात छः तीन और दो दिन गोमूत्र तथा यव खाने से शुद्ध होजाते हैं ।

भाण्डे स्थितमभोज्यानां पयोदधि घृतं पिबेत् ।

द्विजाते रूपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्धयति ॥

(बृ० या० ६–२०९)

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यदि अभोज्यों के भांडे में जल, दही और घी पीलें तो उपवास करके और शूद्र दान से शुद्ध होजाते हैं।

मद्यादि दुष्ट भाण्डेषु यदायं पिबतेद्विजः ।
कृच्छ्रपादेन शुद्धयेत् पुनः संस्कार कर्मणः ॥

(गरु० पु० २१४–१७)

जो द्विज मद्य आदि से दुष्ट भांडे में जल पान करे, तो कृच्छ्र पाद से शुद्ध होजाता है ।

* कुपादि की शुद्धिः *

अस्थि चर्म मलं वापि मूषिके यदि कूपतः ।
उद्धृत्य चोदकं पंचगव्याच्छुद्धयेच्छोद्धितम् ॥ ४६
कूपेच पतितौ दृष्ट्वा श्व शृगालौच मर्कटम् ।
तत्कूपस्योदकं पीत्वा शुद्धयेद्विप्रस्त्रिभिर्दिनैः ॥४७

(गरुड़० पु० २१४)

यदि जल भरने वाले कूप से अस्थि, चर्म, मल (विष्टा) वा मृत मूष निकले तो कूप का जल निकालने और पंचगव्य से शुद्धि होजाती है । कूप में कुत्ता, गीदड़ वा वानर का गिरा हुआ देख कर और पुनः उसका जल पीकर ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध होता है ।

* मलिन पदार्थों से शुद्धिः *

अज्ञानात् प्राश्य विन्मूत्रं सुरासंस्पृष्ट मेवच ।
पुनः संस्कार मर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजोतमाः ॥

(मनुः ११–१५०)

तीनों वर्ण मल, मूत्र और सुरा से युक्त पदार्थ को खाकर पुनः संस्कार के योग्य होजाते हैं । अर्थात् उनका पुनः यज्ञोपवीत संस्कार होना चाहिये, परन्तु इसमें मुण्डन वा मेखला आदि नहीं है ।

आपद्धर्म ।

जीवितातपमापन्नो यो ऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥

(मनुः १०–१०४)

प्राणातप में जो द्विज जहां तहां खालेता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता जैसे पंक से आकाश । अर्थात् जहां मिले खालेवे ।

आपद्गतो द्विजोऽश्नीयाद् गृह्णीयाद्वायतस्ततः ।
न स लिप्यते पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा ॥

(बृ० या० ६–३१८)

आपत्ति में द्विज इधर उधर खालेने से पाप में लिप्त नहीं होता, जैसे जल में कमल ।

आपद्गतः सं प्रगृह्णन् भुंजानो वा यतस्ततः ।

न लिप्यतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥

(या० प्रा० प्र० ३ आ २ श्लो०)

आपत्ति में जहां तहां से लेकर खाता हुआ ब्राह्मण पापी नहीं होता, वह प्रकाशमान् सूर्यवत् उज्वल ही रहता है। इसी भाव से विश्वामित्र ने मातंग नाम चांडाल के घर से अभक्ष्य मांस खाने की चेष्टा की देखो महा० भा० शांतिपर्व० अ० ११।

इसी प्रकार :—

श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुं धर्माधर्म विचक्षणः।
प्राणानां परि रक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥

(मनुः–१०–१०६)

धर्माधर्म का ज्ञाता, भूखा हुआ वामदेव ऋषि प्राण रक्षार्थ कुत्ते का मांस खाने की इच्छा से भी पापी नहीं बना। एवं अजीगर्त तथा भारद्वाज आदि। (मनुः–१०)

एवं छान्दोग्य १–१० में आता है कि जब उषस्थि चाक्रायण क्षुधार्त्त होगया, तो उसने एक महाव्रत से जो कुलत्थ खारहा था खाना मांगा। महाव्रत ने कहा शोक है कि मेरे पास यही है, जो मैं खारहा हूं इनके सिवाय मेरे पास और नहीं हैं। तब उषस्थि ने कहा, इन्हीं में से मुझे भी देदो। महाव्रत ने जूठे कुलत्थ देदिये, और उषस्थि ने प्रसन्नता से खाये। जब महाव्रत ने उषस्थि को अपना जूठा जल दिया तो उषस्थि ने वह जल न पिया और कहा कि यदि मैं इस अन्न को न खाता तो मेरा जीवन न रहता। परन्तु मुझे पानी बहुत मिलता है। वह उषस्थि कुछ खाकर कुछ अपनी स्त्री के लिये लेगया, परन्तु उसकी स्त्री को पहिले कुछ

भिक्षा मिल गई थी। इसलिये उसने वह कुलत्थ लेकर रख दिये! दूसरे दिन प्रातःकाल वही बासी कुलत्थ खाकर उषस्थि ने एक बड़े राजा के घर जाकर यज्ञ कराया।

यह इतना बड़ा विद्वान् एक महावत के जूठे तथा बासी कुलत्थ खाता है क्योंकि वह इस धर्म के तत्व को जानता है कि:-

१ देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसने ष्वपि।
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥परा० ७-४१

देश भंग में, विदेश में, व्याधि में, तथा आपत्ति में येन केन प्रकार से अपनी शरीर रक्षा कर लेनी चाहिये, पीछे धर्म अर्थात् व्रत आदि कर लेना चाहिये॥

शंख ऋषि लिखता है कि—

शरीरं धर्म सर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः।
शरीरात्स्रूयतेधर्मः पर्वतात्सलिलं यथा॥ शंख० अ० १७

शरीर धर्म का सर्वस्व है, शरीर से धर्म होता है—जैसे पर्वत से जल इस लिये प्रयत्न से शरीर की रक्षा करनी चाहिये॥

पराशर के (देशभंगे प्रवासे वा) से यह भी सिद्ध होता है कि आज कल जो विद्यार्थीगण विद्यार्थ अन्य देशों में जाते हैं और वहां दूसरे लोगों के हाथ से खाते हैं, वह पतित नहीं। यदि वह अभक्ष्य गो मांस आदि तथा अगम्यागमन आदि कुकर्म से अपने आप को पतित न करें॥

अतएव पराशर ने कहा है कि—

यत्र कुत्र गतो वापि सदाचारं न वर्जयेत्।

जहां कहीं जाओ परंतु अपने सदाचार को न छोड़ो ॥

देवलः

म्लेच्छैर्हतो वा चौरैर्वा कान्तारे विप्रवासिभिः ।
भुक्त्वा भक्ष्य मभोज्यं तु क्षुधार्त्तेन भयेन वा ॥ १
पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः ॥२
कृच्छ्रमेकं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियश्चरेत् ।
तदर्द्धमाचरे द्वैश्यः शूद्रः पादं समाचरेत् ॥३॥

र० बी० प्र० १२

जो म्लेच्छोंसे, वा चोरोंसे, अथवा बन में लुटेरों से ताड़ित हो कर अथवा अति क्षुधा के कारण अभक्ष्य भक्षण करले-व किसी के भय से अभक्ष्य भक्षण करे तब चारों वर्णों की शुद्धि इस प्रकार से होती है कि ब्राह्मण अपने देश में आकर एक कृच्छ्र ब्रत करे, क्षत्रिय उससे पौना, वैश्य अपनी शुद्धि के लिये आधा- औ शूद्र एक पाद कृच्छ्र ब्रत करे ॥

प्रायश्चित्ते विनीते तु तदा तेषां कलेवरे ।
कर्त्तव्यः सूत्र संस्कारो मेखला दण्ड वर्जितः ॥३

जिसने प्रायश्चित्त कर लिया हो उनके शरीर में मेखला और दंड से रहित यज्ञोपवीत संस्कार करना योग्य है ॥

तदासौ स्वकुटुम्बानां पङ्क्तिं प्राप्नोति नान्यथा ।
स्वभार्यां गन्तु मिच्छे च्चैव विशुद्धितः ॥६

तब प्रायश्चित्त करके अपने कुटुम्ब की पंक्ति को प्राप्त होता है यदि अपनी स्त्री पास जाने की इच्छा करे तो शुद्ध होकर जावे॥

बलाद् दासी कृतो म्लेच्छैश्चाण्डाला द्यैश्च दस्युभि ।
अशुभं कारितं कर्म गवादि प्राणिहिंसनम् ॥९
उच्छिष्ट मार्ज्जनं चैव तथा तस्यैव भक्षणम् ।
तत्स्त्रीणां च तथा संगः ताभिश्च सहभोजनम् ॥१०
कृच्छ्रान् संवत्सरं कृत्वा सांतपनान् शुध्दि हेतवे ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियस्त्वर्द्धं कृच्छ्रान् कृत्वा विशुध्यति ।११
मासोषितश्चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति ॥

जिसको म्लेच्छों वा चोरों चांडालों ने बल से अपना दास बना लिया हो, उससे गौ आदि की हिंसा कराई हो अथवा उस ने उन म्लेछ आदिकों की जूठ खाई हो वा उनकी स्त्रियों से मैथुन वा उनके साथ भोजन किया हो इसकी शुद्धि के लिये ब्राह्मण एक वर्ष तक कृच्छ्र सांतपन करे, क्षत्रिय ब्राह्मण से आधा करे, वैश्य एक मास उपवास करने से और शूद्र चौथा हिस्सा प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो जाता है ॥

गृहीतो वा बला न्म्लेच्छैः स्वयं वा मिलितस्तु यः ।
वर्षाणि पंच सप्ताष्टौ शुद्धिस्तस्य कथं भवेत् ॥
प्राजापत्य द्वयं तस्य शुद्धि रेषा प्रकीर्त्तिता ॥

जिसको म्लेच्छों ने बल से दास कर लिया हो, अथवा अपनी इच्छा से मिला हो पांच, सात, आठ वर्ष म्लेच्छों के साथ

रहा हो दो प्राजापत्य व्रत से उसकी शुद्धि हो जाती है ॥

म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पंच प्रभृति विंशतिम् ।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायण द्वयम् ।
कक्षा गुह्यं शिखा श्मश्रु चत्वारि परिवापयेत् ॥
प्रहृत्य पाणि पादां तान्नखान् स्नातस्ततः शुचिः ।

जो म्लेच्छों के साथ पांच से वीस वर्ष पर्यन्त रहा हो उसकी दो चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है । और उसके कक्षा गुह्य और श्मश्रु (दाढ़ी) आदि के लोम और हाथ पाओं के नख उतरवा देने चाहिये ॥

* पतित स्त्रियों की शुद्धि *

पुरुषस्य यानि पतन निमित्तानि स्त्रीणामपितान्येव ।
संसर्ग स्तदीयमेव प्रायश्चित्तमर्हं कृत्वा प्रदातव्यम् ॥

(शौनकः)

जिन कारणों से पुरुष पतित होते हैं स्त्री भी उन्हीं कारणों से पतित होती है । परन्तु जिस पातक से संसर्ग हो उसका आधार प्रायश्चित स्त्री से कराना चाहिये । क्योंकि सब का मत है कि (स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यम्) स्त्रियों को आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये ।

रजकश्चर्मकारश्च नटो बरुड़ एवच ।
कैवर्त्त मेद भिल्लाश्च सप्तैतेऽन्त्यजाःस्मृताः ॥ १९६
एतान् गत्वा स्त्रियो मोहाद् भुक्त्वा च प्रतिगृह्यच ।
कृच्छ्राब्दमाचरेज् ज्ञानादज्ञानादेव तद्द्वयम् ॥ १९७अ०

रजक, चमार, नट, बरुड़, कैवर्त्त, (मल्लाह) मेद, और भील यह सात अन्त्यज हैं। जो स्त्री इन पूर्वोक्त अन्त्यजों से सङ्ग करे। इनके खाले अथवा लेलेवे, वह यदि ज्ञान से हो तो वर्ष भर कृच्छ्र व्रत करे और यदि अज्ञान से हो तो दो कृच्छ्र व्रत करें।

सकृद् भुक्त्वा तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत् ऋतु प्रस्रवणेन तु ॥ १९८
बलोद्धृतां स्वयं वापि पर प्रेरितया यदि।
सकृद् भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति॥१९९

जो स्त्री पाप कर्मी म्लेच्छों से एकबार भोगी गई हो, वह प्राजापत्य व्रत से और ऋतु आने से शुद्ध होती है।

जिस स्त्री को म्लेच्छों ने बल से भोगा हो अथवा वह स्वयं गई हो अथवा किसी की प्रेरणा से एक बार भोगी गई हो वह प्राजापत्य व्रत से शुद्ध होजाती है।

असवर्णात्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते।
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुंचति॥
विमुक्ते तु ततः शल्ये रजसोवापि दर्शने।
तदा सा शुद्ध्यते नारी विगतं काञ्चनं यथा॥

(अत्रि० २९१-२९२)

असवर्णी से गर्भ धारणकर स्त्री अशुद्ध होजाती है, जब तक कि वह न निकाला जावे, अथवा ऋतु न आजावे। ऋतु के अन-

न्तर निर्मल कांचनवत् शुद्ध होजाती है।

यमाचार्य लिखता है कि :-

योषा विभर्त्ति या गर्भं म्लेच्छात्कामादकामतः।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या तथा वर्णेतरापिच॥
अभक्ष्यं भक्षितं चापि तस्याः शुद्धिः कथं भवेत्।
कृच्छ्र सांतपनं शुद्ध घृतैर्योनि विपाचनम्॥

यदि ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, वा शूद्री, इच्छा से अथवा अनिच्छा से किसी म्लेच्छ का गर्भ धारण करले, अथवा अभक्ष्य भक्षण करले तो कृच्छ सांतपन से, और शुद्ध किये घी से योनि प्रक्षालन कर शुद्ध होजाती है।

चाण्डालं पुल्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा।
एतान् श्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्य्यु श्चान्द्रायणत्रयम्॥

(संवर्त्त० १७३)

श्रेष्ठ स्त्रियें अर्थात् ब्राह्मणी आदि चांडाल आदि नीच से संसर्गकर तीन चान्द्रायण व्रत करे।

अन्तर्वत्नी तु या नारी समेत्याक्रम्य कामिता।
प्रायश्चित्तं नकुर्य्यात्सा यावद्गर्भो न निसृतः॥
गर्भे जाते व्रतं पश्चात्कुर्य्यान्मासं तु यावकम्।
न गर्भदोषस्तस्यास्ति संस्कार्य्यः स यथाविधि॥

यदि गर्भवती स्त्री बलात्कार किसी म्लेच्छादि से भोगी

जावे, तो वह गर्भ के उत्पन्न होने से प्रथम कोई प्रायश्चित्त न करे।

गर्भ के उत्पन्न होने के अनन्तर मास पर्यन्त पवित्रकारक व्रत करे। गर्भ से उत्पन्न हुई सन्तान को कोई दोष नहीं, अतः उस का यथा विधि संस्कार करना चाहिये।

अति तुच्छ पातकों में तो आचार्य्यों का मत है कि :-

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।

(गरुड़० २१४-२२१)

स्त्री, बाल, और बृद्ध दोषी ही नहीं होते।

क्योंकि सब का मत है :-

रजसाशुद्ध्येतनारी नदी वेगेन शुद्ध्यति।

(अङ्गिरा० ४२)

स्त्री रज के आने से शुद्ध होजाती है और नदी वेग से। इसीलिये शास्त्रों की आज्ञा है कि पतित की कन्या पतित नहीं होती देखो विवाह प्रकरण।

अनुक्त निष्कृतीनान्तु पापानामपनुत्तये।
शक्तिं चा वेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्॥

(मनुः ११-२०९)

जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा, उन पापों की दूरी के लिये शक्ति और पाप को देखकर प्रायश्चित्त कल्पना करना चाहिये।

अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च ।
तच्छुद्ध्यै पावनं कुर्य्याश्चान्द्रायणं समाहितः ॥
(बृ० पा० ६–१११)

जिन पापों वा उपपापों का वर्णन नहीं किया गया उन सब की शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिये ।

मैंने पीछे दर्शाया है कि (देशं कालं वयः शक्ति) के अनुसार इसमें न्यूनाधिकता होसक्ती है मनु वतलाता है कि :—

धर्मस्य ब्राह्मणो मूल मग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमेतेषामेनो विख्याप्य शुध्यति ॥ ८३
तेषां वेदविदां ब्रूयु स्त्रयोप्येनः सुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक्॥८४
(मनुः अ० ११)

ब्राह्मण धर्म का मूल है, और राजा (क्षत्रिय) अग्र है इसलिये उनके समागम (सभा) में अपने पाप का निवेदन कर प्रायश्चित्ती शुद्ध होजाता है । क्योंकि तीन वेदवेत्ता विद्वान् जिस पाप के लिये जो प्रायश्चित्त (दण्ड) नियत करे उसी से पापी की शुद्धि होजाती है क्योंकि विद्वानों की वाणी ही पवित्र होती है।

पराशर कहता है :—

तेहि पाप कृतां वैद्याः हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्याः बुद्धिमन्तो रुजापहा ॥
(पराशर २९७)

वे (पूर्वोक्त) विद्वान् लोग पातकियों के पाप दूर करने के लिये उनके वैद्य हैं जैसे रोगी के रोग दूर करने वाले भिषग् (हकीम)।

इसी सिद्धान्तानुसार विद्वानों ने देश कालानुसार गायत्री जाप से, वेद पाठ से, प्राणायाम से, ईश्वर ध्यान से, राम नाम से तीर्थ स्नान से पश्चात्ताप से यहांतक कि ब्राह्मणों के चर्णामृत से ही शुद्धि का उपदेश किया न केवल उपदेश किया प्रत्युत् इस पर अनुष्ठान किया। जैसा कि कई एक उदाहरणों से प्रतीत होता है।

* गायत्री से शुद्धिः *

शतं जप्ता तु सा देवी स्वल्प पाप प्रणाशिनी।
तथा सहस्र जप्ता तु पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥
दश सहस्र जाप्येन सर्वकिल्विष नाशिनी।
लक्षं जप्तातु सादेवी महापातक नाशिनी ॥ २
सुवर्णस्तेय कृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
सुरापश्च विशुद्धयन्ति लक्षं जप्त्वा न संशयः॥

(शंखा १२-२)

सौ बार गायत्री जप से छोटे २ पाप दूर होजाते हैं। सहस्र बार के जप से पातकों से शुद्धि होजाती है दश हजार जप से बहुत से पापों का नाश होजाता है और लक्षबार जप करने से ब्रह्महत्या आदि महापातकों की शुद्धि होजाती है।

संवर्त्त—महापातक संयुक्तो लक्षहोम सदाद्विजः।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो गायत्र्याचैवपावितः। २१६

महापातकी सप्त व्याहृतियों से लक्ष आहुति युक्त हवन करके तथा गायत्री जप से शुद्ध होजाता है।

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम्।
गत्वाऽरण्ये नदी तीरे सर्व पापविशुद्धये॥ २१७

संपूर्ण पापों की शुद्धि के लिये वन में जाकर नदी के किनारे वेद माता गायत्री का अभ्यास करे।

ऐहिकामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः।
पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति। २२०

पांच रात्रि तक गायत्री का जप करता हुआ पुरुष इस जन्म और अन्य जन्म के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है।

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।
महाव्याहृति संयुक्तां प्रणवेन च संजपेत्॥२२१

गायत्री से बढ़कर कोई पापियों का शोधक नहीं। अतः महाव्याहृति और ओंकार से युक्त गायत्री का जप करे।

अयाज्य याजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम्।
गायत्र्यष्ट सहस्रं तु जपं कृत्वा विशुध्यति॥ २२३

अयोग्य को यज्ञ करा और निन्दित अन्न खाकर आठ हजार गायत्री जप से शुद्ध होजाता है।

बृ०परा०—गायत्र्याः शतसाहस्रं सर्वपापहरं स्मृतम् ।
(बृ० पा० ६ । २९१)

एक लक्ष गायत्री जप से सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं ।

ग०पु०—गायत्री परमादेवी भुक्तिमुक्ति प्रदा च तां ।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यान्ति महांत्यापि ॥
(गरुड़ पु० ३७ । १)

गायत्री देवी भुक्ति और मुक्ति के देने वाली है । जो इस का जप करता है उसके बड़े से बड़े पाप नष्ट होजाते हैं ।

चतुर्विंशतिमतं—

गायत्र्यास्तु जपेत्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
लक्षाशीतिं जपेद् यस्तु सुरापानाद्वि मुच्यते ॥ १
पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्यालक्ष सप्तति ।
गायत्र्या लक्ष षष्ट्या तु मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ २

एक करोड़ गायत्री जप से ब्रह्मघाती, अस्सी हजार गायत्री जप से मद्यपायी (शराबी) सत्तर हजार जप से स्वर्ण चुराने वाले और साठ हज़ार जप से गुरु स्त्री से संसर्ग करने वाले की शुद्धि हो जाती है ।

मरीचिः—ब्रह्म सूत्रं बिना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा ।
गायत्र्यष्ट सहस्रेण प्राणायामेन शुध्यति ॥

जो पुरुष बिना यज्ञोपवीत के भोजन करता है वा मूत्रपुरीषोत्सर्ग करता है उसकी शुद्धि आठ सहस्र गायत्री जप तथा प्राणायाम से होती है।

याज्ञवल्क्य :-

गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः।
गायत्री जाप्य निरतः शुध्यतेऽसत् प्रतिग्रहात्॥२८९

(या० प्रा० प्र० ५)

असत् प्रतिग्रह अर्थात् पतित आदि से दान लेकर एक मास पर्य्यन्त दुग्ध पान करता हुआ ब्रह्मचर्य्य धारण कर गोशाला में निवासकर गायत्री जाप से शुद्ध होता है।

मनुः—जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत् प्रतिग्रहात्॥

गोष्ठ में निवासकर तीन हज़ार गायत्री जपकर असत् प्रतिग्रह दोष से विमुक्त होजाता है।

* रहस्य प्रायश्चित्तानि *

मनुः—ऋक् संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(मनुः ११-२६२)

ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, वा सामवेद संहिता, उपनिषदादि सहित तीनबार पाठकर सब पापों से छूट जाता है।

यथा महा ह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥ ११--२६३

जैसे बड़ी नदी में फैंका हुआ ढेला गल जाता है । इसी प्रकार सम्पूर्ण पाप वेदों की त्रिराबृत्ति से नष्ट होजाते हैं ।

संवर्त–ऋग्वेद मभ्यसेद् यस्तु यजुः शाखामथापिवा ।
सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२९

जो ऋग् यजुः अथवा सरहस्य साम का पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ।

याज्ञवल्क्यः–

त्रिरात्रो पोषितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् ।
अन्तर्जले विशुद्धयेत दत्वा गांच पयस्विनीम् ॥ ३०१

ब्रह्मघाती जल में खड़ा हो उपवास रख तीन दिन अघमर्षण (ऋतं च सत्यं च) मन्त्र से और एक गौदानकर शुद्ध होजाता है ।

सुमन्तुः–देवाद्विज गुरुहन्ताऽप्सु निमग्नोऽघमर्षं सूक्तं त्रिरावर्त्तयेत् ।

देवता, ब्राह्मण, गुरु के हनन करने वाला जल में खड़ा हो तीन दिन अघमर्षण सूक्त को जपै ।

याज्ञवल्क्यः–

त्रिरात्रो पोषितो भूत्वा कूश्माण्डीभिर्घृतं शुचिः ।

सुरापी (शराब पीने वाला) (.यद्देवादेव हडनं) इत्यादि ऋचाओं से चालीस आहुति देकर और तीन दिन उपवास कर शुद्ध होजाता है ।

ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु रुद्राजापीजलेस्थितः । या०३०३

स्वर्ण चुराने वाला ब्राह्मण जल में खड़ा होकर तीन दिन (नमस्तेरुद्रमन्यवे) इत्यादि मन्त्रों का जाप कर शुद्ध होजाता है ।

सहस्रशीर्षाजापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ ३०४

गुरु तल्पी सहस्रशीर्षा आदि पुरुष सूक्त के जाप से और गोदान से शुद्ध होता है ।

मनुः—वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमाः ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥
(मनुः ११ । २४९)

प्रतिदिन यथाशक्ति वेदाध्ययन, पंचयज्ञों का करना, तथा क्षमा कुसंस्कार रूप पापों का नाश करते हैं ।

तथैधस्तेजसा वन्हिः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥ २

जैसे अग्नि समीप स्थित काष्ठों को क्षण में भस्म कर देता है, एवं वेदवित् ज्ञानाग्नि से पापों का नाश करता है ।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वेद पढ़ने वाला जो चाहे करे, अथवा उसको कोई पाप नहीं लगता । तात्पर्य यह है कि

बहुत से पाप अज्ञान और अकाम से ही होजाते हैं उन सब की शुद्धि वेदपाठ से होजाती है।

मनु कहता है :—

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।

(मनुः ११-४५)

अनिच्छा से किये पाप वेदाभ्यास से शुद्ध होजाते हैं।

न वेद बलमाश्रित्य पापकर्म रतिर्भवेत्।
अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्म नेतरत्।

वेद के घमण्ड से पाप कर्म नहीं करना चाहिये क्योंकि अज्ञान और प्रमाद से किये पाप ही वेदाभ्यास से नष्ट होते हैं।

वैदिकज्ञान से शुद्धि और परिवर्त्तन, व्याधकर्मा के दृष्टान्त से स्पष्ट है देखो पृ०।

* वेदों में शुद्धि *

मनु बतलाता है।

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतत् वासिष्टं च प्रतीत्यृचम्।
माहित्रं शुद्ध वत्यश्च सुरोपोऽपि विशुद्ध्यति॥

मनुः ११-२४९

कुल्लूक—कौत्सऋषि के कहे हुए (अपनः शोशुचदघं) इस सूक्त को वसिष्ठ नहीं हुए प्रतिस्तोम इस ऋचा को और माहित्रीणाम

वोऽस्तु इस सूक्त को तथा शुद्धवत्यः,–एतोचिन्द्रंस्तवाम–इतनी ऋचाओं को एक मास पर्यन्त प्रति दिन सोलह वार जप कर शराब पीने वाला वा सुरा पान के प्रयिश्चित्त का अधिकारी शुद्ध हो जाता है ।

सकृज्जप्त्वाऽस्य वामीयं शिव संकल्प मेवच ।
अप हृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्द भवति निर्मलः ॥२५०॥

ब्राह्मण के सुवर्ण को चुरा कर एक मास पर्यंत अस्यवाम के कहे हुए और शिव संकल्प (यज्जाग्रतो) इत्यादि का जप कर उसी क्षण शुद्ध होजाता है ।

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च ।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरू तल्पगः॥२५१॥

जिसने गुरू (पिता–उपाध्याय भ्राता आदि की स्त्री अथवा भागनी सगोत्रा आदि से गमन किया हो) हविष्यांतमजरं इत्यादि २१ ऋचाओं का अथवा न तयं हो इनको वा तन्मेमनः–इनको अथवा पुरुष सूक्त को एक मास पर्यंत प्रति दिन एक वार जप कर गुरुतल्पग के पाप से छूट जाता है ।

एनसां स्थूल सूक्ष्माणां चिकीर्षन्नप नोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेद मितीति वा ॥२५२॥

छोटे वड़े पापों को प्रायश्चित चाहने वाला मनुष्य (अवेति ऋ०१–२४–१४) अर्थात् महा व उपपातक ।

अथवा (यत्कि चेद मिति ऋ० ७-८९-५) का एक वर्ष प्रति दिन एक वार जप करें।

प्रतिगृह्याप्रतिग्रह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समं दीपं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥ २५३

अयोग्य दान को लेकर अथवा अभोज्यान्न खाकर (तरत्समं) ऋ० दीधा व इन चार ऋचाओं का तीन दिन जप करने से शुद्ध होजाता है। इत्यादि अनेक मंत्र ऋषियों ने शुद्धि के लिये दर्शाये हैं जिनमें से चार मंत्र दिग्दर्शनमात्र व्याख्या सहित उद्धृत किये जाते हैं। जिन से पाठकों को निश्चय होगा कि वस्तुतया उनमें शुद्धि की ही प्रार्थना पाई जाती है।

कौत्सं-अपनः शोशुचदघ मग्ने! शुशुग्ध्यारायिम् ।
अपनः शोशुचदघम् ऋ० अष्ट १ अ० १५ व० ५ ॥

*हे अग्ने! हमारा पाप हम से दूर हो-हमारा ऐश्वर्य बढ़े पुनः हमारा पाप दूर हो-इस पर सायणाचार्य लिखता है।

उक्तार्थमपि वाक्यं आदरातिशय द्योतनाय पुनः पठयते।
अवश्य मस्माक मघं विनश्यतु ॥

एक वार कहे हुए वाक्य को आदर के लिये पुनः पढ़ा है कि अवश्य ही हमारा पाप नाश हो॥

---

*नोट—यहां अग्नि शब्द से तीन अर्थ जानने।

प्रमथ अग्नि (अग्रणी भवति यज्ञेषु) के अनुसार यज्ञ हवन का अग्नि।

दूसरा (एकं सद्विप्राबहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः) अनुसार परमात्मा।

और तीसरा प्रभाव शाली तेजस्वी राजा वा अग्रणी अर्थात् सभापति—

इससे यह सिद्ध होता है कि अग्नि में हवन करने से और परमात्मा की स्तुति प्रार्थना आदि भजन से और सभा पति वा सभा की अनुग्रह वा दया से मनुष्य शुद्ध होजाता है।

१ पक्तिंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि अचित्तीयत्तवधर्मायुयोऽपिममानस्तस्यादेनसोदेवरीरिषः

ऋ० अष्ट– ५–५ व

हे वरुण! हम मनुष्य लोग विद्वानों से जो अपकार वा द्रोह करते हैं अथवा अज्ञान से जो तेरे धर्म पथ का उल्लंघन करते हैं हे देव! हमें उस पाप से बचा।

"एवं नतमंहो न दुरितं" इत्यादि मंत्र से साफ है कि जिस पर विद्वान जन अनुग्रह करते हैं उसका कोई पाप नहीं रहता इत्यादि।

* प्राणायाम से शुद्धिः *

याज्ञवल्क्यः—

प्राणा याम शतं कुर्य्यात् सर्व पापा पनुत्तये ॥५३॥

संपूर्ण पापों की निवृत्ति के लिये सौ १०० प्राणा याम करे।

मनोवाक् कायजं दोषं प्राणायामैर्दहेद् द्विजः।
तस्मा त्सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत्॥

गरु० पु० अ० ३६।

प्राणा याम से मानसिक वाचिक, और कायिक-दोष दग्ध हो जाते हैं॥

संर्वत्तः—

मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च यत्कृतम्।
तत्सर्वं नाश मायाति प्राणा याम प्रभावतः॥२२८

मानसिक, वाचिक और कायिक, पाप प्राणायाम के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं॥

मनुः—

सव्याहृति प्रणवकाः प्राणा यामास्तु षोड़श।
अपिभ्रूण हणं मासात्पुनन्त्यहह रहः कृताः॥११।२४८

ओंकार और व्याहृति से संयुक्त प्रतिदिन किए हुए सोलह प्राणा याम एक मास में ही भ्रूण हत्या वाले को भी पवित्र कर देते हैं॥

याज्ञवल्क्यः—

प्राणा याम शतं कार्यं सर्व पापा पनुत्तये।
उपपातक जाताना मनादिष्टस्य चैव हि॥

प्रा० प्र० ५ श्लो० ३०५

गोबधादि ५६ उप पातक अनादिष्ट रहस्य तथा जाति भ्रंशक आदि पापों के नष्ट करने के लिये सौ प्राणा याम करे ।

बौधायनः—

अपिवाक् चक्षुः श्रोत्रं त्वक् घ्राण मनो व्यति क्रमेषु।
त्रिभिः प्राणां यामैः शुध्यति ॥

मन बाणी तथा श्रोत्रादि के व्यति क्रममें तीन २ प्राणा याम करके शुद्धि होती है ॥

पुराणों में गंगादि तीर्थ स्नान वा हरि नाम से शुद्धिः—

* गंगा स्नान *

अग्नौ प्राप्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम !
तथा गंगावगाहस्तु सर्वं पापं प्रधूयते ॥ भा० अनु०

जैसे अग्नि में रुई भस्म हो जाती है, एवं गंगा स्नान पापों को नष्ट करता है ॥

वाङ्मनः कर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।
वीक्ष्य गंगां भवेत्पूतोऽत्र मे नास्ति संशयः ॥

मन बाणी और शरीर के पापों से युक्त पुरुष गंगा के दर्शन मात्र से शुद्ध हो जाता है ॥

गंगा गंगेति यैर्नाम योजनानां शतैरपि ।
स्थितै रूच्चारितं हन्ति पापं जन्म त्रयार्जितम् ॥

त्रि०पु०अ०८

जो सौ योजन (४०० कोस) पर बैठ कर भी गंगा का नाम उच्चारण करता है उसके तीन जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥

पौराणिक समय में ऐसी शुद्धियें की गईं जिन के कुछ उदाहरण यहां उद्धृत किये जाते। देखो पद्म पुराण भूखंड २ अध्याय ९१

कुंजलक उवाच।

ब्रह्महत्याभिभूतस्तु सहस्राक्षो यदा पुनः।
गौतमस्य प्रियां संगादगम्या गमनं कृतम् ॥ १
संजातं पातकं तस्य त्यक्तो देवैश्च ब्राह्मणैः।
सहस्राक्षस्तपस्तेपे निरालम्बो निराश्रयः ॥ २

कुंजलक ने कहा। जब इन्द्र ने ब्रह्महत्या की और गौतम स्त्री संसर्ग कर अगम्यागमन किया, तो उसे देवता और ब्राह्मणों ने त्याग दिया—और वह निराश्रय होकर तप करने लगा ॥

तपोऽन्ते देवताः सर्वा ऋषयो यक्ष किन्नराः।
देवराजस्य पूजार्थ मभिषेकं प्रचक्रिरे ॥ ३
देशं मालवकं नीत्वा देवराजं सुतोत्तमाः।
चक्रे स्नानं महाभाग कुंभैरुदकपूरितैः ॥ ४

तप के अनन्तर देवताओं ने उसकी शुद्धि के लिये उसका अभिषेक किया। मालवा देश में लेजाकर देवराज (इन्द्रको) स्नान कराया ॥

स्नापितुं प्रथमं नीतो वाराणस्यां स्वयं ततः।
प्रयागे तु सहस्राक्ष अर्घतीर्थे ततः पुनः ॥ ५

पुष्करे च महात्मासौ स्नापितः स्वयमेवहि ।
ब्रह्मादिभिः सुरैः सर्वैर्मुनि बृन्दै र्द्विजोत्तम ॥ ६

हे द्विज श्रेष्ठ ! देवताओं ने इन्द्र को प्रथम काशी में पुनः अर्घ तीर्थ और प्रयाग तथा पुष्कर में *स्नान कराया ॥

नागैर्बृक्षै र्नाग सर्वै र्गन्धर्वै स्तुसकिन्नरैः ।
स्नापितो देव राजस्तु वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतः ॥ ७
मुनिभिः सर्व पापघ्नैस्तस्मिन् काले द्विजोत्तम !
शुद्धे तास्मिन् महाभागे सहस्राक्षे महात्मनि ॥ ८
ब्रह्महत्या गता तस्य अगम्या गमनं तथा ॥९

सम्पूर्ण गन्धर्व आदि देवताओं से शुद्ध किये उस महात्मा इन्द्र का ब्रह्महत्या दोष तथा अगम्यागमन का दोष दूर हुआ ।

२ कुंजलक उवाच ।

अस्ति पांचालदेशेषु विदुरो नाम क्षत्रियः ।
तेन मोह प्रसङ्गेन ब्राह्मणो निहितः पुरः ॥ १८
शिखासूत्र विहीनस्तु तिलकेन विवर्जितः ।
भिक्षार्थ मटने सोऽपि ब्रह्मघ्नोऽहं समागतः ॥ १९
ब्रह्मघ्नाय सुरापाय भिक्षाचान्नं प्रदीयताम् ।

---

*ये सर्वसाधारण के विचार के लिये समय २ की अवस्था दिखाई है, इस में लेखक के मतामत का संबन्ध नहीं ॥

गृहष्वेवं समस्तेषु भ्रमतो याचते पुरा ॥२०

पांचाल (पंजाब) में एक विदुर नाम क्षत्रिय रहता था। उसने मोह वश से ब्रह्महत्या करदी। तब वह शिखा सूत्र (यज्ञोपवीत) और तिलक से शून्य होकर, भिक्षा के लिये लोगों के घरों में जाता और कहता था कि मैं ब्रह्मघाती तथा शराबी हूं मुझे भिक्षा दीजिये।

एवं सर्वेषु तीर्थेषु अटित्वेव समागतः।
ब्रह्महत्या न तस्यापि प्रयाति द्विजसत्तम ॥ २१

इसप्रकार वह सम्पूर्ण तीर्थों में घूमां परन्तु उसकी ब्रह्म हत्या दूर न हुई।

वृक्षच्छायां समाश्रित्य दह्यमानेन चेतसा।
संस्थितो विदुरः पापो दुःख शोक समन्वितः॥ २२

तब दुःखी हुआ हुआ वह पातकी विदुर एक वृक्ष की छाया में बैठ गया।

चन्द्र शर्मा ततो विप्रो महामोहेन पीड़ितः।
आवसन्मागधे देशे गुरुघातकरश्च सः॥ २३
स्वजनैर्वन्धु वर्गैश्च परित्यक्तोदुरात्मवान्।
सहि तत्र समायातो यत्रासौ विदुरः स्थितः॥ २४

इतने में एक मगध देश निवासी चन्द्रशर्मा नाम ब्राह्मण

जिसने गुरु को मार डाला था और जो अपने सम्बन्धियों से भागा हुआ था वहां आगया जहां विदुर बैठा था ।

शिखासूत्र विहीनस्तु विप्रलिङ्गैर्विवर्जितः ।
तदासौ पृच्छितस्तेन विदुरेण दुरात्मना ॥ २५

भवान् कोहि समायातो दुर्भगो दग्धमानसः ।
विप्रलिङ्ग विहीनस्तु कस्मात्त्वं भ्रमसे महीम् ॥२६

तब उसको शिखा सूत्रादि चिन्हों से रहित देखकर विदुर ने पूछा कि तुम कौन हो और क्यों इतने दुःखी प्रतीत होते हो और द्विजों के चिन्हों से शून्य क्यों हो ॥

विदुरेणोक्तमात्रस्तु चन्द्र शर्म्मा द्विजाधमः ।
आचष्टे सर्व मेवापि यथा पूर्वं कृतं स्वकम् ॥ २७

पातकं च महाघोरं वसता च गुरोर्गृहे ।
महा मोह गते नापि क्रोधेना कुलितेन च ॥ २८

गुरोर्घातः कृतः पूर्वं तेन दग्धोऽस्मि सांप्रतम् ।
चन्द्रशर्मा च बृत्तान्त मुक्त्वा सर्व म पृच्छत् ॥ २९

तब विदुर ने अपना बृत्तान्त सुनाते दुए कहा कि गुरु के घर मे रहते हुए मैंने मोह से गुरु को मारकर एक महापाप किया इसलिये अब दुःखी हुआ फिरता हूं, आप अपना हाल कहिये ।

भवान् कोहि सुदुःखात्मा बृक्षच्छायां समाश्रितः ।
विदुरेण समासेन आत्मपापं निवेदितम् ॥ ३०

कि आप कौन हैं और क्यों यहां दुःखी से होकर बैठे हैं। तब विदुर ने भी अपना सारा हाल सुनाया।

अथ काश्चिद् द्विजः प्राप्तस्तृतीयः श्रमकर्षितः।
वेदशर्मेति वै नाम बहुपातक संचयः॥ ३१

तदनन्तर वेद शर्मा नाम एक तीसरा मनुष्य थका हुआ वहां आया जिसने कि बहुत से पाप किये थे।

द्वाभ्यामपि संपृष्टः को भवान् दुःखिताकृतिः।
कस्माद् भ्रमसि वै पृथिवीं वद भावन्त्वमात्मनः॥३२
वेद शर्मा ततः सर्व मात्म चेष्टित मेवच।
कथयामास ताभ्यां वै स्वगम्यागमनं कृतम्॥ ३३
धिक् कृतः सर्व लोकैश्च अन्यैः स्वजनबान्धवैः।
तेन पापेन संलिप्तो भ्रमाम्येवं महीमिमाम्॥ ३४

तब उन दोनों ने उसे पूछा कि तुम कौन हो? तुम्हारा चेहरा दुःखी सा प्रतीत होता है किस लिये फिर रहे हो।१।

तब वेदशर्मा ने अपनी कर्तूत सुनाई कि मैंने अगम्या गमन किया, अतः लोगों ने फिटकार कर बाहर निकाल दिया इसीलिये भटकता फिरता हुं।

वंजुलो नाम वैश्योऽथ सुरा पायी समाययौ।
स गोघ्नश्च विशेषेण तैश्च पृष्टो यथा पुरा।३५

तेन आवेदितं सर्वं पातकं यत् पुरा कृतम् ।
तैश्च कर्णित मन्यैश्च सर्वं तस्य प्रभाषितम् । ३६
एवं चत्वारः पापिष्ठा एकस्थानं समाश्रिताः ३७

अनंतर उनके पास वंजुल नाम एक वैश्य आया, जो शराब पीने वाला था और जिस ने गौ घातका पाप भी किया था। तब उन तीनों ने उस से बृतान्त पूछा और उस ने अपनी कहानी सुनाई।

इस प्रकार वह चारों पापी वहां इकट्ठे हुए ॥

तत्रकश्चित्समायातःसिद्धश्चैव महायशाः।
तेन पृष्टः सुदुः खार्त्ता भवन्तः केन दुःखिताः २
स तैः प्रोक्तो महा प्राज्ञः सर्वज्ञानविशारदः ।
तेषां ज्ञात्वा महा पापं कृपां चक्रे सुपुण्यभाक् ३

इतने में वहां एक सिद्ध आया, उसने उन चारों के दुःख का कारण पूछा। जब उन्हों ने अपना २ हाल कहा, तो उसने उनको उस महा पाप से शुद्ध करने का उपाय बताया।

सिद्धउवाच

अमासोम समायोगे प्रयागः पुष्करश्चयः ।
अर्ध तीर्थं तृतीयं तु वाराणसी चतुर्थिका ॥ ४ ॥
गच्छन्तु तत्र वै यूयं चत्वारः पातकान्विताः ।
गंगाम्भसि यदा स्नाता स्तदा मुक्ता भविष्यथ ।५

पातकेभ्यो न संदेहो निर्मलत्वं गमिष्यथ ।
आदिष्टास्तेन वै सर्वे प्रणेमुस्तं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

सिद्ध ने कहा कि तुम चारों पातकी सोमावती अमावस्या को प्रयाग, पुष्कर, अर्घतीर्थ और काशी में जाओ अनंतर जब तुम गंगा जल में स्नान करोगे अवश्य इन पापों से छूटकर शुद्ध हो जाओगे। तब उन्हों ने उसको प्रणाम किया और कलंजर बन से चलकर वाराणसि आदि से होते हुए वह चारों पापीः—

तस्मिन पर्वणि संप्राप्ते स्नाता गंगां भसि द्विज
स्नान मात्रेण मुक्तास्तु गोबधाद्यैश्च किल्विषैः १०

प० पु० भू० खं० २ भ० ४२

इस पर्व में गंगा में नहाये और स्नान मात्र से वह गोवध आदि पाप से छूट गये।

विशेष क्या लिखें पुराणों में तो ब्राह्मणों के चरणामृत से भी शुद्धि का उपदेश पाया जाता है।

नश्यन्ति सर्व पापानि द्विज हत्यादि कानि च।
कण मात्रं भजेद्द यस्तु विप्रांघ्रि सलिलं नरः ४
यो नरश्चरणौ धौतं कुर्य्याद्धस्तेन भक्तितः।
द्विजाते र्वच्मि सत्यं ते स मुक्तः सर्व पातकैः।१०

प० पु० ब्र० खं० ४ भ० १४

जो ब्राह्मणों का चरणामृत लेता है उसके ब्रह्म हत्या आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य ब्राह्मणों के चरणों को भक्ति से धोता है, मैं सत्य कहता हूं कि वह संपूर्ण पापों से छूट जाता है।

जैसाकि इसी के आगे भीम नाम शूद्र का उदाहरण दिया।

* नाम से शुद्धिः *

प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपः कर्मात्मकानि वै।
यानि तेषा म शेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ।३७

वि० पु० अं० २ अ० ६

तप्तकृच्छ्र आदि जितने भी व्रत कहे हैं उन सब से बढ़कर कृष्ण नाम का स्मरण है।

श्रीराम राम रामेति ये वन्दत्यपि पापिनः।
पाप कोटि सहस्रेभ्यस्तेषां संतरणं ध्रुवम्। गुरु० पु०

तीनबार राम राम कहने से पापी करोड़ों पापों से छूट जाते हैं।

गो०स्वा० तुलसी दासजी श्रीराम चन्द्रजी के सखा गुह का वर्णन करते हुए लिखते हैं।

दोहा—रामराम कहिं जे जमुहाहीं। तिनहिं न पाप पुंज समुहाहीं।
उलटे नाम जपत जगजाना। वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।
श्वपच शवर खल यमन जड, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात।
१९ तु० रा० अ० कां०

जो राम राम कहकर जम्हाई लेते हैं उनके सामने पाप नहीं आते हैं। संसार जानता है कि उलटा नाम (मरा मरा) जपने से ही वालमीकि (मुक्त) ब्रह्मसम हुए।

श्वपच (चांडाल) शवर (भील) यवन (म्लेच्छ) नीच कोली आदि राम राम कहने से पवित्र हो जाते हैं।

गुह स्वयं भरत जी को कहता है कि:—

कपटी कायर कुमति कुजाति, लोक वेद बाहर सब भांती।
राम कहि आपन जब हींतें। भयउँ भुवन भूषण तहींते॥

मैं कपटी कायर कुबुद्धि कुजाती लोक और वेद से बाहिर था। परन्तु जब से रामचन्द्र जी ने मुझे अपना किया तभी से लोक का आभूषण बन गया।

---

* ध्यान से शुद्धिः *

नहि ध्यानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते।
श्वपचान्नानि भुंजानः पापी नैवात्र जायते।

गरुड़ पु० अ०२२२ श्लोक० ३५

ध्यान के तुल्य और कोई पवित्र नहीं है। ध्यान युक्त पुरुष चांडाल का अन्न खाकर भी पापी नहीं होता।

ध्यायेत् नारायणं देवं स्नान दानादि कर्मसु।

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषतः ॥

गरुड़० पु० अ० २२२ श्लो० २८

स्नान दानादि कर्मों में सम्पूर्ण प्रायश्चित्तों में विशेष करके दुष्कर्मों की शुद्धि में नारायण का ध्यान करे ॥

कृतेपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरे स्संस्मरणं परम् ॥

वि० पु० अं० दो अ० ६ । ३८

जिसकी पातकों से अनुरक्ति हो गई हो उसके लिये हरि का ध्यान ही प्रायश्चित्त है ॥

उपपातक संघेषु पातकेषु महत्स्वपि ।
प्रविश्य रजनी पादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥

जिसको सैकड़ों उपपातक और महापातक लगे हों, वे सब प्रभात में ब्रह्म ध्यान करने से छूट जाते हैं ॥

ख्यापनेनानु तापेन तपसा ध्ययनेन च ।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेनचापादि ॥

मनुः—११ । २२७ ।

पापी पाप के प्रकट करने से, पश्चाताप करने से वेदाध्ययन तथा दान से शुद्ध होजाता है ॥

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयंकृत्वानु भाषते ।
तथा तथा त्वचेवाहि स्तेनाऽधर्मेण मुच्यते ॥ २२८

मनुष्य ज्यों २ अपने किये अधर्म को प्रकट करता है त्यों २ उस अधर्म से छूट जाता है, जैसे सर्प कोचली से ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात् प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयतेत सः ॥

मनुः ११।२३०

पाप करके पश्चात संताप युक्त होने से उस पाप से बचता है और "फिर ऐसा नहीं करूंगा" ऐसा कह कर निवृत्त होने से पवित्र हो जाता है ॥

अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानात् कृत्वा कर्म सुदुष्कृतम् ।
तस्माद्धि शुद्धि मन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत्।२३२

ज्ञान से अथवा अज्ञान से अशुभ कर्म (पाप) करके उस से छूटने की इच्छा करने वाला, दुबारा उसको न करे ॥

पश्चात्तापो निराहाराः सर्वेषां शुद्धि हेतवः ॥

या० प्रा० प्र० ३

पश्चात्ताप निराकारादि सब शुद्धि के साधन हैं ॥

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्य कारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते सर्व किल्विषात् ॥

मनुः ११।२३९

महा पातक और शेष उप पातक युक्त, मनुष्य तप करने से ही उन पापों से छूट जाते हैं ॥

यत् किंचदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ् मूर्त्ति भिर्जनाः।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥

मनुः ११-२४१

मनुष्य मन, वचन, और कर्म से जो पाप करते हैं उन सब को तप करने वाले तप से भस्म कर देते हैं ॥

सर्व साधारण व्रत ।

यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराण्यपि।
कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रेयैः शुध्यन्ते मनुरब्रवीत् ॥

षट्त्रिंशन्मतं ।

बड़े से बड़े पाप भी कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण से नष्ट हो जाते हैं ॥

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्व पापापनोदनः ।

मनुः ११। २१५

पराक कृच्छ्र व्रत सब पापों को दूर करने वाला है ॥

दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव सर्व पाप प्रणाशनम् ॥ (उशनः)

कृच्छ्र और चान्द्रायण संपूर्ण पातक और महापातकों को नष्ट कर देता है ॥

यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तं महा पातक नाशनम् ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शुध्यतेनात्र संशयः ॥ (उशनः)

जहां कहा हो वा न कहा हो, महा पातक के नाश करने वाले प्राजापत्य वा कृच्छ्र व्रत से शुद्धि कर लेनी चाहिये ॥

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थ मादितः ॥

मनुः ११ । २२५

संपूर्ण व्रतों में आदर सहित यथा शक्ति गायत्री मंत्र तथा अन्य पवित्र मंत्रों का जप करना चाहिये ॥

आवश्यक बातें ॥

शुद्धि (प्रायश्चित्त) निर्णय में निम्न लिखित नियमों को नहीं भूलना चाहिये ॥

१ गौत्तमः—

एनांसि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनि ॥

विद्वानों को चाहिये कि बड़े पाप में बड़ा और छोटे में छोटा प्रायश्चित्त नियत करें ॥

विष्ण० प्र०—

पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे तु तद्विदः ।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय ! जगुः स्वायंभुवादयः ॥

अं० २ अ० ६ । ३६

हे मैत्रेय ! धर्मवेत्ता मन्वादिकों ने बड़े में बड़ा और छोटे में छोटा प्रायश्चित्त नियत किया है ।

शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥

मनुः ११ । २०९

शक्ति और पाप को देख कर प्रायश्चित्त कराना चाहिये ॥

२ विहितं यद कामानां कामात् तद द्विगुणं भवेत्

जो प्रायश्चित्त अनिच्छित पाप में नियत किया है, वह इच्छा से किये पाप में दुगना कर देना चाहिये ॥

और जो इच्छित में दर्शाया गया है उसको अनिच्छत में आधा कर देना चाहिये ॥

३ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम् ।
वैश्येर्द्धं पाद एकस्तु शस्यते शूद्र जातिषु ॥

बृ० विष्णुः ।

जिस पाप में जो व्रत विधान किया हो, उसको ब्राह्मण पूरा करे क्षत्रिय चौथाई कम, वैश्य आधा—और शूद्र एक पाद (चौथा हिस्सा) करे । अर्थात् जिसको ब्राह्मण चार दिन करे तो क्षत्रिय तीन दिन—वैश्य दो दिन और शूद्र एक दिन करे ॥

४ स्त्रीणां बाल वृद्धानां क्षयिणां कुशरीरिणाम् ।
उपवासाद्य शक्तानां कर्त्तव्यो ऽनुग्रहश्च तैः॥

बृ० पा० अ० ८

स्त्री, बाल, वृद्ध, रोगी आदि उपवास में असमर्थों पर दया करनी चाहिये ॥

स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यं बृद्धानां रोगिणां तथा ।
पादो बालेषु दातव्यः सर्व पापेष्वयं विधिः ॥

विष्णु स्मृतिः ।

स्त्री बृद्ध और रोगी को आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये । और बालों को चौथाई ॥

अशीर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यून षोड़शः ।
प्रायश्चित्तार्द्ध मर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥६

अस्सी वर्ष का बृद्ध, ग्यारह से ऊपर और सोलह वर्ष से न्यून अवस्था का बाल, स्त्री और रोगी को आधा प्रायश्चित्त देना चाहिये

न्यूनै कादश वर्षस्य पंच वर्षाधिकस्य च ।
चरेद्गुरु सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥७

ग्यारह वर्ष से न्यून और पांच वर्ष से अधिक अवस्था वाले की शुद्धि के लिये गुरु अर्थात् पिता अथवा कोई मित्र प्रायश्चित्त करे।

विधिः ।

सर्व पापेषु सर्वेषां ब्रतानां विधि पूर्वकम् ।
ग्रहणं संप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ते चिकीर्षिते ॥
दिनान्ते नख रोमादीन् प्रवाप्य स्नानमा चरेत् ।
भस्म गोमय मृद्वारि पंच गव्यादि कल्पितैः ॥
मलापकषर्णं कार्यं वाह्य शौचोपसिद्धये ।
दन्तधावन पूर्वेण पंच गव्येन संयुतम् ॥

व्रतं निशामुखे ग्राह्यं वहिस्तारक दर्शने।
आचम्यातः परं मौनी ध्यायन् दुष्कृतमात्मनः ॥
मनः संतापनं तीव्रमुद्वहेच्छोक मन्ततः॥ (वसिष्ठः)

पापों के प्रायश्चित्त करने की इच्छा हो तो उसकी विधि यह है कि दिन के अन्त में नख तथा रोमों को कटवा कर भस्म गोवर मट्टी और पंच गव्य आदि स्नानकर वाह्य शुद्धि करे और दंतधावन कर पंच गव्य पीवे। सायंकाल में जब तारे दीखें तो व्रत धारण करे आचमन करके मौन होकर अपने आप का ध्यान करे और मन से पश्चात्ताप करे॥

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः।
केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥

यम ५६।

राजा हो वा राज पुत्र हो, अथवा विद्वान् ब्राह्मण हो सब बाल कटा कर प्रायश्चित्त करें॥

केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रत मादिशेत्॥

यम। ५७

यदि केश न कटवाना चाहे तो दुगना व्रत करे॥

* स्त्री और केश वपन *

नस्त्रीवपनं कार्यं॥ यम० श्लो० ५५

परंतु स्त्रियों के केश नहीं कटवाने चाहियें॥

एवं बौधायन स्त्रियाः केश वपन वर्ज्यम्

स्त्रियें बिना क्षौर कराए ब्रत करें ॥

इन ब्रतों अथवा नियमों को कौन नियत करे ? इसका उत्तर शास्त्रों ने दिया है कि पंचायत ॥

* प्रायश्चित्ती और पंचायत *

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्व कृतेन वा ।
न संसर्गं ब्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥

मनुः ११ । ४७

जो किसी कारण से प्रायश्चित्त के योग्य हो जावे, वह बिना प्रायश्चित्त किये किसी श्रेष्ठ से संसर्ग न करे ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा वेद विद्भ्यो निवेदयेत् ॥

पराशर ८ । ६

वेद वेदांग विदुषां धर्म शास्त्रं विजानताम् ।
स्वकर्मरत विप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥

परा० ८ । २

पाप करके छुपावे नहीं क्योंकि छुपाया हुआ पाप बढ़ता है। पाप छोटा हो वा बड़ा वेदवेत्ता, धर्म शास्त्राभिज्ञ ब्राह्मणों के संमुख प्रकट करदे ।

सभा के लक्षण ।

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्य परायणः ।

मुदु राज्जंव सपन्नः शुद्धिं गच्छेत्मानवः ॥

परा० ८ ८

जब कोई पाप हो जाय तो लज्जा युक्त हो कर और सत्य परायण हो सरलता से शुद्धि का प्रयत्न करे ॥

निष्कृतौ व्यवहारे च व्रतस्या शंसने तथा।
धर्मं वा यदि वा धर्मं परिषत् प्राह तद् भवेत् ॥

बृ० पारा० ६ । ७२

शुद्धि में व्यवहार में तथा व्रत के बतलाने में सभा (पंचायत) जिस को धर्म वा अधर्म करार दे वही धर्म अथवा अधर्म होता है॥

अतः—

प्रविश्य परिषदन्ते वै सभ्यानामग्रतः स्थितः।
यथा कृतं च यत्पापं तथैव विनिवेदयेत् ॥

बृ० पारा० ६ । ७३

सभा में जाकर सभासदों के संमुख अपने पाप को यथा तथा प्रकट कर दे॥

परिषद् दशावरा प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेद पारगैः।
सा यद् ब्रूयात्स धर्मः स्यात् स्वयंभू रित्य कल्पयत्॥
वेद शास्त्र विदो विप्रा ब्रूयुः सप्त पंच वा।
त्रयो वापि सधर्मः स्याद्दे को वाऽध्यात्म वित्तमः।६४
संयमं नियमं वापि उपवासादिकं च यत्।
तद् गिरा परिपूर्णास्यान्निष्कृति र्व्यावहारिकी।६५

बृहत् ० पारा० अ० ६

दस वेदवेत्ता ब्राह्मण जिसमें हों उसका नाम सभा है। वेदादि शास्त्र के जानने वाले सात, पांच, तीन अथवा अध्यात्म वित् एक ही जिसको धर्म कहे वह धर्म है।

पूर्वोक्त सभा जो संयम, नियम, अथवा उपवास आदि नियत करे उस से सम्पूर्ण व्यावहारिक शुद्धि करनी चाहिये।

वशिष्ट कहता है :-

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेद पारगाः।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ २ ।७

वेदवेत्ता चार अथवा तीन भी जो व्यवस्था दें वह धर्म है। और सहस्रों मूर्खों का कथन धर्म नहीं।

चातुर्विद्यं विकल्पी च अंगविद्धर्म पाठकः।
आश्रमस्थास्त्रयो मुख्यापर्षदेषां दशावरा ॥

वशिष्ट ३-२०

चार चारों वेदों के जानने वाले, एक मींमासा का जानने वाला, एक अङ्गों (व्याकरणादि ६) का जानने वाला। एक धर्म शास्त्र का वेत्ता, और तीन तीनों वर्णों के मुखिया ये दश पुरुष जिसमें हों धर्म निर्णय के लिये वह सभा वा पंचायत है।

मनु कहता है :-

दशावरा परिषद् यं धर्मं परि कल्पयेत्।
त्र्यवरावापि बृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥१११
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्म पाठकः।
त्रयश्चा श्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद् दशावरा ॥११२

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
सविज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञाना मुदितोऽयुतैः ॥
मनुः १२-११३

दस श्रेष्ठ विद्वान् जिसको धर्म कहें, अथवा दस के अभाव में तीन भी सदाचारी जिसको धर्म कहें उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥

वेद न्याय मीमांसा निरुक्त आदि के जानने वाले और तीन पूर्वाश्रमी ये दस जिसमे हों उसका नाम सभा है। वेदवेत्ता एक ब्राह्मण भी जिसको कहे वह धर्म है, परन्तु मूर्ख दस हज़ार का भी कहा हुआ धर्म नहीं।

अव्रतानाम मंत्राणां जातिमात्रोप जीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥
मनुः १२-११४

व्रतहीन, वेद मंत्रों से शून्य, केवल जातिमात्र के घमंडी ब्राह्मण आदि यदि सहस्रों भी एकत्र हों तो भी उसका नाम सभा (पंचायत) नहीं।

अतएव बृहत्पाराशर अध्याय ६ श्लो० ६८ में कहता है कि:-

न सा वृद्धैर्न तरुणै र्न सुरूपै र्धनान्वितैः।
त्रिभिरे केन परिषत्स्याद्धि द्धद्भि र्विदुषा पि वा ॥

धर्म निर्णय में बृद्धों, जवानों, खूबसूरतों, तथा धनाढ्यों की सभा नहीं कहलाती। प्रत्युत वहां तो विद्वान् तीन अथवा एक ही काफी है।

* पंचायत का कर्त्तव्य *

देशं कालं वयः शक्ति पापं चावेक्ष्य यत्नतः ।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद् यत्रस्या दस्य निष्कृतिः।।

सभा को चाहिये कि वह लोभ मोह आदि से रहित होकर धर्म शास्त्रानुसार देशकालानुकूल प्रायश्चित्त नियत करे, अन्यथा उस पातक के भागी सभासद होते हैं ।

आर्त्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः ।
जानन्तोऽपि न यच्छन्ति ते वै यान्ति समं तु तैः।।

जो दुःखी और प्रायश्चित्त पूछने वाले को जान बूझ कर भी प्रायश्चित्त नहीं बताते वे भी उन पातकियों के तुल्य पापी होते हैं। परन्तु बिना यथार्थ ज्ञान के अन्यथा कहने में भी वैसा ही दोष है ।

यं वदन्ति तमोभूताः मूर्खाः धर्म मतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृननु गच्छति ॥

मनुः १२–११५

धर्माधर्म के तत्व को न जानने वाले तमोगुण प्रधान मूर्ख जिसको प्रायश्चित्त बताते हैं। उसका पाप सौगुणा होकर उनको लगता है ।

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजाः नामधारकाः ।
ते द्विजाः पापकर्माणः समेताः नरकं ययुः ॥

परा० ८।९८

जो केवल नामधारी (अर्थात् वेद विहीन) द्विज प्रायश्चित्त नियत करते हैं वे पापी हैं और सब के सब नरक में जाते हैं।

अज्ञात्वा धर्म शास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति या।
प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्विषं पर्षदं ब्रजेत्॥

परा० ८। १४

जो सभा बिना धर्म शास्त्र के ज्ञान के प्रायश्चित्त देती है उस से प्रायश्चित्ती तो शुद्ध होजाता है परन्तु उसका पाप सभा को लगता है।

लोभान्मोहाद् भयान्मैत्र्यादपि कुर्य्युरनुग्रहम्।
ते मूढा नरकं यान्ति शतधा प्राप्तपातकाः॥

बृ० पा० ६। ८९

जो लोभ मोह भय अथवा मैत्रीभाव से पक्ष (रियायत) करते हैं वे मूढ नरक में जाते हैं, और उनका वह पाप सौगुना होकर लगता है।

शंखः—

तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्यायानुभाष्य पुनः पुनराचारं लभस्वेति। स यद्येवमप्यनवस्थितमतिःस्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्।

जब पातकी उक्त सभा के संमुख आवे तब सभा उसके दोषों को उसके गुरु, संबंधी तथा राजा के सामने प्रकट करके उसे पातकी

को कहे कि तुम इस प्रकार (जैसा सभा नियत करे) पुनः सदाचार में आजाओ ! इस प्रायश्चित्त कथन पर भी यदि उसकी वृत्ति सदा चार में न लगे, अर्थात् यदि वह तदनुसार अपनी मर्यादा में न आवे तो उसको जाति बाह्य कर देना (छेक) चाहिये ॥

* खान पान बंद *

निवर्त्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषण सहासनं ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैवहि लौकिकी ॥

मनुः ११ । १८४

ज्येष्ठता च निवर्त्तेत ज्येष्ठा वाप्यं च तद्धनम् ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽपिवा ॥१८१

वह पतित जब तक प्रायश्चित्त न करले उससे बोलना साथ बैठना, दायभाग, तथा खान पान आदि लौकिक व्यवहार बंद कर देना चाहिये ॥

यदि बड़ा हो तो उसकी बड़ाई, और ज्येष्ठांश, अर्थात् बड़ेपना का जो भाग दायाद्य से उसे मिलना था, तोड़ा जावे, और उस अंश को छोटा भाई लेवे जो गुणों से अधिक हो ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्ण कुंभमपां नवम् ।
तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥

मनुः ११ । १८६

परंतु पापानुसार प्रायश्चित्त कर लेने के उपरान्त सम्बन्धी लोग पवित्र जल से स्नान कर, जल से पूर्ण एक नवीन घटको उस के साथ जल में डाल देवें ॥

(यहां किसी २ ने प्रास्येयुः के अर्थ पीने के भी किये हैं अर्थात् उसके हाथ से जल ले कर आचमन करें।

यह अर्थ शुद्धि के लिये अच्छा प्रतीत होता है ॥ क्योंकि इस समय भी लोग शुद्ध हुए के हाथ से कुछ लेकर खाते हैं वा आचमन लेते हैं ताकि उसको निश्चय हो जाय ॥

गौतम कहता है कि—

शात कुम्भ मपां पात्रं पुण्यतमात् ह्रदात् पूरयित्वा॥
स्रवन्तीभ्यो वा तत एनं अप उपस्पर्शयेयुः ॥

स्वर्ण के पात्र को किसी पवित्र तालाब अथवा नदी से भर कर उससे उस प्रायश्चित्ती को स्पर्श करावें। अर्थात् उससे आचमन मार्ज्जन और स्नान करावें ॥

स त्वप्सुघटं प्रास्य प्रविश्य भुवनं स्वकम् ।
सर्वाणि ज्ञाति कर्म्माणि यथा पूर्वं समाचरेत् ॥

मनुः ११ । १८७

वह शुद्ध हुआ २ मनुष्य उस घट को जल में फैंक कर अपने घर में जाए, और पूर्ववत् संपूर्ण ज्ञाति कर्मों को करे ॥

एत देव विधिं कुर्याद् योषित्सु पतिता स्वपि ।
वस्त्रान्न पानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥१८८॥

यही विधि पतित स्त्रियों में भी करनी चाहिये। परंतु उनकी शुद्धि होने से प्रथम भी उनको अन्न जल देना चाहिये और गृह के समीप ही उनको रक्खना चाहिये ॥

पुनः शुद्ध हुओं से घृणा नहीं करनी चाहिये।

एनस्वि भिरनि र्णिक्तैर्नार्थं किं चित्सहा चरेत् ।
कृतनिर्णेजनां श्चैव न जु गुप्सेत कर्हिचित् ॥

मनुः १९

बिना प्रायश्चित्त के पतितों के साथ लेन देन नहीं करना चाहिये परंतु प्रायश्चित्त करने के अनन्तर उनसे कभी भी घृणा नहीं करनी चाहिये ॥

* व्रतस्वरूपम् *

अब उन कृच्छ्र आदि व्रतों के स्वरूप बतलाए जाते हैं जिन से शुद्धि की जाती है ॥

प्राजापत्य।

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यह मद्याद याचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजा पत्यं चरन् द्विजः॥

मनुः ११ । २११

प्राजा पत्य कृच्छ्र करने वाला तीन दिन प्रातःकाल और तीन दिन सायंकाल भोजन न करे। तीन दिन अयाचित अन्न से भोजन करे। और तीन दिन उपवास करे इस प्रकार द्वादश दिनका प्राजा पत्य व्रत होता है ॥

इसमें पराशर ने तो ग्रास संख्या भी लिखी है।

सायं द्वात्रिंशति ग्रासाः प्रातः षड् विंशतिस्तथा।
अयाचिते चतुर्विंशत् परं चानशनं स्मृतम् ॥

सायंकाल के भोजन में बत्तीस ग्रास खावे। प्रातःकाल छब्बीस, इसके अनन्तर तीन दिन उपवास। अस्तु इत्यादि व्यवस्था को विस्तार भय से छोड़ कर केवल स्वरूप दर्शायें जावेंगे ॥

सांतपन कृच्छ्र।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एक रात्रो पवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ २१२

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशा का जल इनको एक दिन खावे और दूसरे दिन उपवास करे इसका नाम सांतपन कृच्छ्र है॥

* महासांतपन *

पृथक् सांतपन द्रव्यैः षड़हासोपवासकः
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनं स्मृतम्। या० प्रा ३१६

यदि इन पूर्वोक्त गोमूत्रादि छः छः दिन व्यतीत करे अर्थात् एक दिन गोमूत्र से एक दिन गोमय से इत्यादि, और इसके पश्चात् छः दिन उपवास करे वा इसको महासांतपन कृच्छ्र कहा है।

अतिकृच्छ्र।

एकैकं ग्रास मश्नीयात्, त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्।

त्र्यहं चोपवसे दन्त्यमति कृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥

मनुः ११-२१३

अतिकृच्छ्र करने वाला, तीन दिन सायं, तीन दिन प्रातः और तीन दिन अयाचित में एक एक ग्रास खावे। और तीन दिन उपवास करे।

तप्त कृच्छ्र :-

तप्त कृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीर घृतानिलान्।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः॥ २१४

तप्त कृच्छ्र का अनुष्ठान करने वाला विप्र समाहित चित्त होकर एकबार स्नान करे, तीन दिन उष्ण जल पीवे, । तीन दिन गरम दूध पीवे, तीन दिन घी, और तीन दिन निराहार रहे।

पराक कृच्छ्र :-

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाह मभोजनम्।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्व पापापनोदनः॥ २१५

स्वस्थ और समाहित चित्त से बारह दिन भोजन न करने का नाम पराक कृच्छ्र व्रत है और वह सब पापों को नष्ट करता है।

चान्द्रायणम्—

एकैकं ह्रास येत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।
उपस्पृशंस्त्रि षवण मेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ २१६

तीन काल स्नान करता हुआ कृष्ण पक्ष में एक एक ग्रास

घटावे और शुक्लपक्ष में एक एक ग्रास बढ़ावे इसको पिपीलिका चान्द्रायण व्रत कहते हैं।

एतमेव विधिं कृतस्नमाचरेद् यवमध्यमे।
शुक्लपक्षादिं नियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम्॥ २१७

उपरोक्त ग्रास के घटाने आदि विधि का शुक्लपक्ष से प्रारंभ करे इसको यव मध्याख्य चान्द्रायण कहा है। अर्थात् जैसे यव मध्य से मोटा होता है। एवं यवाकार ग्रास को शुक्लपक्ष से आरम्भ कर कृष्णपक्ष में घटाकर अमावस्या को उपवास करे।

यति चान्द्रायण—

अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिंडान् मध्यं दिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणंचरन्॥ २१८

शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष से आरम्भ कर एक मास पर्यन्त जितेन्द्रिय होकर प्रतिदिन मध्यान्ह में आठ ग्रास खाना यति चांद्रायण कहाता है।

शिशु चान्द्रायण—

चतुरः प्रातरश्नीयात् पिंडान् विप्रः समाहितः।
चतुरो ऽस्तमिते सूर्य्ये शिशुश्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ २१९

प्रातःकाल चार ग्रास भोजन करें और सायंकाल में भी चार ग्रास भोजन करे इसका नाम शिशु चान्द्रायणव्रत है। इत्यादि अनेक साधन हैं जिनका देशकाल और पापानुसार प्रयोग कराना विद्वानों का कर्त्तव्य है। इति शम्॥

* परिशिष्ट *

अनार्य्यों को आर्य बनानें में

भारत के प्रसिद्ध विद्वान् (श्री० डाक्टर भण्डारकर एम० ए० की सम्मति जो उन्होंने २९ अगस्त १९०९ को पूना के व्याख्यान में प्रगट की।

* आर्यप्रभा *

के

प्रथम वर्ष के २२ तथा २४ अंक से उद्धृत

डाक्टर साहिब के व्याख्यान में पुराणों इतिहासों तथा शिला लेखों के आधार से मुसलमानों के राज्य से पहिले (कलियुग में ही) समय में विदेशी वा विजातीय अनार्यों को आर्य्य बनानेका विधान है और हम इस से यह परिणाम निकालते हैं कि जब आज से हज़ार वर्ष पहिले अनार्यों से आर्य बन जाते थे तो आज उन का इसी विधि से आर्य्य बनाना कोई पाप कर्म्म नहीं है। डाक्टर साहिब पुराणों के बहुत से उदाहरणों से अभीरशक, यवन, जातियों के आने और महाराजा अशोक के लेखों से ग्रीक लोगोंका नाम योण (यवन) सिद्ध करते हुए इनका हिन्दु होना बताते हैं और इस के आगे महाराजा मिलिंद्र (जिस का राज्य पञ्जाब और काबुल में था) का पहिला नाम मिनिडर लिखते हुए लंका के शिला लेख वा सिक्कों पर से पाली भाषा में लिखे शब्दों से बताते हुए सिद्ध करते हैं कि बहुत बाद विवाद के पीछे वह बुद्ध धर्मानुयायी हुआ, यहीं नहीं,

किन्तु **काली** के बहुत से शिला लेखों से यवनों का **सिंहधैर्य धर्म्म** आदि नाम रख हिन्दु होना सिद्ध होता है। और वहां एक लेख से यह भी निश्चय होता है कि **सेतफरण** का पुत्र **हरफरण** (वहालोफर्नस) बहुतसा दान पुण्य करने से हिन्दु बनाया गया।

जुन्नर—के शिला लेख से **चिटस** और **चंदान** नामक यवनों को शुद्ध कर **चित्र** और **चन्द्र** बनाना सिद्ध होता है और इन के जीवन से आर्य्य पुरुषोंसे खान पान होना भी प्रतीत होता है

नाशिक—(जिला) में एक शिला पर यह लेख है।

"सिधं ओतराहम दत्ता मिति यकस योणकस धंम देव पुतस इन्द्राग्नि दतस धर्म्मात्मना"।

इस से प्रतीत होता है कि उत्तर (सरहद) से आए हुए यवन के पिता को संस्कार कर **धर्म्मदेव** और पुत्र को **इन्द्राग्निदत्त** बना कर आर्य बनाया, ऊपर के नामों से यह भी प्रतीत होता है सिन्ध के पार शुरूसे ही **शेखमहमद** और शेष **अबदुल्ला** नहीं बसते थे।

नाशिक—के एक और शिला लेख से प्रसिद्ध क्षत्रप राज वंश के दिनीक, नहपान, क्षहरात, आदि राजाओं को शुद्ध किया गया और नहपान की कन्यासे ऋषिभदत्त (उषवदात) नामी आर्य का विवाह हुआ इन राजाओं के नाम से २४ हजार सिक्के अभी मिले हैं नहपान के जामाता ने एक बार ३००००० तीन लाख गौएं दान कर के दी थी और हर वर्ष लक्ष ब्राह्मण को भोजन कराया

करता था। इन का राज्य ५० वर्ष तक नाशिक में रहा पीछे गौतम पुत्र ने इनको निकाल दिया, इन क्षत्रपोंका एक वंश **उज्जयिनी** में चला गया वहां उसके १९२० पुरुष हुए उनका वहां दो सवा दो सो वर्ष राज्य रहा, यह ईसा के संवत से ३८९ वर्ष पहिले का समय है।

क्षत्रप शब्द का अर्थ—कदाचित कोई कहे कि यह क्षत्रप लोग शुरू से ही आर्य थे इनको आर्य बनाया नहीं गया इसी लिये इन से गौएं लेने और इनका भोजन करने में कोई दोष नहीं इसलिये हम **क्षत्रप** शब्द का अर्थ कर देते हैं।

क्षत्रप—शब्द साधारण दृष्टि से तो संस्कृतका प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में संस्कृत के सारे साहित्य (कोष व्याकरणादि) में यह शब्द कहीं नहीं पाया जाता हां क्षत्रप वा खत्रप यह शब्द फारसी भाषा के इतिहास का [Satrup] शब्द एक प्रतीत होता है जिसका अर्थ है राजाधिराजों के हाथ का पुरुष वा राज्याधिकारी वा प्रतिनिधि प्रतीत होता है आज कल जिस प्रकार आर्यावर्त के पुरुष चीन आदि सम्राटों की सेनाओं में जाकर प्रतिष्ठा पा उच्च अधिकार पा रहे हैं इसी प्रकार किसी समय विजातीय लोग आर्य सम्राटों के आधीन में रह कर अधिकार प्राप्त करते थे यहां तक कि दूसरे द्वीपों में राज प्रतिनिधि बन कर जाया करते थे।

टालेमी—नामक प्रसिद्ध भूगोल ग्रन्थ कार ने उज्जयिनी का वर्णन करते २ **तियस्थ नीज़** और **पुलुमाई** तत्कालीन राजा-

ओं का नामांकित करता है पर उज्जयिनी के पुराने सिक्के और शिलाओं पर राजा का नाम **चष्टन** लिखा है कदाचित् यही तियस्थनीज होगा यह राजा **क्षत्रप** लोगों का आदि पुरुष हुआ है, यह नाम आर्या वर्तीय वा आर्य जाती का प्रतीत नहीं होता परन्तु इसके पुत्र का जयदाम और पोत्र का नाम रूद्रदाम था जिससे पाया जाता है कि इनका आधानाम **जय** तथा **रुद्र** हिन्दु होगया था और थोड़े काल के पीछे इसके वंश धरों के नाम रूद्र सिंह आदि हुए जो पूरे संस्कृत (आर्य) नाम हैं इनके इतिहास से यह भी सिद्ध होता है कि क्षत्रप लोग सबसे जल्दी आर्य बिरादरी में मिलाए गए अगले अङ्क में प्राचीन तुर्कों की शुद्धि का उल्लेख करेंगे ॥

(२ रा अंक)

हमने विगतांक में डाकटर साहिब के व्याख्यान से बहुत से पुरुषों तथा समुदायों को आर्य्य बनाना (विदेशी वा विधर्मी होने पर भी) दिखाया था आज उसके उत्तरार्ध में से कुछक दृष्टान्त ऐसे देते हैं जिन से यह सिद्ध हो कि मुसलमानों के राज्य के कुछ काल पहिले से विदेशी वा विजातीय अनार्यों को आर्य्य बनाया जाता था।

डाकटर साहिब फर्माते हैं नाशिक के एक और शिलालेख से सिद्ध होता है कि आर्य्य लोग शक जाति की स्त्रियों से खुले तौर पर विवाह कर लेते थे।

नाशिक—के एक और शिला लेख में लिखा है कि:—

"सिद्धं राज्ञः माढ़री पुत्रस्य शिवदत्ताभीरपुत्रस्य आभीरेस्वर सेनस्य संवत्सरे नवम ९ गिम्हपखे चौथे४

दिवस त्रयोदश १३ एताय पुवय शकाग्निवर्मणः दुहि-त्रा गणपकस्य रेभिलस्य भार्यया गणपकस्य विश्ववर्म मात्रा शकनिकया उपासिकया विष्णुदत्तया गिलान भेषजार्थं अक्षयनीवी प्रयुक्ता"

इस लेख से प्रतीत होता है कि अग्नि वर्म की कन्या और विश्ववर्मा की माता "विष्णुदत्ता" ने रोगियों के औषध के लिए एक "अक्षयनीवी" (धर्मार्थ फण्ड) कायम किया था यह स्त्री शकनिका जाति की थी और इसका विवाह आर्य्य क्षत्रिय से होने के सबब इसका पुत्र भी वर्मा कहलाया ऐसा प्रतीत होता है।

इस लेख में **आभीर** राजा का संवत् दिया है उस समय महीनों का प्रचार नहीं था किन्तु ऋतु के हिसाब से लोग वर्ष गिना करते थे आभीर लोगों का राज्य शक लोगों के पीछे हिन्दु-स्तान में हुआ, आभीर लोग मध्य एशिया से हिन्दुस्तान में आए थे, विष्णुपुराण में इनको म्लेच्छों में गिना है बराहमिहिर भी इन्हें म्लेच्छ ही कहते हैं।

काठियावाड़—के गुंडा गांव के शिला लेख से भी आभीर राजाओं के राज्य का पता लगता है जिस समय अर्जुन श्री कृष्ण की पत्नी को ला रहा था उस समय इन ही लोगों ने अर्जुन को लूटा था, यह लोग ही पीछे से **अहीर** बन गए और आज सुनारों तर्खाणों ग्वालों और ब्राह्मणों तक में पाए जाते हैं अर्थात् इस जाति के मनुष्यों ने अपने आप को म्लेच्छ वर्ग से निकाल कर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्ण के पद को प्राप्त कर लिया, इसमें बहुत

से लोग शूद्र होने पर भी जनेऊ डालते हैं पूना के सुनार अहीर जनेऊ पहिरते हैं खान देश के अहीर नहीं पहिरते कुछ काल से इन में इस बात से विरोध भी हो रहा है।

तुर्क हिन्दु बन गये—हिन्दुस्तान की उत्तर ओर तुर्क लोगों का राज्य था जिसको राजतरंगणि नामक पुस्तक में "तुरुष्क" वा कुषण के नाम से लिखा है इसी वंश का **हिमकाड-फिस** नाम का एक राजा हिन्दू होकर शैव बन गया था यह मसीह की दूसरी वा तीसरी सदी में राज्य करता था इनके विशेषणों में "**राजाधिराजस्य सर्व लोकैकेश्वरस्य माहेश्वरस्य**"।

लिखा है, इसका नाम हिन्दुओं का सा नहीं है परन्तु यह पक्का शैव हिन्दु था इसके सिक्कों पर एक तरफ तुर्की टोपी और दूसरी तरफ नन्दी बैल तथा त्रिशूल हस्त एक पुरुष (शिव) की तस्वीर है जिस से सिद्ध है कि यह राजा तुर्कों के वंश में पैदा होकर भी हिन्दु होगया॥

दूसरे देशों के आये हुए लोग ब्राह्मण भी बन जाते थे इस

मगलोक ब्राह्मण होगये।

के बहुत से उदाहरणों में से एक "मग" जाति के लोगों का है, इन लोगों ने पहिले पहिल राजपूताना, मारवाड़, बङ्गाल तथा संयुक्त प्रान्त में वसती की थी, शालिवाहन के १०२८ शके के एक शिला लेख से (जो नीचे दिया जाता है)।

देवोजीया त्रिलोकी मणिरयमरुणो यन्निवासेन पुण्यः, शाकद्वीपस्सदुग्धाम्बुनिधि वलयितो यत्र विप्रा मगाख्याः ।

वंशस्तद्द्विजानां भ्रमि लिखित तनोर्भास्वतः स्वाङ्गमुक्तः, शाम्बो यानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति ॥ १ ॥

सिद्ध होता हैं कि शाकद्वीप में मग लोक रहते थे वहां से शाम्ब (साम्ब) उन्हें यहां लाया इस वंश में छः पुरुष प्रसिद्ध कवि थे, इसका कुछ वर्णन भविष्य पुराण में भी मिलता है शाम्ब ने चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के तट पर एक मन्दिर बनवाया उस समय ब्राह्मणलोक देवपूजन को निन्दनीय कर्म्म समझते थे इसालिये शाम्ब को कोई पुजारी न मिला और उसने शाकद्वीप से आये हुए मग जाति के लोगों को पुजारी बना दिया। मुलतान के निकट जो सुवर्ण का भारी मन्दिर था जिसे पिछली सदी में मुसलमानों ने तोड़ फोड़ दिया प्रतीत होता है यह वही मन्दिर हैं जिसे शाम्ब ने बनाया था ।

देवस्थापन में मगों का अधिकार

शनैः २ इनका देवपूजन में यहां तक अधिकार बढ़ा कि बराह मिहर से पण्डितों ने भी इनकी बाबत लिखा है कि :—

विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितु

शम्भोः सभस्माद्विजान् ॥

विष्णु की मूर्त्ति की स्थापना भागवत् लोगों के हाथ से और सूर्य देवता की मग लोगों के हाथ से करानी चाहिये।

कदाचित् लोगों को मग लोगों की जाति सम्बन्ध में संदेह हो इस लिये हम बतला देते हैं कि हिन्दुस्तान के मग और पर्शिया के मगी [magi] एक ही हैं पर्शियों के धर्म्म पुस्तक की भाषा भी वेद की भाषा से मिलती है और "मित्र" आदि पूज्य देवता भी "मग" और "मगी" लोगों के एक से ही हैं यह लोग उधर सीरिया, एशिया, मायनर, और रोम तक फैले हुए हैं और इधर हिन्दुस्तान तक।

मग लोग कौन थे ?

पहिले पहिल यह लोग एक सर्प की........की डोरी गल में डाला करते थे परन्तु ज्योंही इन्हों ने ब्राह्मण पदवी प्राप्त की त्योंही उसे त्याग जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहिरना आरम्भ कर दिया, इसका भी विशेष वर्णन भविष्य पुराण में ही मिलता है।

ईसा के पांचवें शतक में हूण लोग हिन्दुस्तान में आये और कुछ काल बाद इस कुल के नर वीरों ने भारत के कई भागों का राज्य प्राप्त किया शिला लेखों से तोरमाण तथा मिहरकुल दो राजाओं का वर्णन अब तक मिलता है।

हूण लोगों का हिन्दु होना

छतीसगढ़ के राजा कर्णदेव ने एक हूण कन्या से वि-

वाह किया था और राजपूतों की बहुत सी जातियों में एक हूण जाति भी है इन सब घटनाओं से पाया जाता है कि हूण लोग आर्य्यों ने आर्य बना लिये थे।

गुज्जर लोग क्षत्रिय बन गए

इतिहास में जिस प्रकार आभीर, हूण, शक, यवन वा तुर्क आदि का हिन्दु समाज में मिलकर हिन्दू संस्कारों को धार हिन्दू बनना सिद्ध होता है इसी प्रकार गुज्जर लोगों का विदेश से यहां आकर हिन्दू बनना पाया जाता है पंजाब में गुजरात शहर और दक्षिण में गुजरात प्रान्त इन लोगों के बसाए हुए हैं संस्कृत के गुर्जर शब्द से गुज्जर बन गये "गुर्जरत्रा" से गुजरात प्राकृत शब्द बन गया "गुर्जरत्रा" का अर्थ गुर्जर [गुज्जर] लोगों को आश्रय देकर रक्षा करने वाला है शुरू २ में यह लोग उस स्थान में आकर आश्रय लिया करते थे, गुजरात प्रान्त का पहिला नाम "लाट" था लाटी भाषा वा लाटी रीति बड़ी प्रसिद्ध थी काव्य प्रकाशादि में इसका वर्णन भी है मसीह की बारवीं सदी के पीछे इसका नाम गुजरात पड़ा, गुज्जर लोगों का भारत के भिन्न २ प्रान्त पर राज्य रहा, इस वंश के १ देव शक्ति, २ रामभट ३ रामभद्र, ४ भोज राजा ५ महेन्द्रपाल, ६ महीपाल छः राजे थे, इनमें से कन्नौज के राजा महेन्द्र पाल, के वंश को उसके गुरु **कविराज शेखर** ने अपने बालरामायण में रघुवंश की शाखा मानकर इसको "रघुकुल चूड़ामणि" लिखा है परं वास्तव में यह विदेशी (म्लेच्छ) लोग थे, और इनकी जाति के बहुत लोग गुज्जर नाम से रशिया के अज़ाब समुद्र के किनारे अब तक बस रहे हैं।

गुज्जरों का चारों वर्णों में प्रवेश

जिस प्रकार अहीर लोग अपने २ कर्मों से हिन्दुओं की ब्राह्मण, सुनाकर, तर्खाण, आदि जातियों में प्रवेश कर गए इसी प्रकार गुज्जरों ने भी चारों वर्णों में स्थान प्राप्त किया, अर्थात्, राजपूतानादि में बहुत में गौड़ ब्राह्मण बने बहुत से गूजर, क्षत्रिय, लुहार, तर्खाण सुनार वा जाट आदि बन गए।

गुज्जर राजपूत—राजपूत वंशों में १. पडिहार, प्रमार किंवा परमार ३ चाहुवान (चौहाण) ४ सोलंकी ऐसी जातियें हैं जिनका संस्कृत व्याकरण से अर्थ करना ऐसा ही है जैसा कुकुर का अर्थ "कौति वेद शब्दं करोति, इति "कुकुरो ब्रह्मा" हां इनमें से पडिहार शब्द कई स्थानों में गुज्जर शब्द का वाची तो आता है जिससे पाया जाता है कि और वर्णों में मिलने की तरह गुज्जरों ने राजपूत वंश में भी प्रवेश कर लिया।

इत्यादि लौकिक इतिहासों से सिद्ध होता है कि आर्य लोग शुरू से कर्म की प्रधानता को मुख्य रखकर न केवल अपने पतित भाइयों को शुद्ध कर अपना सा बना लेते थे किन्तु इतरों को भी अपने प्रभाव में लाकर अपना बना लेते थे, समझदार आर्यों का अब भी यह विचार है कि इस जाति हितैषी अपने पूर्वजों के सनातन धर्म्म को जो परम्परा से चला आता है अब भी इसको विधि पूर्वक स्वच्छता से निबाहे जाना चाहिए, इति ॥

शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	वियौष्ठ	मात्रियौष्ठ
१	२	मध्री	सध्री
५	१४	ब्रह्माणः	ब्राह्मणः
५	१४	वर्त्तमानी	वर्त्तमानो
७	४	नानुतिष्टंत्ति	नानुतिष्ठन्ति
७	१४	ब्राह्मण	ब्रह्मणा
९	१८	ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्यं
१०	२१	सोमात नयय	सौमाद् पनयन्
१३	१	पञ्चवां	पांचवां
१३	६	द्रिवड़ा	द्रविड़ा
१३	९	म्लेच्छवाचःचार्यवाचा,	म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः
१४	४	औरवा	और्वः
१४	१८	रेनैः	रेते
१४	२०	परित्याग	परित्यागं
१५	ः	उनके	उनको
१५	१६	शंव	शक
१५	९	ब्रह्मणों	ब्राह्मणों
१६	१५	अतऊर्ध्व	अत ऊर्द्ध
१७	१६	ब्रातच्फजोरस्त्रियाम	व्रातच्फिजोरस्त्रियाम्
२३	८	देवतः	देवलः
२४	१	सतातन	सनातन
२६	२	प्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
३०	२	प्रत्युतकार	प्रत्युपकार
३१	२	उदारण	उदाहरण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३	१७	श्लोकही	श्लोक ३१ से
३३	१७	७००	२७००
३४	१	भार्य्याः	आर्य्याः
३४	४	ममुझिता	समुज्झिताः
३४	५	विन्ध्याद्रद	विन्ध्याद्रिर्द
३८	४	जीवनः	जीविनः
३८	१३	जुलाहा	कलाल
३८	१७	याचकः	पाचकः
३८	१८	शूद्रश	शूद्रतश्
३९	१९	रक्खा	बना
४४	१७	अत्यर्थ	इत्यपि साधुः
४६	१	वैश्या	वेश्या
४६	५	वैश्या	वैश्य
४६	१८	वर्ह को	वर्द्ध को
५०	७	राज्येऽतु	राज्येतु
५१	१	वुभुञ्ज	वुभुजे
५३	९	सतातन धर्म	सनातन धर्म
५५	११	कूर्म	कूर्च
५६	२०	मनामाने	मनमाने
६०	१३	दृष्ट्वा	दृष्ट्वातु
६०	१८	अध्याय	अध्याय २०७
६३	१९	इष्टेदिति	यईष्टोदिति
६६	१८	र्वांशो	सर्वांशो
६९	७	भक्षये	भक्षयेत्
६९	९	द्विजाताना	द्विजातीना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७०	७	कीरा	कीटा
,,	९	कीर	कीट
७२	१४	धम	धर्म
७२	१८	पझ	झष
७४	२१	कालिया	कालिमा
७९	२१	यत्रों	मंत्रों
८१	१४	शुद्धयेच्च	शुद्ध्येच्च
८४	११	शलूषीं	शैलूषीं
८५	१०	म्लेच्छः	म्लेच्छैः
८५	१३	देव	देवलः
८६	१०	कुपादि	कूपादि
८६	१८	बानर का	बानर को
८७	१०	जीवितातप,	जीवितातय
९२	२	प्रायश्चित्तमर्ह,	प्रायश्चित्तार्द्ध
९२	१५	आधार	आधा
९३	५	भुत्का	भुक्ता
९३	१७	विगतं	विमलं
९४	३	विभांत्ति	विभांत्ति
१०३	१६	सुरोपो	सुरापो
१०३	१९	हीं हुए	से कहे हुए
१०४	१	एतोचिन्द्रं	एतोन्विद्रं
१०४	१४	तर्यं हो	तमं हो
१०५	३	प्रतिगृह्यं	प्रतिग्राह्यं
,,	४	समंदीपं	समंदीयं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	१०	पत्किचेदं	यत्किचेदं
११०	७	पापम्रै;	पापघ्नैः
११७	८	राम कहि	राम कीन्ह
११९	४	पूयतेत	पूयतेतु
११९	१५	निराकारादि,	निराहारादि
१२१	१५	विष्ण० प्र०,	त्रिष्णु० पु०
१२३	६	अशीर्यस्य,	अशीतिर्यस्य
१२३	११	गुरु	गुरुः
१२६	१	सपन्नः	संपन्नः
१३०	१४	सपघ्नेव	सयघ्नेत्र
१३४	१५	गोमूत्रादि	गोमूत्रादि से
"	"	वा	तो
२	२	इं०	हि०
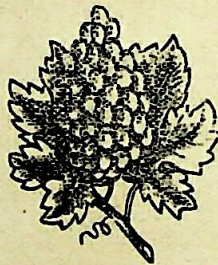
* आर्य्य प्रभा *

नाम का एक सर्वोपयोगी हिन्दी भाषा का साप्ताहिक पत्र आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब सिन्ध बलोचिस्तान की ओर से पं० सन्तराम शर्मा के सम्पादकत्व में वैशाख १९६६ से निकलता है इसका उद्देश्य वैदिक धर्म्म प्रचार स्त्री शिक्षा देश सेवा जाति हित तथा संसार के प्रचलित समाचारों को हिन्दी जानने वाले भाई बहिनों तक पहुंचाना है॥

इसके लेखक समुदाय में पंजाब के प्रसिद्ध २ विद्वान् और भारतवर्ष की प्रसिद्ध २ देवियां हैं। मूल्य केवल २) रु० वार्षिक।

प्रार्थना पत्र—"मैनेजर आर्यप्रभा"

लाहौर (अनारकली) के नाम आने चाहिये।

---

* आर्य्य गज़ट *

उर्दू का साप्ताहिक पत्र सब से पुराना और सब सामाजिक पत्रों से अधिक छपने वाला श्रीमती आर्य्य प्रदेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब सिन्ध बलोचिस्तान की तर्फ से श्रीयुत बा० रामप्रसाद जी बी. ए. मुख्याधिष्ठाता दयानन्द ब्रह्मचारी आश्रम लाहौर के सम्पादकत्व में प्रति सप्ताह बृहस्पतिवार को वैदिक सिद्धान्तों पर उत्तम २ विषय स्त्री शिक्षा, अनाथरक्षा, देश सेवा, विद्याप्रचार और संसारिक तथा धार्म्मिक विषयों को बड़ी गम्भीरता से प्रकाशित करता हुआ लाहौर से २० पृष्ठों के सुन्दर आकार में निकलता है जिसका पढ़ना प्रत्येक नर नारी के लिये लाभदायक है। वार्षिक मूल्य २॥) रु० विद्यार्थियों से २) रु०

प्रार्थनापत्र—प्रबन्धक "आर्य्य गज़ट"

लाहौर के नाम आने चाहिये।

उन्नति

प्रथम भाग

शारीरिकोन्नति

जिसको

महता रामचन्द्र शास्त्री

उपदेशक

डी. ए. वी. कालिज

लाहौर ने

बालकों के धर्म और आरोग्यतार्थ रचकर

प्रकाशित किया ।

प्रथमवार १००० मूल्य ।)

बाम्बे मैशीन प्रैस लाहौर ।

* ओ३म् *

उन्नति का स्वरूप

१. मनुष्य को इसलिये सर्वोपरि माना है कि वह अपने हिताहित और धर्माधर्म को विचार कर पुरुषार्थ से उन विघ्नों को दूर कर सकता है जो कि उसकी उभयविध सुख संपत्तिमें बाधक होते हैं अन्यथा पुरुष और पशु में कुछ भेद नहीं ॥

२. प्रत्येक मनुष्य के अन्तःष्करण में यह स्वाभाविकी इच्छा रहती है कि " मैं सदैव सुखी बना रहूं " मनुष्यमात्र इस बात का अभिलाषी है कि वह विद्यादि गुण संपन्न होकर न केवल पुरुषों में ही पुरुषोत्तम बने, प्रत्युत मरकर भी (स्वर्गीस्यांमाचनारकी) स्वर्ग सुख का पात्र बने और यही शुभ वासना ऊर्द्धगमन में प्रथम सोपान है । शुभ वासना ही मनुष्य को सत्कर्मकी प्रेरणा करती है । क्योंकि शुभवासना और सत्कर्म का घनिष्ट संबंध है । ऋषियों का सिद्धान्त है कि (स यथा कामो भवाति तत्क्रतु र्भवति) मनुष्य जैसी कामना करता है तदनुकूल कर्म करता है ॥

३. विशेषकर जब मनुष्य इस बात का चिन्तन करता है कि ईश्वरीय सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ मनुष्य के लिये ही नहीं, प्रत्युत प्राणीमात्र के उपकारार्थ रचागया है । और बिना किसी प्रतिफल के जगदीश्वर ने प्राणीमात्र को विशेषकर मनुष्य जाति को यह अधिकार दिया है कि वह उसकी सृष्टि में स्वछन्द चारी होकर न्यायपूर्वक अपने गुण कर्म और पराक्रम से यथेष्ट पदार्थों को उपलब्ध करे. जैसी कि वेद की आज्ञा है **" मनोनिविष्टमनु संविशस्वा यत्र भूमेर्जुषसेतत्रगच्छ**। अथर्व कां १३।३।१९

अर्थ०—मनुष्य जहां तेरी इच्छा हो वहां जा, संपूर्ण पृथिवी तेरे

रहने के लिये है। यथेष्ट पदार्थों को प्राप्त कर। तो फिर क्यों एक मनुष्य दूसरे स्थान में जाने के लिये अथवा अन्य यथेष्ट पदार्थ की प्राप्ति के लिये अन्य का मुख देखे। अथवा परतंत्र होकर भिक्षुक बने, जो ईश्वर आज्ञा और पुरुष प्रकृति के विरुद्ध है। एक कवि का वचन है। एता वज्जन्मसाफल्यं यदन्तायत्तवृत्तिता। ये पराधीनतां यातास्ते वैजीवन्ति के मृताः ॥

दूसरे के आधीन बृत्ति का न होना ही मनुष्य जन्म की सफलता है जो इससे वंचित हैं यदि वे जीते हैं तो मरे कौन हैं। क्यों न वह भी वे कर्म करे जिनसे स्वछद चारी हो निष्कंटक सुख भोगे। जिसका प्राप्त करना उसका अभीष्ठ और कर्त्तव्य है॥

पूर्वोक्त उत्कट इच्छा जैसी व्यष्टिरूप से पुरुष विशेष में पाई जाती है, वैसी ही समष्टिरूप मनुष्य समुदाय अथवा जाति में पाई जाती है॥

प्रत्येक जाति जब अपने को दूसरों से तिरस्कृत और पद दलित देखती है जिसका देखना एक जीवित जाति में असह्य और अयुक्त है, तब उसमें प्रकृति जन अमर्ष उत्पन्न होता है कि जब तक वह उस दुःख से निर्मुक्त न हो अथवा निर्मुक्ति के लिये पूर्ण शक्ति न प्राप्त करले उसका जीवन निषिद्ध जीवन है॥

पाण्डव जब कौरवों से बहिष्कृत होकर बन में नाना क्लेशों से क्लेशित हो रहे थे, उस समय अर्जुन ने एक बृद्ध के उत्तर में (जो उसे निर्वाण का उपदेश कर अभीष्ट से विमुख करना चाहता था) कहा कि शत्रुओं से तिरस्कृत किया हुआ मेरा हृदय अब तक नष्ट होगया होता, यदि प्रतिकारक आमर्ष मेरी भुजा का अवलंबन न होता॥ १॥ मनुष्य तभी लक्ष्मी का पात्र बनता है। तभी उसका

यश स्थिर रहता है । उसी समय तक पुरुष पद का अधिकारी है जब तक कि वह अपने मान से नहीं गिरता ॥ २ ॥

शक्तिहीन—और सर्वतः नीचे गिरी हुई तृष्ण और मानहीन मनुष्य की गति समान है ॥ ३ ॥ (कि०)

तिरस्कृत और अवमानित पुरुष दुःखमय जीवन व्यतीत करता है और उसका वह निन्दित जीवन मृत्यु के तुल्य है ४ ॥ (भा०)

भगवान् कृष्ण चन्द्र का कथन है कि पाओं से ताड़ित धूलि भी सिर पर चढती है तो जो देही अवमानित होकर भी क्षुब्ध नहीं होता उससे धूलि श्रेष्ठ है ॥ (शिशु०)

यह सोचकर इस दुःख से निर्मुक्त होने के लिये अथवा अपने को उन्नत करने के अभिप्राय से जो योग्य प्रयत्न किया जाता है उसका नाम पुरुषत्व अथवा उन्नतिं है और यही मनुष्य जन्म का प्रथम फल है यथाः—

(सजातो येन जातेन यातिवंशः समुन्नतिम्)

वही उत्पन्न हुआ है जिससे वंश उन्नति को प्राप्त करती है ॥

सिद्धान्त

१ अब बिचारणीय यह है कि जिस अभीष्ट की प्राप्ति के लिये मनुष्य जाति की अभिलाषा रहती है, वा जिसका सिद्ध करना उसका कर्त्तव्य कर्म है उसकी उपलब्धि कैसे हो अथवा जो जाति उन्नत होना चाहती है उसका प्रथम कर्त्तव्य क्या है इत्यादिः—

२ जगत के धर्मज्ञ और नीतिज्ञ इसके प्रतिकूल नहीं कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक शत्रुओं के दूर करने के लिये निजशक्तियों को वढ़ाने की पूर्ण आवश्यकता है। कोई शारीरिक रोग दुःखदाई नहीं होसकता, यदि स्वशरीर में पूर्ण बल हो।

कोई मानसिक दुःख दहन नहीं कर सकता यदि आत्मा बलवान हो। कोई सामाजिक दुर्घटना दुःखदायिनी नहीं होसकती यदि समाज में एकता का बल हो। जिन ज्ञातियों तथा मनुष्य समुदाय अथवा प्रत्येक पुरुष में शारीरिक बल आत्मोत्साह आत्मिक पवित्रता तथा सामाजिक एकता स्थिर रहती है किसी प्रकार का कष्ट उनके मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकता। आत्म-निर्बलता ही सब प्रकार की रोगोत्पत्ति का हेतु है। जो पुरुष आत्म शक्ति से पर्वत वत स्थिर रहते हैं वही वाह्य तथा आभ्यन्तरिक कष्टों को सहार सक्ते हैं ॥

३ धार्मिक तथा लौकिक अवस्था की पर्य्यालोचना से प्रतीत होता है कि जो जातिं अपने आप में सामर्थ नहीं रखती, और दूसरों पर ही निर्भर रहकर जीना चाहती है, वह कदापि सफली भूत नहीं हो सकती ॥

अतः—सब से पूर्व निजशक्तियों का उन्नत करना अत्यावश्यक है। निज सामर्थ्य के आश्रित ही सब शक्तियां काम करती हैं।

दैव भी उन्हीं का सहायक होता है जो अपनी सहायता आप करते हैं ॥

यह निजबल ही है जो अन्य पुरुषों को सहायक बनाता है जो वायु जंगल की प्रचंड अग्नि का सहायक होता है, वही दीपक के नाश का कारण बनता है ॥

शक्तिहीन, बलहीन, धर्महीन, स्त्री पुरुष संसार में कुचले जाते हैं। साधारण से साधारण पुरुष भी निर्बल को निगल जाता है ॥

भीष्म पितामहा का कथन है कि :—

येषां च कुले शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः।
तेजीवन्ति सुखंलोके कर्षन्ति चमहद्यशः॥ महाभारत

जो लोग शूरबीर और धर्मात्मा होते हैं वही सुख से जीते हैं और यश के पात्र बनते हैं ॥

अतः अभ्युदय के लिये शारीरिक बल, आत्मिक शक्ति तथा आत्मोत्साह बढ़ाना चाहिये यही इसलोक और परलोक के सफल करने का मूल मंत्र है रामचन्द्र ॥

शारीरिक उन्नति प्रथम कर्त्तव्य है ॥

आर्यजाति के प्रसिद्ध वैद्य चर्काचार्या अपनी शिक्षा में बतलाते हैं कि :-

"सर्व मन्यत परित्यज शरीर मनुपालयेत् ।
तदभावेहि भावानां सर्वाभावः प्रकीर्त्तितः" ॥ च० सू० अ०

उन्नति चाहने वाले मनुष्य समुदाय का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि और सबको छोड़कर प्रथम उन्नति के मूलकारण शरीर को उन्नत करे, क्योंकि बिना शारीरिक उन्नति वा शारीरिक बलके और सबका अभाव है । वेद बतलाते हैं कि "बलंक्षत्रमोजश्च-शरीर मनु प्राविशन्" अथर्व० ११ । ४ । २३ । बल क्षत्रत्व (भयार्तों की रक्षा) और ओज (आत्मोत्साह) यह यह शरीर में प्रविष्ट हुए अर्थात् यह सब शरीर के आधीन हैं । शरीरं ब्रह्म माविशदृ ऋक् सामाथो यजु० अथर्व ११ । ४ । २४ ऋक् यजु० सामाख्य ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट हुआ ॥

अर्थात् वेद भी तभी चरितार्थ होसकते हैं जब कि हमशारीरिक स्वस्था से उनका अध्ययन कर प्रचार करते हैं ॥

"प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्चया ।
व्यानो दानौ वाङ्मनः शरीरेणत ईयन्ते" अथर्व० ११ । ४

प्राण, अपान, व्यान, उदान, नेत्र, श्रोत्र, मन, वाणी, आदि पदार्थ तभी तक हैं जब कत कि शरीर स्वस्थ है ॥

१ निर्बल पुरुष धर्म तथा धनका उपार्जन नहीं कर सकता रोगी यथेष्ट कामनाओं को नहीं भोग सकता। अस्वस्थ परोपकार में असमर्थ होता है। रुग्ण के सन्मुख मधुर भोजन हालाहल के तुल्य होजाते हैं। निदान अस्वस्थ और निर्बल का जीवन विपज्जाल बन जाता है इसी से ऋषियों ने कहा है कि "**धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीरं साधनं स्मृतम्**" (योग०) शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन है। अतः उन्नत्यभिलाषी को प्रथम शारीरिक उन्नति करनी चाहिये ॥

बलिष्ठ को कुछ दुःसाध्य नहीं ॥

महाभारत शान्ति पर्व में व्यासमुनि लिखता है कि:—

"वशेबलवतां धर्मः सुखंभोगवतामिव ।
नास्त्यसाध्यंबलवतां सर्वं बलवतांशुचि म० श० अ० १३४

धर्म भी बलवानों के आधीन है जैसे भोग शीलों के लौकिक सुख बलवानों को कुछ भी दुःसाध्य नहीं बलवानों के (सपूर्ण **कर्म पवित्र माने जाते हैं ॥**

एक कवि ने क्या अच्छा कहा है कि :—

"नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियतेमृगैः ।
विक्रमोर्ज्जितराज्यस्यस्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

सिंह को न मृगों से राज्य तिलक दिया जाता है और न कोई

और संस्कार किया जाता है, तथापि वह अपने विक्रम से मृगों का राजा कहलाता है सत्य है "वीरभोग्यावसुंधरा" ॥

"दिवञ्चरोह पृथिवीञ्चरोह राष्ट्रंचरोह द्रविणंचरोह।
प्रजाञ्चरोहा मृतञ्चरोह रोहितेनतन्वं सस्पृशस्व"

अथर्व १३।१।४

अर्थः—मनुष्य तूं सुरक्षित शरीर से द्यौलोक, पृथिवी राज्य धन, प्रजा, (संतान) और मोक्ष को प्राप्त कर। अर्थात् शारीरिक उन्नति से अन्य सब पदार्थ सुलभ होते हैं ॥

तस्मात्पुरुषोमतिमान् आत्मनः शरीरेष्वेव।
योगक्षेमकरेषु प्रयतेत विशेषेण चर्क० नि० अ० ६ ॥

इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि वह योग और क्षेम करने वाले अपने शरीर के लिये जो २ उपकारक योग हैं उनका यत्न पूर्वक सेवन करे क्योंकि शरीर ही पुरुष का मूल है ॥

ब्रह्मचर्य शारीरिक उन्नति का प्रथम साधन है ॥

अब प्रश्न यह है कि वह कौन से प्रयोग हैं जिनसे शारीरिक उन्नति होती है। इसका उत्तर देते हुए भगवान् चरकाचार्य लिखते हैं ॥

ना वीर्यं कुरुते किंचित्सर्वावीर्यकृता क्रियाः।

वीर्यहीन कुछ नहीं कर सकते क्योंकि संपूर्ण क्रिया वीर्य से ही सिद्ध होती है। इसी की पुष्टि में याज्ञवल्क्य लिखते हैं ॥

असिद्धं तं विजानीयान्नरं ह्यब्रह्मचारिणम्।
जरामरण संकीर्ण कायक्लेश समन्वितम् ॥ या० । सं०

ब्रह्मचर्य न रखने वाला मनुष्य किसी कार्य में भी कृतकार्य नहीं होता, क्योंकि वह अकाल में ही जरा और मृत्यु का ग्रास बन जाता है। और नाना प्रकार के क्लेशों से युक्त होता है॥

तस्मातपुरुषोमतिमान् आत्मनः शरीरमनुरक्षनशुक्र मनुरक्षेत्। पराह्येषा फलनिवृत्तिराहारस्येति। तथा हि आहारस्य परंधाम शुक्रंतद्रक्ष्यमात्मनः। क्षयेह्यस्य बहून् दोषान् मरणं चाधिगच्छति॥ च०। नि०। अ० ६

इसलिये मतिवान् पुरुष को उचित है कि अपने शरीर की रक्षा करने वाले वीर्य की रक्षा करे। कारण यह है कि वीर्य ही आहार का परम फल है। जैसें कहा है कि आहार ही वीर्य का परम धाम है वीर्य के क्षीण होने से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं यहां तक कि मृत्यु भी होजाती है॥

१ ब्राह्मणों का वचन है कि (ब्रह्मचारी न कांचनार्त्ति मृच्छति) ब्रह्मचारी को किसी प्रकार का रोग नहीं होता॥

क्योंकि शुक्र ही शरीर में ऐसा सार है, जो कि प्रत्येक अंग को पुष्ट और दीप्ति युक्त बनाता है जैसा कि चरक में वर्णन किया है॥

रसइक्षौ यथादध्निसर्पिस्तैत्तैलन्तिलेयथा।
सर्वत्रानुगतं देहेशुक्रंसंस्पर्शने तथा॥च०चि०अ० २

जैसे ईक्ष में रस दही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहता वैसे ही वीर्य भी सब देह में तथा त्वचा में रहता है॥

दूसरे स्थान में वीर्य की सारता और उसके गुण इस प्रकार प्रतिपादन किये हैं ॥

शुक्रसार (परिपक्व वीर्य) वाले पुरुष विद्या, ज्ञान, धन और संतति से भरपूर होते हैं। सब लोग उनका सन्मान करते हैं। वह सौम्य और सौम्यता से देखने वाले होते हैं। दूध से भरे हुए नेत्रों की तरह अत्यन्त हर्ष युक्त होते हैं वह अत्यन्त सचिक्कण (दृढ़) चित्तसार संपन्न होते हैं। उनके दान्त एक दूसरे से मिले हुए सुशोभित होते हैं। उनका वर्ण और स्वर प्रफुलित और स्निग्ध होता है। वह कांतिमान होते हैं, उनके नितंब बड़े होते हैं अर्थात् शुक्रसार वाले पुरुष स्त्रियों के प्रिय और बलवान् होते हैं ॥

च० वि० अ० २ ॥

अथर्व वेद में ब्रह्मचर्य की यहां तक महिमा की गई है कि ब्रह्मचारी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सबका पालन करता है क्योंकि पूर्वोक्त चरक के कथनानुसार उसके संपूर्ण अंग प्रत्यंग स्वस्थ और बलिष्ठ होते हैं जिससे उसमें ऐसी शक्ति आजाती है ॥

१—आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।

२—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत् ॥

३—ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद्बिभर्त्तितस्मिन्देवा अधि-विश्वेसमोताः। प्राणापानौ जनयन्नाद्व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधां ब्रह्मचर्य से ही आचार्य बनता है, और ब्रह्मचर्य से ही राज्य का अधिकारी बनता है ॥

२—ब्रह्मचर्य और तप से ही विद्वान् लोग मृत्यु को जीतते हैं ॥

३—ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् चारों वेदों को धारण करता है ॥

ब्रह्मचारी में संपूर्ण दिव्यगुण निवास करते हैं (अथवा) उसके संपूर्ण इन्द्रिय पुष्ट होते हैं । संपूर्ण विद्वान् उससे मित्रता करते हैं । ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य से ही प्राण अर्थात् दीर्घ जीवी बन, क्लेशों का नाश, संपूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम बाणी, पवित्र मन, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ बुद्धि को धारण करके सब मनुष्यों के लिये संपूर्ण विद्याओं का प्रकाश करता है । एवं ऋगवेद में भी ब्रह्मचर्य्य से ही अपनी उन्नति, अपनी पारिवारिक उन्नति, चिरस्थायित्व, शारीरिक और अध्यात्मिक बल का होना लिखा है ॥

ताईं वर्द्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं निमातरा नयाति रेतसेभुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नामतृतीयमाधिरोचनेदिवि ॥

ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५५ ।

जो माता पिता अपने पुत्र के वीर्य बढ़ाने के लिये, और भोग ऐश्वर्य प्राप्ति के कारण, अत्यंत पुरुषार्थ से सब ओर से बढ़ाते हैं । अर्थात् उत्तम ब्रह्मचर्य, पूर्णविद्या, उत्तम शिक्षा, और युवावस्था को प्राप्त करा विवाह कराते हैं । तब माता पिता की उत्तेजना से सुशिक्षित पुत्र प्रकाशमान सूर्य मंडल के ऊपर नीचे,

और उत्कृष्ट तीसरे नाम को तथा निरंतर मान वाले माता पिता को धारण करता है। अर्थात् वह न केवल स्वयं ही ब्रह्मचर्य बल से विद्या, भोग तथा धर्मार्थ काम मोक्ष को प्राप्त करता है, प्रत्युत अपने माता पिता के नाम को सूर्य के तुल्य चमत्कृत करता है।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्यत्रातुरवृकस्यमीढुषः।
यःपार्थिवानित्रिभिरिद्विगामभिरुरुक्रमिष्टोरुगायजीवसे

जो विविध प्रशंसायुक्त (त्रिभिः) सत्व रज तमो गुण केसाथ अथवा उत्तम विद्या, सुशिक्षा और युवावस्था के साथ वा ऋग यजु साम के साथ, बहुत प्रशंसित जीवन के लिये पृथिवी से उत्पन्न हुए २ पदार्थों को प्राप्त होता है। उस रक्षा करने वाले, समर्थ, जितेन्द्रिय वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के ब्रह्मचर्य से उत्पन्न हुए पुरुषार्थ की हम प्रशंसा करते हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य दीर्घ जीवी होकर सुख, भोग तथा विद्या, धन, धर्म, योगाभ्यासादि से बल को उपलब्ध कर सकता है अन्यथा नहीं॥

चतुर्भिः साकंनवतिंचनामभिश्चक्रंनवृत्तांव्यतींरविविपत।
बृहच्छरीरो विमिमानऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्॥

जो विशेषता से धातुओं की बृद्धि का निर्माण करता हुआ (बृहच्छरीरः) बड़े बली और स्थूल शरीर वाला (अकुमारः) अर्थात् पच्चीस वर्ष की अवस्था वाला (युवा) युवावस्था को प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी अकेला ही युद्ध में अनेक मनुष्यों को गोल चक्र के तुल्य भ्रमाता है, और वह प्रशंसनीय गुण कर्म्म से बुलाने योग्य होता है॥ स्वा० द० भा०

ऊपर के मंत्र में वेदने यह बात दरशायी है कि जो पुरुष पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त अपने धातु तथा शरीर को बढ़ाता है,वही विजयी होता है। अब हम इस की व्याख्या वैद्यक वाक्यों से करते हैं कि ब्रह्मचर्य्य (वीर्यरक्षा) से ही धातु तथा शरीरादि की वृद्धि होती है। और पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त वीर्यरक्षा का कारण क्या है, क्योंकि यह तत्त्व सम्यगृतया वैद्यक से ही प्रकट होसकता है॥
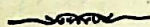
वैद्यकमतानुसार अवस्था तीन प्रकार की है। अर्थात् स्त्री हो या पुरुष प्रत्येक की तीन अवस्था होती हैं। अर्थात् १बाल्यावस्था, २ मध्यावस्था और ३ वृद्धावस्था जैसे सुश्रुत में "वयस्तु त्रिविधं बालं मध्यं वृद्धमिति ॥ ४८ ॥ तत्रो न षोड़श वर्षा बालास्तेऽपि त्रिविधाः। क्षीरपाः क्षीरान्नादाः, अन्नादा इति तेषु संवत्सरपराः क्षीरपाः, द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः। परतोऽन्नादाः ॥४९॥ इति

अर्थ—अवस्था तीन प्रकार की हैं। बाल्य, मध्य, और वृद्ध। सोलह वर्ष से कम बाल कहलाता है, उस के तीन भेद हैं। दूध पीने वाले, दूध और अन्न दोनों का आहार करने वाले, और अन्न खाने वाले। उन में एक वर्ष की अवस्था तक दूध पीने वाले, दो वर्ष पर्य्यन्त दूध और अन्न, इस के अनन्तर अन्न खाने वाले॥

षोड़श सवत्सरोनन्तरे मध्यवय स्तस्य विकल्पो वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता हानिरिति। तत्रा विंशतेर्वृद्धि

शात्रिंशतो यौवनं, आचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रिय बलवीर्य संपूर्णता अत ऊर्ध्वमीषत् परिहानिर्यावत्सप्ततिरिति ॥ ५० ॥

सोलह वर्ष की अवस्था से लेकर सत्तर वर्षपर्य्यन्त मध्यावस्था कहलाती है । और उस मध्यावस्था के चार भेद हैं । १ वृद्धिः, २ यौवन ३ संपूर्णता और ४ हानि अर्थात् घटाव । इस में बीस वर्ष पर्य्यन्त वृद्धिः अर्थात् सर्व धातु बढ़ती हैं। तीस वर्ष की अवस्था तक यौवन (जवानी) चालीस वर्ष की अवस्था में संपूर्ण धातु इन्द्रिय बल और वीर्य की परिपूर्णता होती है । इस के उपरान्त सत्तर ७० वर्ष की अवस्था पर्य्यन्त कुछ २ घटाव होने लगता है ॥

(यहां चरक में ७० के स्थान में साठ लिखा है ।)

सप्ततेरुर्ध्वं क्षीयमाण धात्विन्द्रिय बलं वीर्योत्साह महन्यहनि बली पलितखालित्यजुष्टं कासश्वास प्रभृतिभिरुपद्रवैरभि भूयमानं सर्व क्रियास्वसमर्थं जीर्णागारमिवाभिवृष्ट मवसीदन्तं वृद्धमाचक्षते ॥ ५१ ॥ सु० श्रु० सू० अ० ३५

सत्तर वर्ष की अवस्था के ऊपर सब धातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य, और उत्साह प्रतिदिन क्षय होता जाता है। त्वचा में बल पड़ जाते हैं। संपूर्ण केश श्वेत होजाते हैं, तथा गिर जाते हैं। खांसी, दमा आदि उपद्रवों से पीड़ित होकर सर्व कार्य्यों में असमर्थ होजाता है । जैसे जीर्णगृह मेघ वरसने से गिर जाता है, एवं जीर्ण अवस्था वाले को वृद्ध कहते हैं ॥

इसी प्रकार वाग्भट्ट अ० ३ श्लो० १०९ में

वयस्त्वा षोड़शाद्बालं तत्र धात्विन्द्रियौजसां ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रा वृद्धि परं क्षयः ॥ ५२ ॥

सोलह वर्ष तक बाल्यावस्था होती है। उस में धातु इन्द्रिय बल की वृद्धि होती है। और सत्तर वर्ष तक मध्यावस्था होती है वहां वृद्धि नहीं, सत्तर वर्ष के उपरान्त धातु इन्द्रिय का क्षय होने लगता है। और इसी प्रकार चरक विमान स्थान अध्याय ८ में प्रतिपादन किया है।

बाल्यावस्था में संपूर्ण धातु अपरिपक्क होती हैं। मूछ डाढ़ी आदि चिन्ह भी प्रकट नहीं होता है। इस अवस्था में शरीर सुकुमार क्लेश सहने के अयोग्य और अपूर्ण बल होता है और धातु कफ प्रधान होती है। और यह सोलह वर्ष तक रहती है। तीस वर्ष की अवस्था पर्यन्त धातु बढ़ती रहती हैं, मन प्रायः चञ्चल रहता है। मध्यावस्था में बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण शक्ति, धारण शक्ति, स्मरण शक्ति, वचन शक्ति, ज्ञान शक्ति और संपूर्ण धातुओं के गुण पूर्ण होते हैं। पित्त प्रधान होता है॥

यह अवस्था साठ वर्ष पर्य्यन्त रहती है। साठ वर्ष के उपरान्त संपूर्ण धातु, इन्द्रिय, बल, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण शक्ति, धारण शक्ति, स्मरण शक्ति, वचन और विज्ञान शक्ति क्षीण होने लगती है। धातु अपने २ गुण का परित्याग करने लगती हैं बात प्रबल होजाती है और इस तरह सौ वर्ष पर्य्यन्त वृद्धावस्था रहती है। पूर्वोक्त कथनानुसार बाल्यावस्था में अर्थात् पच्चीस वर्ष से पूर्व

जब कि मनुष्य की धातु इन्द्रिय और वीर्य अपरिपक्क होता है। विवाह करना वा स्त्रीसङ्ग करना हानिकारक और अधर्म्म है। इस से मनुष्य को नाना प्रकार के रोग और अकाल मृत्यु होती है, क्योंकि शुक्र ही आयु और आरोग्य का दाता है। इसलिये सुश्रुत कारने लिखा है॥

पञ्च विंशेततोवर्षे पुमान्नारीतु षोड़शे।
समत्वागत वीर्यौतौ जानीयात्कुशलो भिषक्।५३

पच्चीस वर्ष की अवस्था में पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री सम और पूर्ण वीर्य वाले होते हैं ऐसा चतुरवैद्यको जानना चाहिये।

इस में सन्देह नहीं कि बाल्यावस्था में भी वीर्य बीजरूप से होता है, परन्तु वह अल्प और अपरिपक्क अवस्था में होता है, इसी लिये उस अवस्था में बालक को कुमार कहा जाता है अर्थात् "कुत्सितो मारोयस्य सः" बहुत थोड़ा है मार अर्थात् काम जिस के और इस अपरिपक्क अवस्था में वीर्य का ह्रास करना प्रकृति नियम के विरुद्ध और हानि कारक है॥ अतएव

वैद्यों (डाक्टरों) ने सिद्धान्त किया कि

नर्तौ वै षोड़शाद्वर्षात्सपतत्यापरतो न च।
आयुष्कामोनरः स्त्रीभिः संयोगं कर्त्तुमर्हति ॥५४॥
अति बालोह्यसं पूर्ण सर्वधातुः स्त्रियो व्रजन्।
उप तप्येत सहसा तड़ाग मिव काजलम् ॥ ५५॥

शुष्करूक्षं यथा काष्टं जन्तु जग्धं विजर्जरम् ।
स्पृष्ट माशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥५९

जो दीर्घ जीवी होना चाहता है, वह सोलह वर्ष से पूर्व और सत्तर वर्ष पीछे स्त्री सहवास न करे ॥

बाल्यपन में धातु अपरिपक्क होती हैं, इस से उस अवस्था में स्त्रीसङ्ग करने से मनुष्य का वीर्य ऐसे सूक जाता है, जैसे ग्रीष्मऋतु में थोड़े जल का सरोवर ॥

वृद्ध पुरुष अर्थात् सत्तर वर्ष के उपरान्त स्त्रीसहवास करने से मनुष्य ऐसा विशीर्ण (नष्ट भ्रष्ट) होजाता है, जैसे कीड़ों से खाया हुआ पुराणा काष्ट हाथ लगाने से ही टूट जाता है ॥

अतः हमारी धर्म संस्था में प्रत्येक बालक को आठ वर्ष से पच्चीस वर्ष तक विद्या ध्ययनार्थ ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करके आचार्य्य के पास रहने की आज्ञा है । जिस का प्रस्ताव द्वितीय साधन विद्योन्नति में किया जावेगा ॥

तीसरी अवस्था में गृहस्थ त्याग कर वानप्रस्थ धारण और चतुर्थी में संन्यास धारण का विधान है । जिस के अनुष्ठान से हमारे पूर्वज दीर्घ-जीवी और सम्पूर्ण सुख सम्पति का आधार भूत थे । और जिस के परित्याग से आज हम लोग उन दुःखों के पात्र बन रहे हैं जिन का अन्य जाति के मनुष्यों में होना असम्भव गिना जाता है ॥

इस समय तो आर्य्य (हिन्दु) जाति की विचित्र और शोधनीय अवस्था होरही है । जहां एक तरफ कई एक स्वार्थी और धर्म तत्त्व से बहिर्मुख मात पिता अपने उदरोदर पूर्ति के

कारण वा मिथ्या पुण्य के भाव से दो २ और चार २ वर्ष की कन्याओं को अपनी अङ्क में ले वेदी में स्वयं फेरे लेते दिखाई देते हैं वहां दूसरी ओर एक साठ वर्षका वृद्ध डाड़ी मुड़वा और मुख को कालाकर (वसमालगा) धनदान से एक आठ वा दशवर्ष की कन्या का पाणि ग्रहण कर दूसरे ही वर्ष अपनी स्वाभाविक मृत्यु से दोनों कुलों को कलंकित करता है।

क्या इस से अधिक भी कोई पापाचार होसकता है। वैद्यक का सिद्धान्त हैं। कि :—

वयोरूप गुणोपेतां तुल्यशीलां गुणान्वितां।
अभिकामोऽभि कामांतु हृष्टोहृष्टामलं कृताम् ॥५७

अर्थात् पूर्ण षोड़श वर्ष की अवस्था वाली रूपगुणों से युक्त तुल्य शीलगुण युक्त कामना करने वाली हर्ष युक्त स्त्री से काम युक्त पुरुष संग करे अर्थात् तुल्य वीर्य और योग्य अवस्थावाले स्त्री पुरुष सहवासकरें। जैसा कि पूर्वोक्त सुश्रुत के अनुसार दरशाया गिया है कि सोलह वर्ष की स्त्री और पच्चीस वर्ष का पुरुष तुल्य वीर्य और युवा होते हैं। इसी का समाधान वाग भट्ट ने भी किया है कि जब सोलह वर्ष की अवस्थावाली स्त्री पूर्ण युवा वस्थावाले पुरुष से सहवास करती है तो।

वीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्वो वा गर्भो भवति नैव वा ॥५८॥

अष्टांग० शा० अ०१

वीर्यवान (सामर्थ वाले) पुत्रको उत्पन्न करता है। और

यदि इस से न्यून वर्षों में स्त्री सहवास करे तो रोगी अल्पायु निर्धन दरिद्री पुत्र उत्पन्न होता है, अथवा गर्भ उपजता ही नहीं ऐसा ही सुश्रुत कारने भी सिद्ध किया है यथा :—

ऊन षोड़श वर्षायामप्राप्तः पंच विंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥५९॥
जातो वा न चिरंजीवेत् जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः ।
तस्माद त्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥६०

सु० श० अ० १० श्लो० ६७–६८

सोलह वर्ष की अवस्था से छोटी स्त्री पच्चीसवर्ष से न्यून पुरुष यदि गर्भाधान करे, तो वह गर्भ प्रथम तो कुक्षि में ही नष्टहोजाता है, यदि बालक जन्मे भी तो चिर कालतक नहीं जीता । यदि जीवे तो दुर्बल इन्द्रिय और निसत्त्व होता है । अतः बाला अर्थात् छोटी स्त्री में गर्भाधान नहीं करना चाहिये ।

यही कारण है कि अन्य जाति के लोग जिनका युवा वस्था में विवाह होता है हमारी अपेक्षा दीर्घजीवी बड़े शरीरवाले, विद्वान् उत्साह युक्त और ऐश्वर्यशाली है । परन्तु एक हम ही हैं जो अल्पायु दरिद्री निसत्त्व विद्यादिगुणों से हीन और नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित हो रहे हैं । देशाभिमान हम में नहीं जात्याभिमान हम में नहीं धर्माभिमान हम में नहीं योग और क्षेमकी शक्ति हम में नहीं क्योंकि हम वीर्य हीन हैं और (नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वावीर्य कृता क्रिया) वीर्य हीन कुछ नहीं करसकते क्योंकि सर्व क्रिया वीर्य से ही सिद्ध होती है ।

परन्तु स्मरण रखिये हमारे पूर्वजों की यह दशा न थी, एकदा जब श्री रामचन्द्र जी महाराज इस चिन्तन में थे कि कौन समुद्रपार जाकर श्री सीता जी की सुध लावे और किस प्रकार वह कृतकार्य हो तो उस समय सब को हताश देखकर आबाल ब्रह्मचारी हनुमान जी ने खड़े होकर श्री रामचन्द्र जी को कहा ?

किं प्राकार विहारतो रणवन्तीं लङ्कामिहैवानये।
किं वा सैन्यसमुद्धितं च सकलंतत्रैवसं पादये॥६१
हेलां दोलित पर्वतो च्चशिखरै र्बध्नामिवारांनिधिं।
देवाज्ञापय किंकरोमि सकलं दोर्दंडसाध्यंहिमे ॥६२

हनुमान ना०

अर्थ—भगवन् क्या मुझे आज्ञा है कि मैं उस अलंकृत लङ्का को प्राकार के साथ ही उठाकर आपके सन्मुख लाऊं। वा रावण की उन्मत्त सेना को वहां ही नष्ट भ्रष्ट कर दूं अथवा क्रीड़ा मात्र से ऊंचे पर्वतों को उखाड़कर समुद्र को बांध दूं (अय देव आज्ञा करें। मैं क्या करुं क्योंकि यह सब क्रिया करने को मेरी एक भुजा ही समर्थ है। अर्थात् आपको यदि यह सन्देह हो कि " मैं विना साधन के यह महान् कार्य कैसे सिद्ध करसक्ता हूं " तो महाराज मेरा बाहुबल ही इसके लिये पर्याप्त है।

सत्य है (वशे बलवतां सर्वं) सम्पूर्ण सिद्धियें बलवानों के अधीन हैं।

एक कविका वचन है कि (वीरभोग्यावसुं धरा) वीर पुरुष ही धनधान्य से परिपूर्ण पृथिवी को भोगते हैं, जिसका एक चमकता हुआ उदाहरण हनुमान नाटक में दरशाया है॥

विजेत व्याल्ङ्का चरणतरणीयो जलनिधिः।
विपक्षः पौलस्त्योरण भुविसहायाश्चकपयः ॥ ६३॥
तथाप्येको रामः सकलमपिहन्ति प्रतिबलं।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥६४॥

लंका जैसे देश को जीतना, पाओं से समुद्र को तैरना, रावण जैसे शत्रु से युद्ध, और अपने सहायक वनमानुष (एक साधारण वानरजातिः) परन्तु तब भी अकेले श्री रामचन्द्र जी ने शत्रुओं का नाश किया। क्योंकि महान पुरुषों की सम्पूर्ण क्रिया सिद्धि सत्त्व के आधीन होती है न कि उपकरणों के।

इसमें सन्देह नहीं कि क्रिया सिद्धि में उपकरणों (साधनों) की आवश्यकता है। परन्तु स्मरण रहे कि साधन भी सत्त्व के आधीन होते हैं।

वनानिदहतो वन्हेः सखाभवतिमारुतः।
स एवदीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥६५॥

वन को दग्ध करते हुए प्रचण्ड अग्नि का जो वायु सखा (सहायक) होता है वही दीपक के नाश करने का हेतु बनता है, क्योंकि निर्बल का कोई मित्र नहीं होता॥

यदि महाराजा रामचन्द्र जी बाली आदि के बध से अपना बाहुबल न प्रकट करते तो किस तरह सुग्रीव अपनी सेना समेत उनका सहायक बनता। बहुतसी मनुष्यगणना का होना अथवा देश के दीर्घव्यायासादि का होना निरर्थक होता है। यदि उसके निवासी निसत्त्व और निर्वीर्य हैं॥

साद्धं दशभिः पुत्रैर्भारं वहतिंगर्दभी ।
एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपितिनिर्भयम् ॥६६॥

गर्दभी अपने दश पुत्रों के साथ दूसरों का भार उठाती है, परन्तु सिंही एकही वीर पुत्रको उत्पन्न कर वन में निर्भीक सोती है। और ऐसे वीर पुत्र के उत्पन्न करने का एकमात्र उपाय पूर्ण ब्रह्मचर्य्य है जैसाकि हमने अष्टांग हृदय के शारीरिक अध्याय १ श्लोक ९ के अनुसार बतलाया है, "कि पच्चीस वर्ष का पुरुष सोलह वर्ष की स्त्री में गर्भाधान करके वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न करें ॥

---

* प्रथम ब्रह्मचर्य्य किसे कहते हैं *

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासुसर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥६७॥पा०सं०

पूर्ण अवस्था पर्यन्त मन वचन और कर्म से सर्वथा मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

क्या मन और वचन से भी मैथुन कियाजाता है ? इस सन्देह को दूर करने के लिये ऋषियों ने दरशाया है कि मैथुन आठ प्रकार का होता है ॥

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥६८॥ दक्षस्मृतिः—

स्त्रियों का स्मरण, कीर्त्तन, इनके साथ क्रीड़ा, टिकटिकी लगाकर देखना। एकान्त में बात करना, निश्चय, प्राप्ति का उद्योग और क्रिया यह आठ प्रकार का मैथुन है। अर्थात् उपर्युक्त आठ प्रकार के कारणों से मनुष्य का वीर्य स्खलित होता है॥

काम को मनोज अर्थात् मन से उत्पन्न होने वाला कहा है और सम्पूर्ण संकल्प विकल्प का मूल मन है जब ब्रह्मचारी किसी स्त्री सम्बन्धी कथा सुनता है अथवा स्त्री का स्मरण करता है, तो अवश्य उसके मन में वह संस्कार वीज रूप से स्थिर होकर स्वप्नावस्था में वीर्य स्खलन का हेतु होगा। अतएव बड़े ऋषियों का कथन है कि।

न भाषयेत् स्त्रियं कांचित् पूर्वं दृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत् तासां न पश्येल्लिखितामपि॥६९॥
(पा० सं०)

स्त्री संभाषण न करे, न पूर्व देखी हुई का स्मरण करे। स्त्री सम्बन्धी कथाओं का परित्याग करे, और स्त्रियों की चित्रित मूर्त्ति को न देखे॥

महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्मपितामह ने ब्रह्मचर्य की उत्तमता बतलाकर कहा।

सुदुष्करं ब्रह्मचर्य मुपायं तत्रमे शृणु।
संवृत्तमुदीर्णं च निगृह्णी याद्‌द्विजो रजः॥७०॥

योषितो न कथा श्राव्या न निरीक्ष्या निरांबराः ।
कथं चिद्दर्शनादासां दुर्बलानां विशेद्रजः ॥७१॥

भा० शां० अ० २१४

ब्रह्मचर्य व्रत अति कठिन है, परन्तु उसका उपाय यह है कि स्त्री सम्बन्धी कथाओं को न सुनें। और न नग्न स्त्री का दर्शन करे। क्योंकि उनके दर्शन से दुर्बलों के अन्तःकरण में रजोगुण (राग) उत्पन्न होजाता है।

इसीलिये ब्रह्मचर्य व्रत के आरम्भ में ब्रह्मचारी को उपदेश दिया जाता है॥

मैथुनंवर्जय स्वमिन्द्रियमोचनम् ।
आचार्याधीनो भवान्यत्र धर्माचरणात् ॥७२॥

३ गो० गृ० अ० ३ ।

आठ प्रकार के मैथुन का त्याग। काम से अपनी इन्द्रियों को विषयों में मतलगा। आचार्य के आधीन हो बिना अधर्माचरण के। अतएव मनु ने लिखा है कि :-

एकः शयीत् सर्वत्र नरेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ।
कामाद्धिस्कन्दयन् रेतो हिनस्तिव्रतमात्मनः ॥७३॥

मनु० अ० २

ब्रह्मचारी अकेला सोवे, किसी प्रकार से भी वीर्य का पात न करे। क्योंकि इच्छापूर्वक वीर्य त्याग करने से अपने व्रत का नाश करता है।

एवं मानव गृह्य सूत्र में :-

न मुषितां स्त्रियं प्रेक्षेत । न विहारार्थे जल्पेत् ॥
सर्वाणिसांस्पर्शिकानि स्त्रीभ्योवर्जयेत ॥७४॥

मानव गृह्य सू० खं० १ । सू० ८ । ९ । ११

किसी नग्न स्त्री को न देखे, न स्पर्श करे, न स्मरण करे। काम योग सम्बन्धी कथन श्रवणादि भी न करे । स्त्री से सम्पूर्ण प्रकार के स्पार्शिक भावों को अर्थात् देखना छूना आदि का परित्याग करे ।

और यह व्रत अठतालीस छत्तीस और पच्चीस वर्ष पर्यन्त (ब्रह्मचर्य व्रत करे) इसी को उत्तम मध्यम और निकृष्ट कहा गया है ॥

और ऐसा ही कन्याओं के लिये भी ॥

ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानं विन्दते पतिम् ॥

अथर्व कां० ११ । अ० ३

कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से जवान पति को प्राप्त करे। अर्थात् वर वधु दोनों पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से युवावस्था को प्राप्त होकर विवाह करें ॥

इस समय अज्ञानान्ध लोग सत शास्त्रों को तिलांजलि देकर बाबा वाक्यं प्रमाणम् के अनुसार सात और आठवर्ष, नहीं२ इस से भी न्यून अवस्थावाली कन्याओं को गौरी और तुलसी

रूप से विवाह कर अपने आपको पुण्यात्मा समझने लगे (जो कि वास्तव में पापाचार है) इस लिये उन वाक्यों की जिनसे यह सर्व नाशिक प्रथाचली, समालोचना करनी आवश्यक प्रतीत होती है। क्योंकि मनुका सिद्धान्त है कि ॥

आर्षधर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना
यस्तर्केणानुसंधत्ते सधर्मं वेदनेतरः ॥१॥

मनु० आ०

ऋषि प्रणीत ग्रन्थों और धर्मोपदेशों को जो वेदानुकूल तर्क से निश्चय करता है वही धर्म को जानता है दूसरा नहीं।

प्रत्यक्षंचानुमानञ्च शास्त्रञ्च विविधागमं।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सिता ॥२॥

मनु० अ०

धर्म की शुद्धि चाहने वाले को चाहिये कि वह प्रत्यक्ष अनुमान और विविध शास्त्रों को जाने ॥

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो धर्मनिर्णयः।
युक्ति हीन विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥३॥

मनु०

केवल एक शास्त्र के आधार पर ही धर्म का निर्णय नहीं करना चाहिये। युक्ति हीन विचार में धर्म की हानी होती है ॥

इस समालोचना करने से प्रथम यह दरशादेना आवश्यक

है कि धर्म निर्णय में प्रत्येक वेदानुयायी आस्तिक के लिये तो यह प्रमाण ही उपयुक्त है कि :—

यावेदवाह्याः स्मृतयोयाश्च काश्चकुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाःप्रोक्ता स्तमोनिष्ठाहिताःस्मृताः।

मनु० अ०

अर्थात् जो स्मृतियें वेदप्रातिकूल हैं वह सम्पूर्ण निष्फल अन्धेरे में लेजाने वाली और त्याज्य है । क्योंकि (वेद प्रणि-हितोधर्मोऽधर्मस्तिद्विपर्ययः) वेद प्रति पादित धर्म और तद्विपरीत अधर्म है ।

परन्तु वे लोग (जिनके मत मे शायद संस्कृत अक्षरों में लिखी हुई प्रत्येक बातधर्म मानी जाती है) इस प्रमाण को स्मरण रक्खें ॥

विरोधोयत्रवाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसां ।
तुल्यप्रमाण सत्त्वेतु न्यायएव प्रवर्त्तकः ॥१॥

गो० गृ० सू० भाष्ये

जहां वाक्यों में बिरोध हो वहां बहुत प्रमाणिक होते हैं,और जहां तुल्य हों वहां न्याय (युक्ति) वर्त्तना चाहिये ॥

बाल विवाह में मुख्य प्रमाण पंडित काशीनाथ का दिया जाता है ॥

अष्ट वर्षाभवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षाभवेत्कन्या ततऊर्ध्वं रजस्वला ॥

माता चैवपिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति कन्यां दृष्ट्वा रजस्वलाम् ॥

अर्थ—आठ वर्ष की कन्या गौरी संज्ञावाली होती, नव वर्ष की रोहिणी, दश वर्ष की कन्या और इस के उपरान्त रजस्वला होती है। जो माता पिता तथा भ्राता कन्या को रजस्वला देखते हैं वह तीनों नरक में जाते हैं॥

तात्पर्य यह निकाला जाता है कि दश वर्ष से प्रथम ही कन्या का विवाह करदेना चाहिये॥

समीक्षा। इस में अनेक दोष हैं जो वेद विरुद्ध और युक्ति विरुद्ध हैं यथाः—

तमस्मेरायुवतयोयुवानंमर्मृज्यमानाःपरियन्त्यापः।
सशुक्रेभिशिक्वभिरेवदस्मेदीदायानिध्मोघृतनिर्णिगप्सु॥

ऋ० मं० २ सू० ३९

जो उत्तम ब्रह्म चर्यव्रत और विद्याओं से युक्त अत्यन्त युवावस्था वाली कन्यायें (जैसे नदियें समुद्रको प्राप्त होती हैं) वैसे ही अपने से अधिक अवस्थावाले युवापति को प्राप्त होती हैं। और जवान ब्रह्मचारी परिपक्ववीर्य और शुभगुणों से युक्त होकर हमारे मध्य मे अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म और अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे॥

जैसे अन्तरिक्ष में वा समुद्र में जल के शोधन करने वाला स्वयं प्रकाश मान विद्युत् वा अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष परस्पर के उत्कट आनन्द से उत्तम सन्तान और आनन्द

को प्राप्त हों अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य के उपरान्त युवा वस्था में (जो कि स्त्री की सोलह वर्ष और पुरुष की पच्चीस वर्ष में होती है) विवाह करें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें ॥

यही सिद्धान्त संपूर्ण सद्ग्रन्थों और स्मृतियों में पाया जाता है ॥

अनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ॥ गो० गृ० सू० अ० ३ सू० ३

ब्रह्मचर्य व्रत के उपरान्त गुरू की आज्ञा से स्नानकर समावर्त्तन संस्कार करे ॥

लक्षण प्रशस्तान् कुशलेन ॥ पारस्कर—स्कं० ८ सू० १

लक्षणवती अर्थात् स्त्री लक्षणों से युक्त स्त्री से विवाह करे ॥ ऐसा ही मनुने भी प्रतिपादन किया है ॥

: स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेद् द्विजो भार्यां सवर्णांलक्षणान्विताम् ॥

मनु० अ०

गुरू से आज्ञा पा स्नान करके विधिपूर्वक निवृत्त हुआ २ समान वर्णवाली और लक्षण युक्त अर्थात् स्त्री लक्षणों से युक्त स्त्री से विवाह करे। यहां लक्षणवती कहने से स्त्री के बंध्यात्वादि दोषों की निवृत्ति का तात्पर्य है जिनकी परीक्षा बिना युवावस्था के असम्भव है ॥

जैसे स्मृतियों में पुरुष के मूत्रादि की परीक्षा और स्त्री लक्षणों की परीक्षा का विधान है । वैसे ही वैद्यक में शुद्ध शुक्र और शुद्ध रक्त की भी परीक्षा के चिन्ह बतलाये हैं । अतएव

आपस्तंव गृह्य सूत्र खण्ड तीसरे में जहां स्त्री के दोष बतलाये हैं, वहां साथ ही यह भी दरशाया है कि स्त्री गुप्त न हो। अर्थात् स्त्री योग्य स्त्रियों द्वारा उसके अङ्ग असङ्ग की परीक्षा करालेवे॥

इसमें न्याय यह है कि विवाह का उद्देश्य योग्य सन्तान का उत्पन्न करना है। सन्तान उत्पत्ति विना ऋतु काल के असम्भव है और ऋतु वैद्यक मतानुसार द्वादश वर्ष से प्रथम होता नहीं। जिसका समाधान अष्टांग हृदय में इस प्रकार किया है॥

मासिमासिरजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतंक्षयम्॥

अष्टां० शा० अ० १

प्रति मास में रस से उत्पन्न होने वाला रज स्त्रियों का तीन दिन तक स्रवता रहता है। वह रज द्वादश वर्ष की अवस्था के उपरांत स्रव ने लगता है और पचास वर्ष की अवस्था में उसका अन्त होजाता है अर्थात् फेर नहीं होता॥

और विना ऋतु काल के स्त्री संसर्ग अधर्म है जैसाकि :—

अनृतौ गच्छन् संप्रदुष्येत्। विष्णुस्मृतिः॥

बिना ऋतु काल के स्त्री संसर्गी दूषित होता है॥

एवंमनुः (ऋतुकालाभिगामीस्यात्) मनुः अ० ३

ऋतु काल में स्त्री संग करे। आगे मनुः अध्याय आठ में

त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेत कुमारी ऋतुम तीसती।
ऊर्ध्वंतु कालादेत स्माद्विन्देत्सदृशं पतिम्॥

काम मामरणा त्तिष्ठेत गृहे कन्यर्त्तुम तीसती ।
न चेवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनायकर्हिचित् ॥

मनुः अ० ९

कन्या तीनवर्ष ऋतुमती होकर अर्थात् छत्तीस ऋतु व्यतीत कर इसके अनन्तर अपने योग्य पति को वरले । आगे पिता के लिये आज्ञा है कि कन्या ऋतुमती होकर भी जन्म भर पिता के घर में अविवाहिता रहे । परन्तु अयोग्यवर को कन्या न देवे ॥ इत्यादि

अब अष्ट वर्षाभवेद्गौरी वालों से पूछना चाहिये कि आपका कौन वाक्य सत्य मानें। आप कहते हैं कि दशवर्ष से प्रथम विवाह करना उत्तम है (जो वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध है, क्योंकि वहां तो पूर्वोक्त (तमस्मेरा युवतयो युवानं) के कथनानुसार न केवल युवावस्था है प्रत्युत अत्यन्त युवावस्था वाली अर्थात् वीस वर्ष से भी उपरान्त अवस्था वाली का विवाह लिखा है। आप कहते हैं " दशवर्ष से उपरान्त रजस्वला होजाती है, परन्तु वैद्यक में बारह वर्ष के उपरान्त रजस्वला होना लिखा है । आपका उपदेश है कि रजस्वला के विवाह से दाता का नरक वास होता है परन्तु मनु आदिकों के मत में तीन वर्ष रजस्वला रहकर भी विवाह होना लिखा है ॥

हां एक श्लोक मनुस्मृति में आता है जिस पर प्रायः बाल विवाह के प्रेमी अपनी पुष्टि मानते हैं । कि देखो मनु में लिखा है कि :—

त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मेसीदति सत्त्वरः ॥

तीस वर्ष की अवस्था वाला पुरुष मनोहरणी बारह वर्ष की कन्या से विवाह करले अथवा चौवीस वर्ष का आठवर्ष की कन्या से विवाह करले धर्म के नष्ट होने पर शीघ्र ही ॥

समीक्षा, प्रथम तो यदि इस श्लोक को मनूक्त ही मान लिया जावे तब भी गौरी आदि के मानने वालों का पक्ष सिद्ध नहीं होता क्योंकि वह तो इस विवाह को पुण्य मानते हैं, परन्तु इस श्लोक में तो एक आपद् धर्म बतलाया है जैसाकि (धर्मेसीदति सत्त्वरः) के पाठ से प्रकट होता है ।

अर्थात यदि किसी आपत्ति का सन्देह हो जिस से धर्म की हानी होती हो (जैसे कि मुसलमान राजाओं के समय में बलात्कार हिन्दु कन्याओं को हराजाता था) तो उस समय (सत्त्वरः) अर्थात शीघ्र ही पूर्वोक्त अवस्था में विवाह करले। अन्यथा नहीं। यहां (धर्मेसीदति) और (सत्त्वरः) शब्द इसका पूर्ण आदर्श हैं विशेषकर (सत्त्वरः)जिसका अर्थ जलदी या काहली करना है जो कि किसी नियत समय से प्रथम कार्य में ही सम्यक् उपयुक्त होता है॥

दूसरा हेतु—आपका तो सिद्धान्त है कि रजस्वला वा दशवर्ष से ऊपर की अवस्थावाली का विवाह नरक में लेजाने वाला है परन्तु इस श्लोक के तो पूर्वार्द्ध में ही लिखा है कि तीस वर्ष का वर बारह वर्ष की कन्या से विवाह करे। जो कि

आप के कथनानुसार और वैद्यक मतानुसार रजस्वला होती है। तब तो आपके पूर्वोक्त सिद्धान्त का खण्डन हुआ ॥

तीसराहेतु—मनुके कथन से कि (या वेद वाह्य) जो स्मृति वेद अनुकूल नहीं वह त्याज है। यह श्लोक अनादरणीय है क्योंकि इस का भाव वेद प्रातिकूल है ॥

चौथाहेतु। पूर्वोक्त (विरोधो यत्रवाक्यानां प्रामाण्यं तत्रभूयसां)के सिद्धान्तनुसार। और(श्रुतिस्मृतिविरोधेतु श्रुतिरेवगरीयसी) अर्थात् जहां श्रुति (वेद) और स्मृति का विरोध हो वहां श्रुति बलवती होती है। आपका सिद्धान्त निर्मूल और त्याज्य है ॥

सब से आश्चर्य जनक बात तो यह है कि यह संज्ञा अर्थात् " आठ वर्ष की गौरी होती है " इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों के विरुद्ध है। सत्य है (सर्वस्यलोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्धएवसः) अर्थात् शास्त्र ही सब का लोचन है जो इस नेत्र से हीन हैं वे अन्धे हैं ॥

गृह्य सूत्रों में (जो कि शीघ्र बोध के कर्त्ता पं० काशीनाथ से कई शताब्दी के प्राचीन हैं) यह संज्ञा इस प्रकार वर्णन की है ॥

अप्राप्ता रजसोगौरी, प्राप्तेरजसि रोहिणी।
अव्यञ्जिता भवेत्कन्या, कुचहीना च नग्निका ॥१॥

गो० गृ० अ० २ श्लो० ७८

अर्थात् जबतक कन्या को ऋतुधर्म नहीं आता तबतक वह गौरी

संज्ञिक होती है, रजके आने पर रोहिणी, व्यंजनों से रहित कन्या और कुचहीन नग्निका कहलाती है ॥

अब बताइये कि आपकी नव वर्षा वाली रोहिणी का विवाह हो अथवा रजस्वला रोहिणी का ? ॥

बाल विवाह के अनुयायियों से एक और प्रमाण भी दिया जाता है और जिसकी व्याख्या में कई एक विश्वासियों ने पौराणिक छाया से बाल विवाह सिद्ध करने की चेष्टा की है। वह यह सूत्र है ॥

नग्नातु श्रेष्ठा । गो गृ० प्र० ३ कां ४ सू० ६

नग्निका श्रेष्ठ है। अर्थात् नग्निका का विवाह करना श्रेष्ठ है। उपर्युक्त सूत्र पर भाष्यकार ने नग्निका का लक्षण इस प्रकार किया है ॥

यावन्न लज्जाशीलिनी कन्या पुरुष सन्निधौ ।
योन्यादिनावगूहेत तावद् भवति नग्निकाइति ॥

जब तक कन्या पुरुषों के समीप लज्जावती न हो और अपने गुप्तांगोंको न ढांपे। उस समय तक नग्निका कहलाती है। अर्थात् जबतक कन्या को अपने गुप्ताङ्ग ढांपने की भी समझ न हो उस समय उसका विवाह करना उत्तम है ॥

क्यों न उस देश का सत्यानाश हो जहां ऐसे २ अनर्थ हों। पंजाबी में एक कहावत है कि (ऊठ चालीस और टोडा पैंतालीस) एक ओर तो आठ, दश वर्ष की कन्या का विवाह बताते हैं तो दूसरी ओर छः वर्ष अर्थात् नग्निका का क्योंकि

कोई कन्या आठ वा नव वर्ष की न होगी जो अपने गुप्तांग को न ढांप सक्ती हो ॥

परन्तु हर्ष है कि ग्रन्थकर्त्ताने आगे चलकर स्वयं ही इसका लक्षण करके पूर्वोक्तभाव का निराकरण कर दिया जैसे :—

नग्निकांतु वेदत्कन्यां यावन्न ऋतुमतीभवेत् ।
ऋतुमतीं त्वनग्निकां तां प्रयछेत्त्वनाग्निकाम् ॥

गो० गृ० प्र० २ सू० १७

कन्या जबतक ऋतुमती न हो तबतक नग्निका संज्ञावाली होती है । और ऋतुमती होने पर अनग्निका कहलाती है, इस लिये अनग्निका अर्थात् ऋतुमती का विवाह करे ॥ इसी की पुष्टि में :—

नाजात लोम्न्यो पहासमिच्छेत् । गो०गृ०प्र०३कां०५
अजातव्यंजनालोम्नी न तया सह संविशेत् ।

कत्यायन०

व्यंजन अर्थात् स्त्री लक्षणों से हीन और अलोम्नी गुप्त लोमों से रहित स्त्री से संसर्ग न करे । इत्यादि दोषों को अनुभवकर के ही इस समय कई एक विद्वानों ने अपनी लेखनी उठाई और अष्टवर्ष के अर्थ खींचातानी से सोलह वर्ष के किये । परन्तु हमारी सम्मतिमें तो इस खेंचातांनी की अपेक्षा उस निर्मूल और सर्व नाशक सिद्धान्त को त्याग देना ही अत्युत्तम है ॥

यद्यपि इस में अनेक प्रमाण तथा हेतु दिये जासक्ते हैं परन्तु विस्तार भय से यही आदर्शमात्र दिखलाकर पाठकों से निवेदन किया जाता है कि विना बाल विवाह के त्याग के प्रत्येक प्रकार की उन्नति दुःसाध्य और असम्भव है ।

क्योंकि शारीरिक उन्नति से ही मनुष्य आयुष्मान् बलवान् विद्वान् तेजस्वी तथा अन्यान्य इष्ट विषयों में सम्पन्न हो सक्ता है, जैसा कि चरक संहिता के विमान स्थान अध्याय आठ में प्रतिपादन किया है ॥

चिकने कोमल सूक्ष्म और अनेक मूलों वाले स्थिर बाल, ऊंचा मस्तक, ठिगने तथा ऊपर को ऊंचे बड़े और असन्त मांस वाले दोनों कान, प्रकटरूप, कृष्ण और श्वेत भागवाले नेत्र, आगे से ऊंची और बड़े श्वास लेने वाली पुष्ट, कोमल तथा समान नासिका, लाल और बाहिर को न निकले हुए दोनों होंठ, बड़ी और अधिकता से रहित दोनों दाड़ें, घनरूप चिकने कोमल स्पर्श वाले स्फेद और समान दन्त, लाल विस्तृत और महीन जीभ, मांस वाला, बड़ा चिबुक। ठिगनी तथा घन और गोल ग्रीवा, ऊंचे तथा पुष्ट दोनों स्कन्ध। दाक्षिण की ओर से आवर्त्तवाला, गूढ़ नाभिवाला, और सम्यक् प्रकार से ऊंचा उदर। सूक्ष्म, लाल, और ऊंचे नखोंवाला, स्निग्ध और ताम्र तथा लम्बी और छिद्र से रहित अंगुलियों वाला विस्तृत हाथ, तथा पैर। गूढ़वंशवाला, और बड़ा पृष्ठ। गूढ तथा दृढ़ सन्धियां। कृपणता से रहित घण्टा की न्याईं पीछे तक शब्द करने वाला स्वर। स्निग्ध तथा स्थिर कान्तिवाला वर्ण। स्वाभाविक स्थिर, और विपत्त काल में भी विकार को न प्राप्त होने वाला, बलिष्ट, उत्तरोत्तर क्रम से क्षेत्र के तुल्य, क्षेत्र और गर्भादि दोषों से रहित ज्ञान विज्ञान से युक्त शरीर, श्रेष्ट होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण गुणों से युक्त शरीर सौ वर्ष की आयु वाला होता है, और इसी में ऐश्वर्य्य तथा मनोवांछित भाव प्रतिष्ठित रहते हैं ॥

देखो अष्टांग हृदय शारीरिक अध्याय १।

इसी प्रकार सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय तीन में (गूढ संधिशिरास्नायुः) इत्यादि बतलाकर आगे (पंचविंशे०) बतलाया कि यह सब गुण पुरुष की पच्चीस और कन्या की सोलह वर्ष की अवस्था में गर्भाधान करने से होते हैं॥ एक पुरुष ने अपने ब्रह्मचर्य बल से ही यह आव्हान दिया था कि :—

ऋतुकालाभिगामीस्याद योग्याहार परायणः।
शंकां माकुरुभद्रेत्वं यदिवैद्यवंशगो भवेत्॥

जो पुरुष पूर्णब्रह्मचर्य के अनन्तर ऋतुकालाभिगामी होता है। और योग्य आहार करता है, अय कल्याणवाली तू कभी सन्देह भी मतकर कि वह पुरुष वैद्य के वश में जावेगा। अर्थात् वह रोगी नहीं होसकता। इसलिये सम्पूर्ण सुखसम्पत्ति के निदान स्थान शारीरिकोन्नति के लिये उसके मूलभूत ब्रह्मचर्य की रक्षा करना ही प्रथम कर्त्तव्य है॥

तस्मात्पुरुषोमतिमानात्मनः शरीरमनुरक्षन्
शुक्रमनुरक्षेत्॥ च० नि० अ० ६

—–०—–

* प्रयोग २ दिनचर्य्या *

—–:०:—–

शारीरिक उन्नति का दूसरा प्रयोग दिनचर्या है। अर्थात नियत समय पर उन नियमों का अनुष्ठान जिन से शारीरिक स्व-स्थिता और धर्म की बृद्धि होती है। क्योंकि बल तीन प्रकार का होता है॥

जैसे–त्रिविधं बलमिति, सहजं, कालजं, युक्तिकृतं च।
सहजं यच्छरीर सत्त्ववयः प्राकृतं, कालकृतं ऋतु
विभागजं, वयः कृतं च। युक्तिकृतं पुनस्तदा-
हार चेष्टा योगजम् ॥ च० सू० अ० ८

अतएव—

आहारचार चेष्टासु सुखार्थं प्रेत्यचेह च।
परं प्रयत्नमातिष्टेद् बुद्धिमान् हितसेवने ॥

च० सू० अ० ८

बल तीन प्रकारका होता है। सहज, कालकृत, (स्वाभाविक) और युक्तिकृत। (स्वाभाविक) जो माता पिता के रजवीर्य से मिलता है, कालकृत, जो आयु वृद्धि के साथ। और युक्तिकृत्त अर्थात् जो आहार आचार व्यायामादि से उत्पन्न किया जाता है॥ इसलिये हित चाहने वाले बुद्धिमान को चाहिये कि वह अपने आहारादि की ओर विशेष दृष्टि दे॥

(१) प्रथम ब्राह्म मुहूर्त्त में चार घड़ी रात रहते उठकर मलमूत्र का त्याग करना, इसी को धर्मशास्त्राकारों और वैद्योंने आयु रक्षाका प्रथम साधन माना है और प्रत्येक की वृद्धि के लिये उपदेश किया है॥

भगवान् सुश्रुताचार्य अनागत दुःखों से निर्मुक्ति के नियम बतलाते हुए लिखते हैं॥

उत्थायोत्थायसततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता।

धीमता यदनुष्ठेयं तत्सर्वं प्रविचक्षते ॥

सु० चि० अ० २४

आरोग्यता की इच्छा करने वाले बुद्धिमान पुरुष को नित्य प्रातःकाल उठते ही जो करना चाहिये अब उनका वर्णन करते हैं यह लिखकर प्रथम नियम जो लिखा है सो यह है कि:-

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येतस्वस्थोरक्षार्थ मायुषः ।

स्वस्थ मनुष्य को आयु की रक्षा के लिये ब्राह्ममुहूर्त्त में जाग उठना चाहिये ॥ और यही अक्षर भाव प्रकाश प्रकर्ण४ खण्ड प्रथम में पाये जाते हैं ॥

वागभट्ट (अष्टांग हृदय में) इस प्रकार प्रतिपादन किया है ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्त(उत्तिष्टेत बुध्येत)स्वस्थोरक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्यकृत शौचविधिस्ततः ॥

अष्टांग० सू० अ० २

मनुष्य अपनी आयु की रक्षार्थ ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे और मल मूत्र का त्याग कर शौच करे ॥ एवं मनु अध्याय ४ में भी (ब्राह्मेमुहूर्त्ते) की आज्ञा पाई जाती है । स्वयं वेदभगवान् भी इस विषय में ऐसा ही उपदेश करते हैं ॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्र मस्थात् । आयती मग्न उषसंविभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणा ॥ ऋ० मं० ३ अ० ५ सू० ६१

हे विद्वान् जनो ! जो उत्तम धन करने वाली, जिससे सत्य विद्यमान् है प्रकाश से उत्पन्न हुई वेला, सूर्य से जानी जाती है, पृथिवी और अन्तरिक्ष को अच्छे प्रकार स्थिर करती है । उस

आती, और प्रकाश करती हुई (उषसं) प्रभात वेला को प्राप्त होकर (उठकर) समाधिसे जगदीश्वर की प्रार्थना करते हुए आप उत्तम प्रशंसनीय धन को प्राप्त हो ॥ एवं

ब्राह्म मुहूर्त्त मैं उठकर मल मूत्र का त्याग करना—

आयुष्य मुषसिप्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।
तदंत्र कूजनाध्मानोदरगौरव वारणम् ॥

सु० चि० अ० २४

सवेरे मलमूत्र का त्याग करना आयु को बढ़ाता है। आंतो की गुड़गुड़ाहट पेट का फूलना, उदर रोग, तथा भारी पन को दूर करता है ॥

मलादि के रोकने से नाना प्रकार के रोग उपजते हैं जैसा कि सम्पूर्ण वैद्यों का मत है ॥

आरोपशूलौपरिकर्त्तिताचसंगःपुरीषस्यतथोर्द्ध्ववातः ।
पुरीषमार्गादथवानिरेतिपुरीषवेगेनिहितेननरस्य ॥
वातमूत्रपुरीषाणां संगोऽध्मानं क्लमोरुजा ।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥२॥
वस्तिमेहनयोः शूलंमूत्रकृच्छं शिरोरुजा ।
विनामोघं क्षणा नाहः स्याल्लिंग मूत्र विनिग्रहे ॥

सु० चि० अ० २४

पुरीष के रोकने से पेटका आफरना शूल, मलकारुकना, वायुका ऊर्द्धगामी होना, तथा मलमार्ग से मल का साफ न निकलना आदिदोष होते हैं ॥

अधो वायु के रोकने से वायु मूत्र, मल, रुकजाते हैं पेट फूलजाता है, ग्लानी और सिरदरद होता है तथा, उदर में अन्य वायु के विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥

मूत्र के रोकने से निम्नरोग उपजते हैं वस्ति और लिंग में पीड़ा मूत्र कृच्छ, सिरदर, और नलों आदि के नाना रोग उपजते है ॥ और यह ग्राम से दूर होना चाहिये यथाः—

दूरादावस्थानं दूरात्पादा व सेचनं ।
उच्छिष्टान्न निषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥ ४ ॥

मनु० अ० ४

अनन्तर शौच करना चाहिये ।

गुदादिमलमार्गणां शौचंकान्ति बलप्रदम् ।

सु० सू०अ २

मल त्याग के अनन्तर गुदादि मलमार्गों को धोना चाहिये, इस से कान्ति और बलकी वृद्धि होती है ॥

इस के अनन्तर दन्त धावन (दातन) करना चाहिये ॥

तद् दौर्गन्ध्योप देहौतु श्लेष्माणं चापकर्षति ।
वैशद्यमन्नाभि रुचिं सौमनस्यं करोति च ॥१॥

सु० सू० अ०२४

दातौन करने से मुख की दुर्गंधी दांतों की मैल तथा कफ दूर होता है, उज्ज्वलता, अन्नपर रुचि, और सौमनस्यता प्राप्त होती है ॥

दातन के अनन्तर अभ्यंग मर्दन (मालिश करना) ॥

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जराश्रम वातहा ।
दृष्टि प्रसाद पुष्टयायुः स्वप्नसुत्वक्दार्ढ्यकृत् ॥

नित्य अभ्यंग (मालिश) करना चाहिये। क्योंकि मालिश बुढ़ापा परिश्रम, और बात को हरता है। दृष्टि की स्वच्छता, पुष्टि, आयु, त्वचा की सुन्दरता, और दृढ़ करता है ॥

शिरः श्रवण पादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ।

अष्टां० सू० अ० २ ॥

सिर कान और पाओं में विशेषकर मालिश करनी चाहिये ॥

क्योंकि पैरमें मालिश करने से कठोरता रुक्षता आदि दोष दूर होते हैं ।

अभ्यंगोमार्दवकरः कफवातनिरोधनः ।
धातूनां पुष्टि जनको मृजार्णव बलप्रदः ॥
सेकः श्रमघ्नोऽनिलहृद्भग्नसंधि प्रसाधकः ।
क्षताग्निदग्धाभिहत विघृष्टानां रुजापहः ॥
जलसिक्तस्यवर्द्धन्ते यथा मूलेंऽकुरास्तरोः ।
तथाधातु विबृद्धिर्हिस्नेह सिक्तस्य जायते ॥

सु० चि० अ० २४ ॥

शरीर पर मालिश करने से शरीर मृदु (कोमल) होता है। कफ और वायु का नाश होता है। धातु पुष्ट होती है। शुद्ध रूप, और बल की प्राप्ति होती है ॥

स्नेह से श्रम, तथा वायु का नाश होता है, सेक टूटी हुई अस्थि को जोड़ता है। क्षत, और अग्नि से दग्ध हुए को हित कारी

होता है । (विघृष्ट) रगड़ की पीड़ा को दूर करता है जैसे वृक्ष के मूल में पानी देने से उस के अंकुर बढ़ते हैं । इसी प्रकार स्नेह से सींचे हुए मनुष्य की धातु बढ़ती हैं ॥

शिरोगतांस्तथा रोगान् शिरोऽभ्यंगोऽपकर्षति ।
केशानां मार्दवंदैर्घ्यं बहुत्वंस्निग्ध कृष्णता ॥१॥
करोति शिरसस्तृप्तिं सुत्वक्त्वमपि चालनम् ।
संतर्पणं चेन्द्रियाणां शिरसः प्रतिपूर्णम् ॥

सु० चि० अ० २४.

सिर में तेल लगाने से शिर के रोग दूर होते हैं । बाल नरम होते हैं बढते हैं । बहुत घने और काले होते हैं ॥

मालिश सिर की(दिमाग की)तृप्ति करती है,शिर की त्वचाको सुन्दर बनाती है । रक्त का संचार करती है,इन्द्रिय और शिरको पूर्ण करती है ॥

मालिश के लिये यद्यपि सरसों का तेल उत्तम और गुण कारी है परन्तु सुश्रुत कारने शिर में लगाने के लिये एकविशेष तेल लिखा है ॥

मधुकं क्षीर शुक्लाच सरलं देवदारु च ।
क्षुद्रकं पंचनामानं समभागानिसंहरेत ॥

सु० चि० अ०२४

१ मुलठी २ क्षीर विदारी ३ सरल देवदारु तथा लघु पंच-मूल अर्थात (विदारीगंध बृहती पृष्णिपर्णी करेरी गोखरू) इनका नाम पंचलघुमूल हैं देखो च० चि० अ० १ इन सब को

समभाग लेवे। इनके क्वाथ और कल्क में चक्रतैल(कोल्हू में पीड़ा हुआ स्फेद तिलों का तेल) पकाके पुनः ठंढा कर नित्य शिर में मालिश करनी चाहिये ॥

व्यायाम।

पुनः व्याम (कसरत) करे। इस से (व्यायाम से) शरीर हृष्ट पुष्ट और निरालस्य रहता है ॥

व्यायाम का लक्षण और गुण इस प्रकार बतलाया है ॥

शरीरायासजननंकर्म व्यायामसंज्ञितं।
तत्कृत्वातु सुखंदेहं विमृद्नीयात्समंततः ॥३४॥
शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वंलाघवंमृजा ॥३६॥
श्रमक्लम पिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥३७॥
न चास्तिसदृशं तेन किं चित्स्थौल्याप कर्षणं।
नचव्यायामिनंमर्त्यमर्द्दयन्त्यरयोभयात् ॥३७॥
न चैनंसहसाक्रम्यजरासमधि रोहति।
स्थिरीभवतिमांसं च व्यायामाभिरतस्य च॥३९॥

शरीर में थकान पैदा करने वाले कर्म को व्यायाम कहते हैं, व्यायाम करने से शरीर सर्वथा सुखपूर्वक सुडौल होजाता है॥३५॥

शरीर बढ़ता है, शरीर में कान्ति (सौन्दर्यता) आती है। अङ्गों का सुन्दर विभाग होता है। अग्नि (जठराग्नि) बढती है आलस्य नष्ट होता है। स्थिरता,हलकापन और शुद्धि होती है॥३६॥

व्यायाम से थकावट, तृष्णा, सरदी, गरमी आदि के सहने की शक्ति होती है। और परमारोग्यता आती है ॥ ३७॥

अति स्थूलता के कम करने का व्यायाम के तुल्य कोई उपाय नहीं है। कसरत करने वाले पर शत्रु भय से आक्रमण नहीं करसक्ते ॥ ३८ ॥

कसरती पर जल्दी से बुढ़ापा नहीं आता। और मांस दृढ़ होता है ॥ ३९ ॥

व्यायामक्षुण्ण गात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगाइव ॥ ४० ॥
वयोरूप गुणैर्हीन मपिकुर्यात्सुदर्शनम् ॥

सु० चि० अ० २४

व्यायाम से थककर पाओं में मालिश करने वाले के समीप रोग नहीं आते, जैसे सिंह के पास क्षुद्र मृग नहीं आते ॥ ४० ॥

व्यायाम, अवस्था रूप और गुण हीन को भी सुन्दर बना देता है ॥

व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपिभोजनम्।
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषंपरिपच्यते ॥

सु० चि० अ० २४

नित्य कसरत करने वाले को विरुद्ध भोजन भी कच्चा हो अथवा पक्का सुखपूर्वक पचजाता है ॥

एवं अष्टांग हृदय सू० अ० २ में।

लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्त घनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥

व्यायाम से शरीर का हलकापन, कर्म करने में सामर्थ्य, अग्नि का दीप्त होना, मेदकाक्षय, अङ्गों की विभक्तता, तथा पुष्टि, होती है। व्यायाम शीत और वसन्तऋतु में विशेषता से करना चाहिये। दण्ड, गतका, कुशती, कबड्डी, आदि देशी खेलें, और फुटबाल, टैंबल आदि विदेशी खेलें उत्तम हैं। और समर्थों के लिये घोड़े की सवारी अत्युत्तम है ॥

स्नान।

उपर्युक्त क्रिया करके स्नान करना चाहिये। धर्म शास्त्रों में स्नान के अनेक गुण बतलाये हैं ॥ यथा

निद्रा दाहश्रमहरं स्वेद कण्डुतृषापहं।
हृद्यं मलहरं श्रेष्टं सर्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ ५५ ॥

स्नान, निद्रा, दाह तथा श्रम का नाशक है। स्वेद, कण्डु (खारश) और प्यास को दूर करता है। हृदय को हितकर है। मल के हरने वाला है सम्पूर्ण इन्द्रियों का शोधक है ॥ ५५ ॥

तंद्रा (ऊंघना) तथा पाप का नाश करने वाला है। तुष्टि प्रदाता है पुरुषत्व के बढ़ाने वाला, रुधिर को स्वच्छ करने वाला, और जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है ॥ स्नान स्वस्थता में ताजे ठण्डे जल से करना चाहिये ॥

अञ्जन लगाना।

(१) स्नान करके नेत्रों में अञ्जन लगाना चाहिये। अञ्जन नेत्रों के अनेक रोगों को दूर करता है॥ जैसे—

मतं द्योतोंजनं श्रेष्टं विशुद्धं सिन्धु संभवं।
दाहकण्डु मलघ्नं दृष्टिक्लेदरूजापहम् ॥ १४ ॥
अक्षणो रूपावहं चैव सहते मारुतातपौ।
न नेत्ररोगा जायन्ते तस्मादंजनमाचरेत् ॥१५॥

सु० चि० अ० २४

मुख धोकर अथवा स्नान करके अञ्जन लगाना चाहिये। सिन्धु नदी का उत्पन्न हुआ निर्मल सुरमा अर्थात् काला सुरमा श्रेष्ट है॥

सुरमा—दाह, (जलन) खुजली, तथा नेत्रों की मलको नष्ट करता है। दृष्टि के क्लेद और रोगों को नाश करता है॥ १४॥

नेत्रों को सुन्दर बनाता है। नेत्रों में वायु और धूप की सहन शक्ति उत्पन्न होती है। नेत्रों में कोई रोग नहीं होता। इसलिये नित्य अञ्जन लगाना चाहिये॥ एवं चरक में भी—

सौवीर मंजनं नित्यं हितमक्षणोः प्रयोजयेत्।
पंचरात्रेऽष्टरात्रेवा स्रावणार्थं रसांजनम् ॥
न हिनेत्रामयं तस्य विशेषात् श्लेष्मतोभयम् ॥

च० सू० अ० ६

सौवीरांजन नेत्रों के लिये बहुत हितकारक है। इसलिये दोनों नेत्रों में लगाना चाहिये ॥

पांचवी या आठवी रात्रि को नेत्रों से जल निकालनेके लिये रसौंत का लेप करना चाहिये। इसके अनुष्ठान से किसी प्रकार का नेत्र रोग नहीं होता। विशेषकर श्लेष्मा से तो भय ही नहीं होता ॥

पक्ष्मलं विशदेकान्त ममलो ज्ज्वल मंडलं।
नेत्रमंजन संयोगात् भवेच्चामलतारकम् ॥

सु० चि० अ० २४

अञ्जन से नेत्र असन्त उज्ज्वल और सुन्दर होते हैं।

इसी की पुष्टि में वागभट्ट ने अञ्जन का अनुष्ठान बतलाकर लिखा है कि "मनुष्य के नेत्र आग्नेय रूप होते हैं। उनमें विशेष कर कफ का भय रहता है। इसलिये नेत्रों से जल निकालने को सातवें दिन रात्रि रसांजन अर्थात् दारू तथा हल्दी के क्वाथ से उत्पन्न हुए रसको नेत्रों में लगाना चाहिये ॥

यह सब प्रथमान्ह में करना चाहिये। यथा—

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दंतधावनमंजनं।
पूर्वान्ह एवकुर्वीत् देवतानां च पूजनम् ॥

मनु० अ० ४

❋ वस्त्रों का साफ रखना ❋

कदाचिन्नजनैः सद्‌भिर्धार्यमलिनमंबरं ।
तच्चु कण्डुक्रुमिकरं ग्लान्यलक्ष्मी करम् ॥

भा० खं १ पृ० ८० ॥

श्रेष्ठ पुरुषों को कभी मलीन वस्त्र नहीं धारण करने चाहिये क्योंकि मलीन वस्त्र खाज–तथा जूं पैदा करते हैं । ग्लानिकारक और दरिद्री करने वाले होते हैं ॥

—०—

आहार ।

इसके उपरान्त शारीरिक उन्नति तथा आयु रक्षा का सब से उत्तम प्रयोग आहार है अर्थात् नियत समय पर योग्याहार का खाना ।

योग्याहार तृप्ति कारक, बल प्रदाता, आयु–तेज–उत्साह–स्मृति तथा आंत को बढ़ाता है । क्योंकि (आहारमूलाश्च प्राणिनः) अन्न प्राणियों का प्राण–और शरीर का आधार है ॥

समस्त वैद्यों का सिद्धान्त है किः—

त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नोब्रह्मचर्य मिति ॥
एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरु पस्तब्धमुपस्तम्भैः ।
शरीरं बल वर्णोपचयोपचितमनुवर्त्तते ॥

च० सू० अ० ११

आहार शयन ब्रह्मचर्यैं र्युक्त्या प्रयोजितैः।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः॥

अर्थात् जैसे आगार (गृह) की स्थिरता के लिये स्तम्भ होते हैं, इसी प्रकार शरीर की रक्षार्थ आहार, शयन, और ब्रह्मचर्य तीन स्तम्भ हैं। इन्हीं के युक्त अनुष्ठान से स्तब्ध शरीर पूर्ण आयु तक ठैहर सक्ता है। इन में भी प्रथम स्थान आहार को दिया गया है क्योंकि आहार से ही रस रुधिर आदिकों की उत्पत्ति है॥ सुश्रुताचार्य का सिद्धान्त है कि:—

विरुद्ध रसवीर्यादीन् भुंजानोऽनात्मवान् नरः।
व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यंमरणंचाधि गच्छति॥

सु० सू० अ० २६॥

जिन—रस वीर्यादिकों में विरोध, हो उनके खान पान से मनुष्य नाना रोग—इन्द्रियों की दुर्बलता, तथा मृत्यु को प्राप्त करता है॥

ऐसे ही चर्काचार्य ने भी—

विरुद्ध वीर्याशन निन्दित व्याधिकारणम्।

विरुद्ध वीर्य वाले पदार्थों का अनुष्ठान निन्दित व्याधियों का कारण बतलाया है॥

अतः—यस्त्वाहारं शरीरस्य धातु साम्यकरंनरः।
सेवते विविधाश्चान्या चेष्टाः ससुखमश्नुते॥

च० नि०

जो मनुष्य रस रुधिरादि की साम्यता रखने वाले, आहार तथा अन्य शारीरिक चेष्टाओं को करता है वह सुखको भोगता है अन्यथा दुःख॥ क्योंकि—

विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।
दुःख संज्ञिकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥

च० सू० अ० ९

धातुओं की विषमता का नाम रोग और साम्यता का नाम प्रकृति अथवा अरोग्यता (सुख) है । और जो पदार्थ शरीर में विकार न करने वाला स्वाभाविक नियत है वह सात्म्य कहलाता है ॥

तत्रैकान्तहितानि जाति सात्म्यात् सलिल घृत दुग्धौदन प्रभृतीनि एकान्ताहितानि दहन पचन मारणादिषु प्रवृत्तान्यग्नि क्षारविषादीनि ॥

सु० सू० अ० २० ।

हितकारी जैसे जल, घी, दूध और गेहुं आदि मनुष्य के लिये सात्म्य हैं । और जलाने पचाने मारणे में प्रवृत्त अग्नि क्षार विष आदि अहित हैं । पुंस्त्व के नाशकों में क्षार अधिक नाशक है ॥

इस आहार विधि का अर्थात् सात्म्य असात्म्य का पूर्ण ज्ञान स्त्री जाति को होना आवश्यक है । क्योंकि हमारी प्रथा में अन्न की अध्यक्ष स्त्री जाति है । परन्तु इस समय प्रायः भारत की अशिक्षित स्त्रियें अपने हिता हित को न जानकर जब गर्भवती होती हैं, तो सड़ा हुआ अन्न और कोला मट्टी आदि के खाने से अनेक कुपथ्य करती हैं जिनका दुष्परिणाम सन्तान के जीवन पर होता है । इत्यादि दोषों से बचने के लिये ऋषियों ने दरशाया कि :—

कटुकनित्यादुर्बल मल्पशुक्रमनपत्यंवा ।
तिक्तनित्याशोषिणमबल मपाचितं वा ॥

च० शा० अ० ८ ।

नित्य चरपरा खाने वाली गर्भवती स्त्री बलहीन वीर्यहीन और आगे जिसकी सन्तान नहो ऐसी सन्तान पैदा करती है ॥

और नित्य कटु खाने वाली धातुशुष्क, निर्बल, और अति कृश पुत्र को उत्पन्न करती है ॥

अतः अन्न जल घी आदि सबकी परीक्षा करके स्वयं पाकविधि करे । और इस बात की परीक्षा करे कि क्या पथ्य है और क्या अपथ्य है इत्यादि । हित जैसे–

दुग्धं स्वादु रसं स्निग्ध मोजस्यं धातुवर्द्धनम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलम् ॥

भा० प्र० अ० ४

दूध रस से स्वादिष्ट, स्निग्ध, सामर्थ्य वाला, धातु उत्पादक वात पित्तहारक वीर्यवर्द्धक कफकारक, भारी और शीतल है ॥

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्य मग्निकृत् ।
स्वादुपाककरं शीतं वातपित्त कफापहम् ॥
मेध्यलावण्य कान्त्योजस्तेजो वृद्धिकरंपरं ।
अलक्ष्मी पाप रक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ५ ॥
बल्यं पवित्र मायुष्यं सुमंगल्यं रसायनं ।
सुगंधं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥

भा० प्र० खं० १

गोका घी नेत्रों को विशेषकर हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाक में मधुर शीतल, वात, पित्तनाशक, बुद्धि, लावण्य, कांति, ओज तथा तेज की बृद्धि करने वाला, आयुस्थापक, भारी, बलवर्द्धक, पवित्र, मंगलरूप रसायन, सुगन्धी वाला रुचि के उत्पन्न करने वाला, सुन्दर और सम्पूर्ण घृतों में उत्तम है ॥

अहितजैसे मलिन अन्न, जूठा, बासी, सड़ा हुआ अन्न को न खाना चाहिये । इत्यादि–इसलिये प्रत्येक भक्ष्य के गुण दोष की परीक्षाकर नियत समय पर खाना चाहिये ॥ क्योंकि—

अप्राप्तकाले भुंजानो ह्यसमर्थतनुर्नरः ।
तांस्तान् व्याधीन वाप्नोति मरणंचाधिगच्छति ॥१५१
कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले ।
कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनःस्पृहा१५२

भा० प्र० प्र० ४

जो नियत समय से प्रथम ही भोजन करलेता है, उसका शरीर असमर्थ होजाता है । इससे सिर दरद विसूचिका आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं, जिनके बढ़जाने से मृत्यु भी होजाती है॥१५१

और जो समय से बहुत पीछे खाता है, उसका अग्नि वायु से नष्ट होजाता है । भोजन किया हुआ कठिनता से पचता है । और पुनः खाने की इच्छा नहीं होती ॥

—०—

* भोजन का समय *

——:०:——

विद्वानों ने मुख्यतया भोजन के दो समय नियत किये हैं। प्रातःकाल और सायंकाल ॥ यथा—

सायंप्रातमनुष्याणामशनंश्रुतिबोधितं । नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमोविधिः ॥ ११५ ॥ याम-मध्येनभोक्तव्यं द्वितीयंनविलंघयेत् । याममध्येरसो-त्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ ११६ ॥ भा० अ० प्र० खं १

प्रातःकाल और सायंकाल में भोजन करना शास्त्र की आज्ञा है । इनके मध्य में भोजन न करे क्योंकि यह विधि अग्निहोत्र के तुल्य है ॥ ११५ ॥ प्रातःकाल प्रथम प्रहर में न करे, और दूसरे प्रहर में भूखा न रहे । प्रथम प्रहर में खाने से रसाजीर्ण की उत्पत्ति होती है । और दूसरे में न खाने से बल का क्षय होता है । अतएव मनु० अ० २ में (व्यायाममाप्लुत्य मध्यान्हेभोक्तुमन्तः पुरं विशेदिति)

और शाम को प्रथम प्रहर में । यथा (रात्रौतुभोजनंकुर्यात् प्रथम प्रहरान्तरे) ॥ इति ॥ यद्यपि भोजन की एकता के लिये यही दो समय नियत हैं । परन्तु इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि मध्य में भूख लगने पर भी न खावे ॥

क्षुत्संभवति पक्वेषुरसदोषमलेषुच ।
कालेवा यदिवाकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥

भा० प्र० अ० ४ खं० १ ॥

रस दोष और मलके पक जाने से भूख लगती है । इसलिये जब भूख लगे वही खाने का समय है अर्थात् उसी समय खा लेना चाहिये । क्योंकि जो भूख लगने पर नहीं खाते उनकी जठराग्नि मंद होजाती है ॥

अतः—नियत समय पर युक्ति पूर्वक अच्छी तरह से पकाये हुए दोष रहित अन्न को सुन्दर एकान्त स्थान में बैठ कर खाना चाहिये देखो सु० सू० अ० ४६ ॥

—o—

* भोजन करने का क्रम *

अश्नीयात तन्मनाभूत्वा पूर्वंतुमधुरं रसं।
मध्येऽम्ललवणौपश्चात् कटुतिक्तकषायवान्॥

भा० प्र० अ० ४ ॥

प्रसन्न वदन और दत्त चित्त होकर प्रथम मधुर रस खावे मध्य में खट्टा क्षारा और पीछे कटु क्योंकि प्रथम मधुर रस खाने से वायु और पित्त की शान्ति होती है मध्य में खट्टा पित्ताशय में अग्नि की वृद्धि होती है। अंत में कटु कसैला खाने से कफ की शान्ति होती है ॥

अंत में लवण युक्त पानी से कुल्ला करना चाहिये इससे दान्त का रोग नहीं होता ॥

भुक्त्वाराजवदासीत यावन्नक्लमोगतः।
ततः पदशतंगत्वावामपार्श्वेतु संविशेत् ॥ ४१ ॥
शब्दरूप रसान् गंधान् स्पर्शांश्च मनसः प्रियान्।
भुक्त्वान्नंतु सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ ४२ ॥

सु०सू० अ० ४६ ॥

भोजन करके राजा के तुल्य बैठे कुछ देर बैठे अनंतर सौ कदम चलकर वाम पार्श्व में सोवे। और मन भावते रूप रस गंधादि का सेवन करे इस प्रकार अन्न अच्छी तरह पचता है ॥

न चैक रस सेवायां प्रसज्येत कदाचन ।

सु० सू० अ० ४६ ॥

सदैव एक ही रस का सेवन न करे । अर्थात् बदल २ कर खाना चाहिये ॥

प्राग्भुक्ते त्वविविक्तेऽग्नौ द्विरन्नं न समाचरेत् ॥
पूर्वभुक्तेऽविदग्धे भुंजानोहंति पावनम् ॥

सु० सू० अ० ६४

प्रथम भोजन किये अन्न के न पचने पर अन्न नहीं खाना चाहिये, इससे जठराग्नि नष्ट होजाता है ॥

जठरं पूरयेदर्द्धमन्नैर्भागंजलेनत्र ।
वायोः संचारणार्थन्तु चतुर्थ मवशेषयेत् ॥

आधा पेट अन्न से भरे । चौथा भाग जल से और चौथा भाग वायु के संचारार्थ छोड़े ॥

अनन्तर नियत समय पर सोना चाहिये ॥

प्रथम निद्रा का स्वरूप क्या है ।

जब मन (थक) जाता है तब कर्मेन्द्रिय भी परिश्रम से विषयों से बिरक्त होजाते हैं उस समय निद्रा आजाती है॥च.सू.अ.२१

सुख, दुःख, स्थूलता, कृशता, बल, दुर्बलता, पुंस्त्व, क्लीवत्व, ज्ञान,अज्ञान,जीवन, मरण यह सब निद्रा के आधीनं हैं॥च०सू०अ०२१

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रानिषेविता ।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालोपेवागतानरम् ॥

च० सू० अ० २१

कुसमय सोने से, अधिक सोने से, और सर्वथा न सोने से मनुष्य के सुख और आयु, काल रात्रि के उषाकाल की न्याईं नष्ट होजाते हैं ॥

सैव युक्ता पुनर्युक्ते निद्रा देहं सुखा युषा ।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्याबुद्धिरिवागता ॥

च० सू० अ० २१

उसी निद्रा के योग्य रीति से सेवन करने से, सुख और दीर्घायु प्राप्त होते हैं । जैसे योगिकी सिद्धि से सद्बुद्धि ॥

पुष्टि वर्णबलोत्साहमग्निदीप्तिमतंद्रितां ।
करोतिसाधुसाम्यंच निद्रा कालेनिषेविता ॥

सु० चि० अ० २४ ॥

नियत समय पर सोने से पुष्टि, रूप, बल, उत्साह, और जठराग्नि की वृद्धि होती है। आलस्य दूर होता है। सोना सब दोषों को स्वच्छ और समान करता है ॥

देह वृत्तौ यथाहारस्तथा स्वपनः समासतः ।
स्वपनाहार समुत्थेच स्थौल्यकार्श्यें विशेषतः ॥

च० सू० अ० २१ ॥

शरीर रक्षा के लिये जैसे आहार उपयोगी है, वैसे ही निद्रा भी। स्थूल और कृशता में आहार और निद्रा ;यह दोनों ही विशेषकर उपयोगी हैं ॥

विवेचन करने से प्रतीत होता है कि ६ से आठ घण्टा तक सोना उचित है ॥ अतएव—

(सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः) वसिष्ठ० सू० १८

वह पापी और दरिद्री है, जो सूर्योदय पर्यन्त सोता रहता है। अथवा सूर्य होते ही सोजाता है ॥

बिना विशेष कारणों के दिन में सोने का निषेध है ॥

यथा। प्रबोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु रेवदुच्छ मघवद्भ्योमघोनि। रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ ऋ० मं० १ अ० १८ सू० १२४

हे ऐश्वर्य युक्त स्त्री तू प्रातःकाल में सोने वालों को जगा। और इस अनुष्ठान मे उन्हें उत्तम धन युक्त करा। भावार्थ यह है कि प्रत्येक को प्रभात में ही उठकर पुरुषार्थ से धर्म धनादि का अनुष्ठान करना चाहिये ॥

इसमें सम्पूर्ण वैद्य सहमत हैं कि बिना विशेष कारण के दिन में सोना हानीकारक है, देखो० च० सू० अ० १२१।

" दिन में सोने से हलीमक, शूल, स्तिमिता आदि दोष उत्पन्न होते हैं ॥ संक्षेप से—

कुचेलिनं दन्तमलावधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुर वाक्य भाषिणं। सूर्योदयेह्यस्तमयेच शायिनं, विमुञ्चतिश्री रपिचक्रपाणिनम् ॥

(इति शुभम)

रामचन्द्र दत्तः।

विज्ञापन

उन्नति के शेष चार भाग

अर्थात्

२ विद्योन्नति ३ आर्थिकोन्नति ४ धार्मिकोन्नति और ५ सामाजिकोन्नति, दिये गए हैं छापने के लिये जिनका विवर्ण शास्त्रों के आधार पर भलिभांति किया गया है जैसे:—

विद्योन्नति में

१ शिक्षा की आवश्यक्ता २ शिक्षा में माता पिता का कर्तव्य।

३ बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा।

४ प्राचीन समय में शिक्षा का प्रबन्ध।

५ वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली।

६ विनामूल के शिक्षा।

७ शिक्षा कैसी हो और किन के हाथ में हो इत्यादि।

रामचन्द्र

मिलने का पता—पुस्तकाध्यक्ष

आर्य समाज

अनारकली लाहौर।

वैदिक धर्म प्रचार के साधन

अर्थात्

श्री ला० हंसराज जी प्रिंसीपल
डी. ए. वी. कालिज, लाहौर के

चार लैक्चर

जिसको

पुस्तकाध्यक्ष आर्य्य समाज अनारकली लाहौर ने प्रकाशित किया ।

बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर में ला० दुनीचन्द मैनेजर के अधिकार से छपा ॥

संवत १९६९ दयानन्दाब्द २९

मूल्य =)   २००० प्रति

॥ ओ३म् ॥

निवेदन

प्रिय पाठकगण ! यह लैक्चर पहिले पहिल ला० खुशहालचंदजी खुरसन्दने आर्य्य गज़ट में छापे थे । फिर श्री पं० संतरामजी संपादक आर्य्यप्रभा की प्रेरणा से मैंने इनको हिन्दी में अनुवाद करके आर्य्य प्रभा में प्रकाशित किया था । इसके कुछ समय बाद बक्षी रामरत्नजी बी.ए. बी. टी. हैडमास्टर डी. ए. वी. हाई स्कूल लाहौर की प्रेरणा से डी. ए. वी. स्कूल की यंगमैन समाजने इन लैक्चरों को उर्दू अक्षरों में पुस्तकाकार छापा । तब से मेरी यह तीव्र इच्छा थी कि हिन्दी भाषा में इनको पुस्तकाकार छापा जावे । कई बार श्री पुस्तकाध्यक्षजी आर्य्य समाज अनारकली से प्रार्थना कीगई और अन्त में वह प्रार्थना स्वीकृत हुई और अब यह लैक्चर हिन्दी भाषा में पाठकों के अर्पण किये जाते हैं । मैं समझता हूं कि इसमें हिन्दी व्याकरण की भूलें होंगी । परन्तु इस कहावत के अनुसार "कि गिर२ कर सवार होते हैं" मैंने उचित समझा कि आपके सन्मुख यह अवश्य रक्खे जावें । पाठकगण यह स्मरण रखेंगे कि यह लैक्चर हैं, निबन्ध या लेख नहीं जिनको पुस्तकाकार किया गया है । लैकचरार (व्याख्यान दाता) निबन्ध या लेख वाली शैली को अथवा लालित्व को स्थिर नहीं रख सकता, उसने जो कह दिया सो कह दिया, ग्रन्थकर्ता की तरह उसे अपने कथन को बदलने या न्यूनाधिक करने के लिये कोई समय नहीं होता, फिर भी आशा है कि यह अधिक लाभदायक तथा रुचिकर होंगे ॥

आपका शुभचिन्तक,

टोडरसिंह वर्म्मा

कार्क आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर ॥

धर्म प्रचार के साधन

ला० हंसराज जी का पहिला लैक्चर

(बुद्ध धर्म कैसे फैला)

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में मन्तव्य अमन्तव्य का विषय लिखा है उसको लिखकर आप अपनी इच्छा प्रगट करते हैं कि परमात्मा करे यह सत्य धर्म जिसे वैदिक धर्म कहते हैं ब्रह्माण्ड के कोने २ में फैले। और सारे लोग इसको ग्रहण करें ताकि वह सच्चे आनन्द की उपलब्धी कर सकें। यह वाक्य सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में लिखा हुआ है। आर्य धर्म उन धर्मों में नहीं होसकता कि जिन के मैम्बर यह समझ लें कि सन्ध्या करने के बाद हमारे कर्तव्य समाप्त होजाते हैं, अथवा हवन करने और ऐसा ही अपना कोई और उन्नति का काम करने के बाद इनकी ज़िम्मावारी समाप्त होजाती है। आर्य समाज के प्रवर्तक ने हरएक मैम्बर पर यह :—

कर्तव्य

लगा दिया है कि उसे केवल अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये। जहां तक वह वैदिक धर्म को अपने लेख द्वारा या मुख द्वारा पहुंचा सकता है दूसरों तक पहुंचावे, इसलिये यह धर्म ऐसा नहीं, जिसे हम सीने में दबा कर चले जावें॥

प्रत्युत इसके हमें यह आज्ञा दी गई है कि हम इसको प्रकट करें और जो इसको नहीं जानते उनको वतलाया जावे। हमारा

परम कर्तव्य यह बतलाया गया है कि जिस प्रकाश से हमको प्रकाश मिला है उससे दूसरों को ज्योति मय बनावें। परन्तु ज्योति फैलाने की कौन सी विधियें हैं। इसके लिये आवश्यक है कि हम :—

जगत का इतिहास

पढ़ें जगत का इतिहास, जगत का पुराना अनुभव है उस में धार्मिक इतिहास है उस पर हम को दृष्टी डालनी चाहिये। जिन कठिनाइयों और आपदाओं ने दूसरों के रास्ते में बाधा डाली और जो रुकावटें उनके धर्म प्रचार में बाधा डालती रहीं, उनको हमें देखना है उनके दूर करने के उपाय और आगे बढ़ने के तरीके मालूम करने हैं। किस तरह हम इन्हीं कष्टों को दूर करके अपना रास्ता निकाल सकते हैं और कैसे उसी रास्ते पर चलते हुए सफलता के स्थान पर पहुंच सकते हैं इसको दो और व्याख्यानों में समाप्त करूंगा। आज सब से पहिले :—

बुद्ध मत

का वर्णन करूंगा। यह सब से प्रथम मत है जिसने वैदिक धर्म के अनन्तर उन्नति प्राप्त की, जो न केवल भारतवर्ष में प्रत्युत इससे भी बाहिर और बहुत से देशों में फैला। यह मानी हुई बात है और बहुत से चिन्ह मिलते हैं जिनसे प्रगट होता है कि वैदिक धर्म ने सारे संसार पर अपना अधिकार जमाया हुआ था। मुझे इसके विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह प्रसिद्ध है और इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि वैदिक धर्म भारतवर्ष में बड़ा ही प्रबल रहा। परन्तु जैसाकि हरएक धर्म के साथ होता

है एक ऐसा समय आया कि इसके अनुयायियों ने इसके नियमों को भ्रम मूलक कर दिया। समय में बहुधा परिवर्तन हो ही जाता है। वास्तव में वैदिक धर्म में कोई भूल न थी। परन्तु इसके मानने वालों के आचार और व्यवहार में भूलें उत्पन्न हो गईं। फिर यह आवश्यक था कि कोई इन भूलों को शोधने वाला उत्पन्न हो। यदि आप शास्त्रों को देखें तो एक बात जो सब से प्रबल आपको प्रतीत होगी वह यह है कि ऋषियों ने इन में :—

यज्ञ की महिमा

को बड़े विस्तार से लिखा है मेरे विचार में उन्हों ने वेद मन्त्रों को लेकर उनके सूक्ष्म अर्थों को विचार करने के अनन्तर देखा कि इनमें कौनसी विद्या है फिर जो इनकी दृष्टि गोचर हुआ उसको यज्ञों में रख कर लोगों का जीवन पवित्र बनाने के लिये इनको दे दिया। आजकल सभ्य संसार में :—

एक प्रबल प्रश्न

उत्पन्न हो रहा है और वह इसका उत्तर ढूंढ़ने में असमर्थ है। संसार में जितने बड़े लोग हैं वह विचार कर रहे हैं कि ज्यों २ सभ्यता बढ़ती जाती है लोग दुर्बल होते जाते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि जितने साधन एक असभ्य या जङ्गली आदमी को नष्ट करने के लिये एक सभ्य आदमी के हाथ में हैं और किसी के पास नहीं। यदि थोड़े समय के लिये इन हथियारों और साधनों को छोड़ दें तो इसका यह फल होगा कि वह इनके बिना कुछ नहीं कर सकता। अब वह एक असभ्य से अधिक दुर्बल होजाता है और उससे अधिक अनर्थक (निकम्मा) प्रतीत

होता है। यह स्मरण रहना चाहिये कि जिन लोगों के घरों में अमीरी आजाती है, ऐश्वर्य बढ़ जाता है वह स्वयं ही आ लसी होजाते हैं। आप ज़रा दो आदमियों की परीक्षा करें कि एक के पास नौकर नहीं वह स्वयं नहाता.रोटी पकाता, वर्तन साफ़ करता और दूसरे काम भी करता है इसलिये वह बलवान् है। परन्तु दूसरे के पास नौकर है, वह रोटी पकवाने, नहाने, कपड़े पहिनने और बूट पहिनने के कामों में भी उसके आधीन है। उसके घर की स्त्रियें नौकर के बिना पानी नहीं पी सकतीं। ऐसे लोगों का नाम शीघ्र ही संसार से अदृश्य होजाता है। इस से प्रतीत होता है कि सभ्य आदमी अधिक निर्बल होता चला जा रहा है। ऐश्वर्य का सीमा से अधिक होजाना आलस के लाने का कारण है। और आलस का आना ऐश्वर्य्य के नष्ट होने और उसके विनाश होजाने का कारण है। विचार शील :—

अमरीका के प्रधान

के हृदय में भी यही प्रश्न उठा है और एक अधिवेशन में उस ने इसे प्रगट किया है कि इस सभ्य संसार को इस बात का ख्याल करना चाहिये कि वह दिनों दिन निर्बल होता जाता है। इस भय से बचने के लिये कोई उपाय सोचना चाहिये॥

जो प्रश्न एक मनुष्य के लिये उत्पन्न होता है वही एक घराने के विषय में, जाति के विषय में और देश के विषय में उत्पन्न होता है। कसस हिन्द (एक उर्दू पुस्तक) में इसके विषय में अति उत्तम शब्दों में :—

दो दृष्टान्त

आते हैं। जिस समय नादरशाह भारत वर्ष में आया और

करनाल पहुंचा, तो दिल्ली का सम्राट (बादशाह) मुहम्मदशाह भी वहां आया। ग्रीष्म ऋतु का समय था. दोनों एक कमरे में बैठे थे, पंखा होरहा था. उस समय मुहम्मदशाह ने तो इकतारी मलमल का कुरता पहिना हुआ था और नादरशाह ने मोटी पोस्तीन पहनी हुई थी। परन्तु इससे नादरशाह को बिलकुल गर्मी न लगती थी और मुहम्मद शाह गर्मी के कारण अचेत हो रहा था, ऐसे समय में मुहम्मदशाह ने पूछा, कि यह क्या बात है कि मैंने मलमल का कुरता पहना हुआ है और गर्मी के मारे अचेत हुआ जाता हूं और आप पोस्तीन पहने हुए भी गर्मी का नाम ही नहीं लेते। नादरशाह बोला—निःसन्देह यही बात है और यही पोस्तीन है जो मुझे तहरान से लाई है और जिस ने मुझे आज करनाल दिखाया है॥

और तुम्हें इस मलमल ने देहली से भी आगे न बढ़ने दिया। (नादरशाह ने क्या ही ठीक कहा है) इसके अनन्तर मुहम्मद-शाह की इकतारी मलमल वाली सन्तान शीघ्र नष्ट होगई परन्तु नादरशाह पोस्तीन वाले की सन्तान अधिक प्रबल और बलवान होती गई॥

जिस समय ऐश्वर्य्य बढ़ जाता है तो थोड़े समय के अनन्तर वह घटने लगता है और जब तक वह साधन न बर्तें जावें जिससे उसका घटना बन्द हो तब तक ऐश्वर्य्य स्थिर नहीं रह सकता। ऋषियों ने सचाइयों को अनुभव कर लिया था॥

सहस्रों वर्ष पहिले

उन्हों ने बड़ी सुन्दरता से उस समय में इस प्रश्न का उत्तर

भी ढूंढ़ लिया था, ऋषियों ने इस प्रश्न को आर्यों के जीवन में डाला, और जीवन को ऐसे साधनों से पुरो दिया जिनसे ऐश्वर्य्य कम न हो। उन्हों ने द्विजों के लिये यज्ञोपवीत संस्कार आवश्यक समझा। हर एक द्विज के लिये उन्हों ने यह नियम. बांधा और वेदों से इस नियम को उद्धृत करके उन्हों ने जीवन में घटाया। और यज्ञोपवीत देते समय जो उपदेश दिया जाता है उस में बतलाया गया है कि विद्यार्थी सादा जीवन व्यतीत करे। विद्या प्राप्त करे, आज्ञाकारी होना सीखे, (मैं विद्या और आज्ञापालन के विषय में कुछ नहीं कहता) जीवन के तरीके देखे, जिस समय यह संस्कार होता है लड़के को आज्ञा दी जाती है, तुम गाड़ी, घोड़े पर न चढ़ना, जूता न पहिनना, बैठने के लिये मृग छाला पहिनने के लिये मामूली धोती और लङ्गोटी। हाथ में दण्डा, विस्तरा कड़ा रखना इनमें एक २ वस्तु ही लाभकारी है और यदि इन सब का मेल होजाये तो मनुष्य को कुछ का कुछ बना सकती हैं। विद्यार्थी का काम होता था कि वह गुरु को स्नान कराये, लकड़ियां हवन के लिये एकत्र करे। इन लड़कों में से चाहे कोई लड़का ऐश्वर्य्य वाले का होता या राजा महाराजा का होता अथवा निर्धन से निर्धन और कङ्गाल का होता सब को उपरोक्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था यह वह कार्य्य था जो ऐश्वर्य्य को घटने न देता था, जिस आराम और सुख में इन्हों ने आगे जाकर पड़ना था उसमें इस प्रकार के जीवन वाले मनुष्य गिर नहीं सकते थे। ऐश्वर्य्य के कुव्यवहार से जो बुराइयां उत्पन्न होती हैं उनके लिये ऋषियों ने इन संस्कारों को बांधा था और हमारे ऋषियों ने इस प्रश्न का सहस्रों वर्ष पहिले उत्तर पा लिया था, जिसका उत्तर आज यूरोप ढूंढ़ रहा है॥

यज्ञों में कई इस प्रकार के यज्ञ हैं कि उनके सूक्ष्मतत्त्व हम समझ नहीं सकते। परन्तु हमारे लिये अत्यन्त लाभकारी हैं। एक पुत्रेष्ठि संस्कार है अर्थात् जिसको पुत्रकी इच्छा हो वह यह संस्कार करे। इसमें बड़ी भारी साइन्टीफिक (विज्ञानसम्बन्धी) बातें भरी हुई हैं इसी प्रकार वृष्टि यज्ञ है जब कभी ऋषियों को वृष्टि की अवश्यकता होती थी तो वह इस यज्ञ को करते थे। आज लोग इसको मानने पर तैयार नहीं, परन्तु कल यदि यूरोप ने कोई ऐसी प्रणाली (तरीक़ा) निकाल दी तो यह झट मान जावेंगे। और यह हृदय की संकीर्णता का ही कारण है॥ ऋषियों ने वेदों को पढ़कर उनसे विद्या निकाल कर उसे यज्ञों के रूप में रख दिया। यज्ञ क्या थे? एक प्रकार की विद्या थी। इस प्रकार जब यज्ञ हम में विद्यमान थे हमारा जीवन उनसे होता था। परन्तु बात चाहे कैसी ही अच्छी क्यों न हो, समय आता है जब कि वह अच्छी बातें भी बुरी प्रतीत होने लगती हैं। इसके साथ एक और बात भी देखने योग्य है आप आर्यों के दर्शन शास्त्रों और उपनिषदों को देखें उसमें ब्रह्म विद्या का किस उत्तमता से वर्णन कियागया हैं। यह विद्या ऐसी है कि अभी तक दूसरे यहां तक नहीं पहुंचे। इसको पढ़कर वह चकित होते हैं कि किस प्रकार ऐसे कठिन प्रश्नों का उत्तर ढूंढा गया है। यह धर्म के दोनों अंग हैं। पहिला यज्ञ विद्या और दूसरा ब्रह्म विद्या। परन्तु समय ही तो है! जिसने उनके साथ बुरा वर्त्ताव किया। उनमें परिवर्तन होगया। लोगों की समझ पर पत्थर पड़ गये। वह उस यज्ञ को सम्पूर्ण ही नहीं समझते थे जिस में :—

सहस्रों पशु काटकर

न डाले जावें, और यज्ञ सम्पूर्ण नहीं जाने जाते थे जब तक उनमें भांति २ की मदरायें (शरावें) न पीयी जावें। और यजमान की स्त्री के साथ मख़ौल न किया जावे। जब लोगों के अन्दर इस दुराचार ने स्थान पाया, यज्ञों में मांस, शराब और हंसी ठट्ठा आरम्भ होगया, जब यह परिपाटी (सिलसिला) बन्धी तो गिरावट होने लगी। और कई वर्षों तक यही अवस्था रही। छोटी २ बातों में झगड़ा और वितण्डा होता था और कात्यायन सूत्र में एक झगड़ा आता है कि हवन कुण्ड के आस पास जो गोबर का लेप दिया जाता है और उस से जो गोबर शेष बच रहता है उसका क्या करना चाहिये। उस पर बहुत काल तक वादविवाद होते रहे। वस्तुतः जो यज्ञ विद्या के साधन थे वह रसूमात बनगये, जो जीवन उनमें था वह दूर होगया। और बुराई ने डेरा जमा लिया। उस समय यह आवश्यक था कि कोई उस को ठीक करता और उस समय सब से पहिला धर्म जो वैदिक धर्म के मुकाबले में खड़ा हुआ वहः—

बुद्ध धर्म

था, परन्तु वह वास्तविक वैदिक धर्म के व्याघात (मुकाबले) में खड़ा नहीं हुआ, प्रत्युत बिगड़े हुए वैदिक धर्म के व्याघात पर आया॥

बुद्ध के विषय में आपने सुना होगा कि उसे किस प्रकार वैराग हुआ॥

शहर के फाटकों की घटनायें कैसी हृदय विदारक हैं। जब

वह एक फाटक से निकला तो आगे से एक बीमार आ रहा था बुद्ध ने रथवान से पूछा कि इसे क्या है ? रथवान ने कहा महाराज इसे ज्वर है और उस से दुःखित हो रहा है। फिर बुद्ध ने पूछा क्या बीमारी हरएक को घेरती है। रथवान ने कहा—हां कभी २ ॥

बुद्ध—क्या इस से मैं भी नहीं बच सकता । रथवान—कदाचित नहीं ।

दूसरे दिन दूसरे फाटक से बाहिर जाते हुए एक शव (मुरदे) को देखा और फिर रथवान से पूछा यह क्या है ?

रथवान ने कहा महाराज ! इस की मृत्यु होगई है।

बुद्ध—क्या हर एक को मृत्यु घेरता है। रथवान—निःसन्देह।

बुद्ध—तो क्या मैं भी इस के जाल में फंसूंगा, रथवान—अवश्य ही ।

बुद्ध ने एक ठण्डी सांस ली और चले आये। फिर एक दिन फाटक पर एक बृद्ध मनुष्य को देखा, उसके अङ्ग अङ्ग में दुर्बलता छागई थी, झुरियां चेहरे (मुंह) पर पड़ी थीं आखें बीच में धंसी हुई थीं। टांगें लड़खड़ाती थीं उसको देख बुद्ध ने फिर वही प्रश्न किये। इन घटनाओं को देखकर बुद्ध ने विचार किया कि मृत्यु से कैसे बच सकते हैं ? हम विषयों को कैसे छोड़ सकते हैं ? (हम विषयों में लम्पट हुए २ क्षण भंगर सुख भोग रहे होते हैं कि मृत्यु आती है और नष्ट बिनष्ट कर देती है. इसलिये यह आवश्यक है कि ऐसे जीवन को ही त्याग दिया जाये) बुद्ध महाराज की स्त्री के लड़का इन्हीं दिनों उत्पन्न हुआ था, वह अभी ग्यारह ही दिन का था कि बुद्ध ने घर बार छोड़ देने का विचार किया। और अन्तिम रात को जब वह चलने लगा तो

उसके मन में यह इच्छा हुई कि बच्चे को एक वार देख तो चलूं। वह आधी रात के समय प्रसव–गृह में आया वह कञ्चनियां जो इस के मन बहलाव के लिये रक्खी गई थीं वेसुध पड़ी थीं। बच्चा उसकी स्त्री की छाती पर सो रहा था चित्त में आया कि बच्चे को चूम लूँ,परन्तु फिर सोचा कि यदि स्त्री जाग उठेगी और मेरे इस समय इस प्रकार से आने का कारण पूछेगी, तो फिर मेरा जाना कठिन होजायगा,वह बच्चे को विना चूमे ही निकल गया। नदी पर जाकर सोने के आभूषण उतार कर नौकर को देदिये, बुद्ध वहां से बनारस आये, वहां विद्या ग्रहण की, फिर तपस्या की, परन्तु इस से चित्त शान्त न हुआ फिर एक बार कठिन तपस्या की, और इतनी की, कि जीवन की आस न रही, उस समय इनका आत्मा प्रकाशित हुआ और मन में यह भाव उत्पन्न हुआ, कि इस रीति से आत्मघात करने से और नष्ट हो जाने से कुछ नहीं बनता। केवल मात्र यही आवश्यक था कि इन्द्रियों के भोगों को तज कर ऊपर और ऊंचे चले जावें। और इस हवा से ऊपर चढ़ जावें ताकि वह इन सारे दृश्यों को देखें, परन्तु इन में लिप्त न हों॥

समुद्र में जहाज़ चल रहा है वह एक पहाड़ी से टकराता है लहरें उसको तोड़ती हैं सवार का हृदय विछिन्न होजाता है और वह कांपने लगता है, परन्तु समुद्र के किनारे की पहाड़ी पर बैठा हुआ मनुष्य घबराता नहीं, लहरें आकर टकराती हैं परन्तु निरास होकर पीछे लौट जाती हैं। इसी प्रकार जीवन ऐसा उच्च हो कि सांसारिक दुःख क्लेश और अन्य आपदायें हम को न सता सकें। और उनका प्रभाव तक न पड़े। इस प्रश्न को उसने हल (व्याख्या) किया, और—

प्रणाली (तरीका) मालूम की, और एक जैसे नियम बनाये, सत्यभाषण शुद्धाचरण और अन्य कई एक। इस प्रकार से उसने निरवाण होने का मार्ग बतलाया। बुद्ध मत के नियम कुछ नवीन नहीं थे, यह सब वैदिक धर्म में वर्तमान था, परन्तु उस समय यह दशा नहीं थी, वैदिक धर्म बिगड़ चुका था, इस लिये उसने इसकी विरोधता की, परन्तु उसने अमान्य यज्ञों की निन्दा करते हुए मान्य यज्ञों को भी न छोड़ा, और वह इस स्थान पर आकर भूल कर गया।

मलूक पुत्त नामी एक मनुष्य जो बुद्ध का शिष्य था, एक बार बुद्ध से पूछने लगा महाराज मुझे समझ नहीं आती कि मृत्यु के अनन्तर क्या होता है ? मुझे बतलाइये कि मृत्यु के बाद आत्मा रहता है अथवा नहीं।

बुद्ध—मलूक पुत्त ! मुझे यह मालूम नहीं।

मलूक पुत्त—महाराज यह बड़ा आवश्यक प्रश्न है।

बुद्ध—जब मैंने तुम्हें शिष्य बनाया था तो क्या मैंने यह प्रण किया था कि तुमको यह बतलाऊंगा ? मलूक पुत्र ने कहा नहीं।

बुद्ध—तो बस फिर क्या, केवल जीवन को पवित्र बनाओ, इन झगड़ों में न पड़ो। (इस प्रश्न का उत्तर वह न दे सके) इसी प्रकार वह एक बार कन्नौज गये, और वहां एक हवन करने वाले को उपदेश किया, जिसने अपने हवन के पात्र नदी में बहा दिये। (बुद्ध ने ऐसी बातों में भूल की, नहीं तो वह ठीक था) जब बुद्ध बनारस में पहुंचे तो एक बाटिका में ठहरे, वहां एक

अमीर बड़ा दुराचारी था, और उसे अमीरी सता रही थी, वह विषय भोग २ कर दुःखी होगया था, उसे सुख दिखाई न देता था। उसको बुद्ध ने कहा, मेरे पास आओ मैं तुम्हें शान्ति दूंगा। इसके उपदेश से अमीर के विचारों में परिवर्तन होगया। इसके अनन्तर बुद्ध ने विचारा कि अपने विचारों को फैलाने के लिये यह आवश्यक है कि आदमी तैयार किये जावें॥

इसलिये उसने साठ भिक्षु तैयार किये और उन्हें उपदेश दिया कि तुम दो भी एक दिशा में मिल कर कभी न जाओ। एक २ को भिन्न २ दिशा में भेज दिया, और उन्हें समझाया कि सचाई का उपदेश करें। अपनी रोटी मांग कर खायें और उपदेश करें। बुद्ध अपने लिये स्वयं मांगता था और उपदेश करता था, और उसके जीवन में सब से अधिक—

❀ हृदय विदारक घटना ❀

उस समय की है जब कि वह कपिल वस्तु में भीख मांगता है उसका पिता उसको बुरे २ शब्दों में सम्बोधन करता और कहता है, कि तूने हमारे वंश को कलंकित किया, परन्तु बुद्ध उत्तर देता है कि आपका वंश कदाचित् कलङ्कित होता हो, परन्तु हमारा वंश जो सुधारकों का वंश है, इस प्रकार से कलङ्कित नहीं होता, प्रत्युत इस में यही प्रथा चली आई है। इस भिक्षा मांगने ने उस नगर पर बड़ा प्रभाव डाला, सारे लोग उसके चरणों पर पड़ते थे। इस प्रकार सब से पहिला नियम जो उसने प्रचार के लिये नियत किया वह भिक्षुओं को तैयार करना और सरल जीवन विताना था। परन्तु बुद्ध का काम यहीं तक समाप्त नहीं होगया, उसके चित्त में आया कि यदि पुरुषों को

सचाई दी जाती है तो स्त्रियों को क्यों न दी जावे ॥

परन्तु वह मानुषी त्रुटियों को जानता था, बहुत घबराया, कई साल इस प्रश्न पर विचार करता रहा, निदान उसने निश्चय कर लिया, कि शरीर के आधे अङ्ग को शिथिल कर देना ठीक नहीं, और इस काम के लिये उसने अपनी स्त्री यशोधा को अपना शिष्य बनाया, और उसने स्त्रियों में प्रचार आरम्भ किया, इस प्रकार से स्त्रियें प्रचारक के काम में बढ़ीं।

दूसरा नियम (साधन)।

जो उसने प्रचार के लिये ग्रहण किया, वह भाषा थी, वह लोगों को उनकी भाषा में उपदेश देता था, यद्यपि उन दिनों संस्कृत बोली जाती थी, पर बहुत थोड़ी, इस लिये प्राकृत भाषा में प्रचार आरम्भ किया।

तीसरा साधन

जिसकी ओर उसकी दृष्टि गई वह यह था कि जिन लोगों को उन दिनों अछूत या पतित समझा जाता था, उन में धर्म प्रचार का काम था। स्वभाविक ही वह लोग इस की ओर आये और इसके सहायक बने, उसने माली लोगों को उपदेश दिया, उन लोगों में से एक—

सुनीत माली

हुआ है जो अन्तको उन लोगों का लीडर (नेता) या गवर्नर बन गया था।

उन दिनों भी यही रोग था कि निचली जातियों को धर्म उपदेश न किया जावे, परन्तु बुद्ध इस नाड़ी को पहचान गया

और बहुत से लोग इसकी ओर आगये और बुद्ध धर्म इसी लिये फैल गया।

एक और बात जो उसने आवश्यक समझी वह बात

आत्म–समर्पण

थी, उसने अपना जीवन अर्पण किया,उसकी स्त्री ने अपना जीवन दे दिया, उसके बेटे (कराहल) ने यही काम किया और भिक्षुओं ने भी जीवन दान किये। इस प्रकार राजाओं और सह-धर्मियों के आत्म समर्पण से यह धर्म फैलगया।

यही विशेष साधन थे जिन्होंने बुद्ध धर्म को सूर्य्य की न्याईं चमका दिया। बुद्ध ने सब से पहिले पुरुषों को उपदेशक बनाया फिर स्त्रियें उपदेशकायें उत्पन्न कीं। इस के अतिरिक्त अपना आत्म समर्पण, उसके अनुयाईयों का आत्म-समर्पण, पतित जातियों में प्रचार और उन से मेल मिलाप। इन सब बातों का फल यह हुआ कि करोड़ों ही आदमी इस धर्म के अनुयाई होगये ? इस के साथ ही उन्होंने विद्या के काम को हाथ में लिया।

और एक यूनीवर्सिटी (विश्व विद्यालय) उनकी रावलपिण्डी के पास तक्षला में थी दूसरी नालन्द में थी।

यह साधन हैं जिन की ओर हमें ध्यान देना चाहिये।

(दूसरा—लैक्चर)

(ईसाई धर्म किस तरह फैला) ?

पहिला विचार जो मैं आपके आगे रखना चाहता हूं वह यह है कि हज़रत मसीह का जन्म उस जाति में हुआ जो कई दशाओं में और कई विचारों में हिन्दु जाति के साथ मिलती जुलती है। यह यहूदी जाति है, इतिहास से प्रतीत होता है कि वह एक बहुत प्राचीन जाति हैं, जिस प्रकार हिन्दु जाति प्राचीन है इसी भांति यहूदी भी एक प्राचीन जाति के हैं और इस जाति में

पैग़म्बरी का ख्याल

बड़ा प्रबल है इनकी दशा भी कुछ ऐसी थी कि इनको ईश्वर की ओर से पैग़म्बर आने का ख्याल प्रत्येक समय बना रहता था। इन में कई पैगम्बर हुए हैं मूसा इन को मिसर के दासत्व से निकाल कर (किनान में) ले आया,और इनको स्वाधीनता दिलवाई, इसी प्रकार इब्राहीम पैग़म्बर हुआ, और कई एक और हुए, जिन्होंने इन में प्रचार किया, और जिनके उपदेश अंजील में लिखे हुए हैं।

इस जाति में एक विशेष रीति खतने की प्रचलित थी खतने की रीति यहूदियों से निकली है और जैसाकि अब हमारा विचार है कि जिस मनुष्य के यज्ञोपवीत नहीं वह शूद्र होता है इसी प्रकार उस समय यहूदी ऐसे मनुष्य से (जिसका खतना न हुआ हो) खान पान बुरा समझते थे। यहूदी अपने आप को ईश्वर का स्नेही ख्याल करते थे, और समझते थे, कि

परमात्मा हम को प्यार करता है, और हम भी उसके प्यारे हैं, शेष लोगों पर उस की कृपा दृष्टि नहीं पड़ सक्ती।

जिसप्रकार हिन्दु लोग दूसरी जाति के लोगों के साथ खान पान अच्छा नहीं समझते इसी प्रकार यहूदी करते थे, वह अपने आप को सब से श्रेष्ठ और उच्च समझते थे। ईसामसीह के आने से पहिले यह लोग बाह्य आडम्बरों में बहुत ही बढ़ गये थे॥

और इनका विचार था कि रविवार को परमात्मा ने आराम किया और अञ्जील में भी ऐसा ही लिखा है। यहूदी शनिवार को आराम का दिन समझते थे उस दिन की पवित्रता के विचार ने इतना बल पाया कि इनमें एक फ्रेसीस नामी जाति उत्पन्न होगई, जो उस दिन बिलकुल ही काम न करती थी और ये लोग जब सुबह के समय जागते तो जिस कर्वट सोये हुए उठते उसी कर्वट दिन भर सोये रहते, और तनिक भी न हिलते थे। वे सोचते थे कि आराम के दिन काम नहीं करना चाहिये और काम करने से आदमी हिलता जुलता है, इसलिये हिलना जुलना भी काम में गिनना चाहिये, यदि हम ज़रा भी हिले तो काम हो जायगा, और हम ईश्वर की इच्छा को तोड़ देंगे, जिस से हम पापी ठहराये जायेंगे, यह ख्याल इन में प्रवेश कर चुका था। आराम के दिन के विषय में एक ऐतिहासिक घटना भी है और वह इस प्रकार कि एक बादशाह ने आराम के दिन यरोसलम पर आक्रमण किया और उस ने सोचा कि इस दिन बहुत से यहूदी लेटे ही रहेंगे और उसको सहिज में ही जय प्राप्त हो जायगी। इस से प्रगट होता है कि यह बाहिरी आडम्बरों के कितने दास थे। इसी पर एक यहूदी ने मसीह से प्रश्न किया था

तुम कैसे आदमी हो जो आराम के दिन भी इधर उधर फिरते रहते हो।

मसीह ने कहा यदि एक आदमी कुंए में गिर पड़े तो क्या तुम उसको निकालने के लिये हिलोगे या नहीं। यहूदी ने उत्तर दिया ऐसे बहुत से हैं कि आदमी डूब जाय परन्तु वह हिल कर पाप के भागी न बनेंगे ॥

हम लोगों में भी यह भाव वर्तमान है और वह किसी और तरह से है। अभी थोड़े दिन की बात है कि एक बच्चा कुंए में गिर पड़ा और पुरुष वहां पर कोई न था, एक भङ्गी ने कहा कि मुझे कूंए में कूदने दो, मैं बच्चे को निकाल लाऊंगा। परन्तु हिन्दू स्त्रियों ने यह कहकर "कि कूआं अशुद्ध होजायगा" उसे रोक दिया और बच्चा कूंए ही में मर गया। इसी प्रकार के भाव यहूदियों में उत्पन्न होगये थे।

दूसरा विचार जो उनमें पैदा हुआ२ था वह मसीह का था। क्योंकि वह इन दिनों बड़े निर्दयी और धन हीन (तङ्ग हाल) थे इसलिये इनको विश्वास दिलाया गया था कि कोई ऐसा आवेगा जो उन्हें कष्टों से छुड़ा लेगा। निदान मसीह आया और उसने इन बुराइयों को देखकर प्रचार आरम्भ किया।

मसीह के उद्देश्य

विषयक एक विचार सुना जाता है और जो अञ्जील में भी देखा जाता है वह यह है कि उस ने पहिले यहूदियों का सुधार करना चाहा। पहिले उस के चित्त में यह भाव नहीं था, कि मैं सारे संसार के लिये प्रचार करूंगा। इस के विषय में एक घटना भी है। कहते हैं कि एक दिन एक भिन्न धर्म की स्त्री मसीह के

पास गई और उस से कुछ पूछा, तब मसीह ने कहा कि यह कैसे हो सकता है कि मैं सुअरों के आगे मोती फैंकूं। पहिले यहूदियों को देलूं, फिर यदि बचा तो तुम ने ले लेना। मानों पहिले उसके मन में यह कभी आया ही नहीं था कि उसने दुनिया में उपदेश करना है। परन्तु फिर कालान्तर में उसका उद्देश्य बदल गया। उसके विचारों में भी भेद होगया और उसने इस मत को सारे संसार के लिये प्रगट किया।

मसीह ने केवल तीन वर्ष प्रचार किया, उसने अपनी तीस वर्ष की आयु में उपदेश करना आरम्भ किया और ३३ वर्ष की आयु में उसे फांसी पर लटकाया गया।

मसीह के प्रचार के तरीके।

मसीह ने जो तरीके वर्ते उन में से सब से पहिला तरीका यह था कि मसीह ने १२ शिष्य पैदा किये जिन को हवारी कहते हैं जिस प्रकार बुद्ध ने विशेष मनुष्य चुने, उसी प्रकार मसीह ने हवारियों को उपदेश दिया। इन की पहिले परीक्षा की, वह इन्हें शनैः२ एकान्त स्थान में उपदेश करता रहा अपने विचारों का बीज इन में बोता रहा और वह यह देखता रहा कि यह मेरे भक्त हैं या नहीं, जब उसे विश्वास होगया तो फिर मसीह ने इन को कहा कि मुझ पर विश्वास रक्खो और इस के लिये उस ने ऐसे हालात भी पैदा किये। और जो कहानियां अञ्जील में लिखी हैं जिन को करामातें कहा जाता है वह हवारियों को अपने पर भक्ति और विश्वास दिलाने के लिए घड़ी गईं।

'पितरस' के साथ दरया पर जाना और पितरस को

कहना कि जो मुझ पर विश्वास रख कर दरया में कूदता है याद रक्खो कि वह पार उतर जावेगा।

इसी प्रकार एक स्थान पर पांच हज़ार आदमी एकत्र थे उन को उपदेश दिया जारहा था परन्तु इन सब के भोजन के लिये केवल पांच रोटियें थीं उन को चिन्ता हुई कि दिन किस भांते कटेगा। इस समय मसीह ने कहा कि यही पांच रोटियां पांच हज़ार के लिये यथेष्ठ (काफ़ी) होंगी।

मसीह ने उनको विश्वास दिलाया कि :—

आत्मा, सत्य, और जीवन मैं हूं

उस ने अपने शिष्यों में इस भाव को कूट२ कर भर दिया और शिष्य उस के सच्चे अनुयायी बन गये। परन्तु समय बड़ा परिवर्तनशील है। यद्यपि उस के शिष्य दृढ़ व्रती और विश्वासी थे तौ भी इन में से एक शिष्य ने उस समय की सर्कार से मसीह के विरुद्ध कुछ कह दिया। उस ने कहा कि मसीह राज-विद्रोही विचार फैलाता है। वह निस्संदेह दृढ़ विश्वासी थे परन्तु फिर भी इन में त्रुटियां थीं एक बार पितरस ने कहा कि हे मसीह मैं तुझे कभी न छोडूंगा, इस पर मसीह ने कहा कि सूर्य्य चढ़ने से पहिले २ तू तीन वार अस्वीकार करेगा। और जब मसीह पकड़ा गया तो सिपाहियों ने पितरस को भी पकड़ा, इस पर उस ने कहा कि मैं तो मसीह को जानता भी नहीं, मुझे क्यों पकड़ा गया है। निदान कुछ देर के बाद उसे छोड़ दिया गया, फिर कुछ लोगों ने कहा कि यह तो उसका अनुयायी है इसे पकड़ लो, जब फिर उसे पकड़ा गया तो फिर उस ने अस्वीकार किया। इस तरह उन में भी धार्मिक निर्बलतायें आजाती थीं।

एक और विचार जो मसीह ने उन के बीच में उत्पन्न किया वह यह था कि :—

मैं फिर आऊंगा।

और शीघ्र आऊंगा, मैं बादशाह बनूंगा, मसीहियों को बड़े बड़े अधिकार मिलेंगे। मेरे अनुयायियों का सन्मान होगा, इस ख्याल ने इन में यह परिवर्तन कर दिया कि मसीह की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने एक कौन्सल बनाई, कौन्सल हवारियों की थी, जो अपना सब कुछ बेच बांट कर मसीह के होगये थे।

इसी भांति वह जिस किसी को मसीह बनाते उसको अपना यह सिद्धात बतलाते कि सोच न करना चाहिये क्योंकि हमारा हादी (पर्थ प्रदर्शक) आ रहा है, और वह बादशाह बनेगा। फिर भला हम क्यों जायदादें बनायें और धन एकत्र करें। जो मसीही होता था उसे अपनी सारी जायदाद धनसम्पत्ति बेच डालनी होती थी, वह सब कुछ बेच कर हवारियों के सुपुर्द कर देता था, जो उसे रोटी पहुंचाते जाते थे, और वह मसीह के लिये ही होजाता था, परन्तु इस पर भी कई सालों तक यह सत्तर ७० अस्सी ८० की संख्या से आगे न बढ़े। जब ऐसी अवस्था थी तो इन में एक और मनुष्य प्रगट हुआ जिसने मसीह से अधिक काम किया और मसीही धर्म का सुधार करके इसको नया जीवन प्रदान किया यह मनुष्य :—

सैंट पाल

था यदि यह प्रगट न होता, तो मसीही धर्म भी यहूदियों की और बहुत सी शाखाओं की भांति एक शाखा होजाता। सैंट

पाल जिस प्रकार मसीहियों में आया वह केवल एक अद्भुत घटना ही नहीं प्रत्युत हृदय विदारक भी है।

सैंट सिटीफ़ंन पक्का मसीही था और उस समय यहूदी मसीहियों के नितान्त शत्रु होरहे थे। और इनमें पत्थरों से मारने की एक कुप्रथा प्रचलित थी, वह कई लोगों को पत्थरों से मार डालते थे। सैंट सिटीफ़न पकड़ा गया और इसी तरह यहूदियों ने उसे पत्थरों से मार डाला, पत्थर मारने वालों में से एक सैंटपाल भी था, जिसने मारने के लिये पत्थर उठाया। परन्तु मानुषी जीवन में ऐसे समय पर, जब कि कोई अपने विश्वास के लिये चाहे वह कैसा ही कड़ा हो जान देता है तो बड़ा असर होता है। सैंट पाल ने जब यह दृश्य देखा तो उसके हृदय पर एक चोटसी लगी और वह कुछ समय के अनन्तर ईसाई होगया। इससे पहिले जितने हवारी थे वह सब अनपढ़ थे, परन्तु यह विद्वान् और पढ़ा लिखा था, इसमें एक और गुण था कि वह बड़ा जोशीला था, जब यह इन में सम्मिलित होगया तो :—

ईसाई धर्म में गड़बड़

उत्पन्न होगई। मसीह को मरे अभी केवल ११ ग्यारह ही वर्ष हुए थे कि झगड़ा आरम्भ होगया, हवारी कहते थे कि ईसा मसीह का धर्म केवल यहूदियों के लिये है। सैंट पीटर और सैंट जेम्स जो मसीह के दो शिष्य थे कहते थे कि कोई मनुष्य ईसाई नहीं होसकता जब तक उसकी सुन्नत न की जावे और जब तक यहूदियों की और बात स्वीकार न करे।

सैंटपाल ने कहा कि जो यहूदी नहीं और मसीही होते हैं वह आवश्यक नहीं कि वह रसमें इनसे जबरदस्ती कराई जायें।

लिखा है कि एक चादर आसमान से उतरी उसमें भांति २ की खाने योग्य वस्तुयें थीं। सेंट पीटर ने कहा, कि मैं इन में से कैसे खाऊं, क्योंकि इनमें हराम (न खाने योग्य) वस्तुयें रक्खी हैं। उस समय आकाश से एक शब्द सुनाई दिया कि जिस वस्तु को मैंने भोज्य लिखा है तू उसे कैसे अभोज्य कहता है ? फिर उसने खा लिया। जिस समय यह झगड़ा उत्पन्न हुआ कि दूसरों के साथ खा लेना चाहिये या नहीं तो उस समय कई सैंटपाल की ओर होगये और कई उसके विरुद्ध होगए। सैंटपाल ने एक और विचार लोगों के आगे रक्खा और उसने यह विचार यहूदियों के एक नियम से लिया था कि बाबा आदम ने क्योंकि पाप किया है इसलिये सब मनुष्य पापी होगये हैं सैंटपाल ने कहा कि जब एक आदमी के पाप करने से पापी बन गये हैं, तो पापों के बदले एक आदमी के फांसी लेने से सब के पाप दूर होगए हैं। उसने उन्हें बतलाया कि यदि तुम ईमान लाओगे तो पवित्र बनोगे और क्षमा किये जाओगे। नहीं तो नरक कुण्ड तुम्हारे लिये तैयार है। यह आशा और यह डर सैंटपाल ने लोगों को दिखाया।

सैंटपाल के प्रचार का तरीक़ा

बड़ा विचित्र था, वह जिस स्थान पर जाता था वहां दो तीन या चार दिन नहीं ठहरता था प्रत्युत छः सात मास रहता था वहां पर वह दुकान खोल लेता था और रस्से बनाकर बेचता और अपनी रोटी कमाता था, जब वह यह देख लेता कि अब मैंने रोटी के लिये पैसे कमा लिये हैं तो वह झट उसे छोड़ कर प्रचार के काम में लग जाता था।

वह यहूदियों के गिरजों के पास चला जाता और बाहर खड़ा होकर गिरजा में जाने वाले और गिरजा से आने वाले लोगों को उपदेश देता था। शनैः २ वह उनको रात को बुलाता और वह आकर इसका उपदेश सुनते। वह अपना धार्मिक जीवन इनके हृदयों में प्रवेश करता और जब देखता कि कुछ जीवन वाले मनुष्य उस स्थान पर उत्पन्न होगये हैं तो दूसरे स्थान पर जाकर इसी विधि से प्रचार करता।

सैंटपाल का काम शान्ति से नहीं होता था, क्योंकि सैंटजेम्स ने सैंट पाल के पीछे आदमी छोड़े हुए थे। जो सैंटपाल के लैक्चर वाली जगह जाकर कहते थे कि इसका लैक्चर मत सुनो। यह मसीह का अनुयायी नहीं। यह लुच्चा और बदमाश (दुराचारी) है परन्तु वह अपना प्रचार बराबर किये जाता था।

ईसाई मत इस तरह से कदाचित अधिक न फैलता, क्योंकि यरोसिलम में बैठे हुए हवारी यदि आज्ञायें जारी कर देते तो सैंटपाल का काम रुक जाता। इनके साम्हने इनकी सौभाग्यता से एक बड़ी कठिनाई आगई। और वह यह थी कि यरोसिलम में हवारियों पर जुलम (निर्दयता) होने लगे। और वह तंग होकर इधर उधर भाग गये। जहां २ कोई गया, उसने प्रचार का काम आरम्भ किया, और ईसाई मत को फैलाने लगे। वह जहां गये वहां पर उन्होंने लोगों को मसीह का उपदेश सुनाया। (मैं कहूंगा, जब तक हर एक आदमी उपदेशक नहीं बनता, तब तक धर्म्म की उन्नति नहीं होसकती। पहिले २ समाज में जो कोई मेम्बर होता था वह यह आवश्यक समझता था कि दूसरों

को भी वैदिक धर्म्म से परिचित करूं। और कई एक ऐसे भद्र पुरुष हैं कि वह जहां गये हैं उन्होंने वहां ही समाज स्थापित किया है, जिस स्थान पर इनकी नौकरी के कारण बदली हुई है उन्होंने वहीं आर्य्य समाज का झंडा गाड़ा है। इस प्रकार के यदि भाव हों तो जितनी बदली होगी उतना अधिक प्रचार होगा) यही विचार उस समय उनमें वर्तमान था । उनमें एक और विचार था जो उनमें प्रवेश कर गया था कि :—

संसार शीघ्र नष्ट होजाने वाला है

अर्थात् यहां की वर्तमान अवस्था सब नष्ट होकर मसीह आयेंगे और वह बादशाह बनेंगे । इस विचार ने उनमें तपस्वी उत्पन्न कर दिये। तपस्वियों की एक प्रकार की जाति बन गई थी, वह जङ्गलों में बनों में और एकान्त स्थानों में तप करते थे। तीस २ दिन तक ब्रत रखते थे, वह अपना जीवन बड़े अद्भुत प्रकार से व्यतीत करते थे। वह उस समय तपस्या को आवश्यक समझते थे और सभी इस विचार में बैठे थे कि अभी मसीह आता है और उसकी बादशाहत (राज्य) होगी । इन मनुष्यों के जीवन का लोगों पर बड़ा प्रभाव हुआ और बहुत से लोग इनमें सम्मिलित होगए।

एक और सिद्धान्त जो इनमें प्रचलित था उसने अद्भुत रूप धारण किया। अर्थात् वह केवल एक ईश्वर को वा मसीह को मानते थे, और दूसरे लोग उस समय के बादशाह की मूर्ति बना कर पूजते थे, उस समय बादशाह का बड़ा बल होता था, लोग देवी देवताओं के साथ अपने बादशाह की भी मूर्ति बना कर उसकी धूप दीप से पूजा करते थे । उसकी आर्ती पढ़ते

और उसके आगे चढ़ावे चढ़ाते थे। हजारों लोग बादशाह के मन्दिर बना कर उसकी पूजा करते थे। लोगों ने मसीहियों को कहा कि तुम बादशाह की पूजा क्यों नहीं करते। तो उन्होंने कहा कि हम बादशाह की प्रजा हैं हम उनका आदर (मान) करते हैं परन्तु सिवाय परमात्मा के और किसी का पूजन नहीं करते। उन्होंने मूर्ति पूजा अस्वीकार की।

इस के साथ उन में यह ख्याल भी उत्पन्न होगया था कि जब हम देवी देवताओं को नहीं पूजते तो उन के त्योहारों को क्यों मानें तात्पर्य्य यह कि ईसाई दूसरे लोगों से दो बातों में अलग होगये, अर्थात् बादशाह की पूजा और देवी देवताओं के त्योहारों में सम्मिलित न होना। तब लोगों ने कहना आरम्भ किया कि–

ईसाई बाग़ी हैं

और यह बादशाह के विरोधी हैं। और जब यह रात को एकत्र होते हैं तो एक बच्चे को मार कर जन्त्र मन्त्र करते रहते हैं (इन के जलसे रात को ही होते थे और केवल ईसाई ही सम्मिलित होकसते थे) अब

मसीही मत पर कड़ाईयां

आरम्भ हुईं (आप उस दृश्य का विचार तक नहीं कर सकते, आप सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और एक शान्त समय में बास कर रहे हैं, आप उस आपद क्लेश और दुःख का एक अंश भी नहीं जान सकते जो उस समय ईसाइयों ने सहन किया) उस समय नीरो नामी एक बादशाह

था उस का काम था कि एक ईसाई को पकड़ता, लोगों को प्रीति भोजन देता। एक ओर भांति२ के भोजन किये जाते थे, और दूसरी ओर १ ईसाई के बदन पर रुई लपेटी जाती थी और ऊपर तेल डालकर उसे वृक्ष से बांध कर आग लगा दी जाती थी उसकी चीखें निकलती थीं उसे तड़पते को देखकर बादशाह प्रसन्न होता था, ईसाई को कहा जाता था कि मसीह को न मानो तो छोड़ दिये जाओगे, परन्तु मसीही ऐसा करने का ख्याल तक भी न करता था। इस तरह कई बालक जलाये गये। शेरों(सिंहों) के आगे डाले गये। हाथियों के पैरों तले रौंदे गये। बूढ़ों का चमड़ा उधेड़ा गया और जलाया गया।

ईसाईयों की सौभाग्यता

से अञ्जील में एक वाक्य था जो अपने धर्म पर पक्का रखता था और वह मसीह का यह कौल था कि वह लोग जो औरों के आगे मुझे स्वीकार न करेंगे, मैं ईश्वर के आगे उन को स्वीकार न करूंगा।

इसलिये ईसाई मरते समय तक उस से मुनकर (विरुद्ध) होजाने का शब्द न निकालते थे। परञ्च स्वीकार करते जाते थे ताकि क्षमा किये जावें। इतिहास बतलाता है कि रूम का सारा इतिहास ईसाईयों के रक्त से रंगा हुआ है। अन्त में इस का क्या परिणाम निकला, यही, कि मसीही धर्म अधिक बलवान होकर फैला। मसीह के बारह शिष्यों में से कदाचित् एक ही अपनी मौत मरा है शेष ग्यारह लोगों के हाथों से भान्ति २ के कष्ट देकर मारे गये। एक और बात जो उन्होंने ग्रहण की वह यह थी कि उन्होंने

निर्धनों में काम

करना आरम्भ किया । सहस्त्रों निर्धन उन की शरण में आगये । यद्यपि उन की उन्नति रुकती रही, परन्तु जो एक बार ईसाई होजाता था वह फिर टलने वाला न होता था । एक और बात जिसने इन को उन्नति पर पहुंचाया यह थी कि ईसाई एक सिलसिले में बांधे गये । रूम के पोप की शक्ति के वर्णन करने की आवश्यकता नहीं सब उसी के आधीन काम करते थे और उस से तनिक भी इधर उधर न जाते थे । परन्तु इन में सिद्धान्तों के झगड़े बड़ी प्रबलता से उत्पन्न होगये । एक ईसाई कहता था कि बाप बेटा और रूह उलकुदस एक ही है और दूसरा कहता था कि बाप बेटा वैसे हैं । इस वही और वैसे पर प्रबल वाद विवाद हुआ, बड़ी कौन्सलें (सभायें) हुईं । बहुत समय तक यह झगड़ा होता रहा पहिले बहुत सी अंजीलें थीं । निदान एक कौन्सल हुई और उस ने मसीह के केवल चार जीवनों को यथोचित समझा, शेष अंजीलें जला दी गईं आज उन पुस्तकों के नाम तक भी कोई नहीं जानते (यह होते हुए भी कि इन में इतने झगड़े सिद्धान्त पर हुए फिर भी यह धर्म्म फैला)

इस का कारण

यह था कि इन में ऐसे२ ब्रह्मचारी पुरुष और स्त्रियें प्रगट हुईं जो प्रचार के लिये निकलीं । वह सारे एक ही ताने में तने जाते थे और सारे ही रूम के विशप(पादरी)की गद्दी के अधीन समझे जाते थे । प्रचार के इस तरीके ने ईसाई धर्म को चमका दिया । आज जो लाखों रुपैये ईसाई धर्म के प्रचार के लिये इङ्गलिस्तान देता है वह मसीही धर्म में कैसे आया उस का एक अद्भुत हाल है

इतिहास इंगलिस्तान का मसीही होना

इस प्रकार आरम्भ करता है कि फ्रांस के बादशाह की लड़की केंटरबरी के बादशाह से ब्याही गई। और उस लड़की ने कहा कि मैं ब्याह तब करूंगी जब केंटरबरी में गिरजा बनाया जावे बादशाह ने केंटरबरी में गिरजा बना दिया। वह लड़की आई और नित्य उस ने गिरजे जाना आरम्भ किया। और शनैः २ उस ने अपने पति को मसीही बना लिया। और अपने बाप को भी लिखा कि कुछ मसीही भेजो जो यहां प्रचार करें, इस प्रकार केंटरबरी में मसीही धर्म फैल गया इसी भांति केंटरबरी के बादशाह की लड़की का विवाह हम्बरिया के बादशाह से हुआ वहां जाकर उस लड़की ने पादरियों को मंगवाया और पति को ईसाई मत पर ले आई। इसी प्रकार दक्षिणी इंगलिस्तान में हुआ, वहां पर भी यह धर्म लड़की द्वारा ही फैला है (मानों कि इङ्गलिस्तान में ईसाई धर्म का बीज एक दो लड़कियों द्वारा डाला गया, और इस प्रकार सामाजिक सम्बन्ध से यह धर्म वहां फैल गया) यही हाल जर्मनी का हुआ। कई लोग कहते हैं कि मसीही धर्म तलवार के बल से नहीं फैला, परन्तु शार्लेमैन ने लोगों पर केवल मात्र इस लिये आक्रमण किये कि वह लोग मसीही न थे और उन को अन्त में मसीही बनाकर छोड़ा। वह एक बार में पचास २ आदमियों का बध कर डालता था, यह इस लिये कि वह मसीही धर्म में नहीं आते थे। इस पर भी मसीही धर्म तीन सौ साल तक

बना रहा, हां फिर कांसटन टाइन ने इन को सहायता दी और वह भी उस समय जब यह स्वयं कुछ फैल चुका था क्योंकि कांसटन टाइन तो मरते समय ही ईसाई हुआ था।

अब हम ज़रा इन के प्रचार की ओर देखें

१-इन पर सख़्ती (कड़ाई) का होना जिस से यह धर्म के पक्के होगये।

२-इन में एक ख़्याल ने त्यागी उत्पन्न कर दिये और पुरुष और स्त्रियां ब्रह्मचारी रह कर प्रचार करने लगीं।

३-ईसाई धर्म एक सिलसिले में बन्धा रहा।

इस के फैलाव के यह आरम्भिक साधन थे।

इस के अन्तर इस में और भी साधन आगये, जब इतना प्रचार हो चुका तो इन में एक और झगड़ा पैदा होगया। और इससे कैथलिक और प्रौटिसटैन्ट दो समुदाय उत्पन्न होगये और फिर इन दोनों फिरकों (समुदायों) ने अपने स्कूलों और कालिजों के द्वारा लोगों में अपने विचार फैलाये॥

इनमें विशेष प्रकार के विचार उत्पन्न किये गये, (कष्ट सहना, दुःख उठाना, धर्म के लिये भांति २ की आपदाएं सहा-रना) इस अङ्ग ने इनमें अधिक शक्ति प्राप्त करली। फल यह हुआ कि सारे ही इसके लिये प्रयत्न करने लगे। जो इस काम के लिये उत्पन्न होगये थे उन लोगों का जीवन आश्चर्यप्रद था। धर्म फैलाव का इतिहास बतलाता है कि जो लोग धर्म से अधिक किसी और वस्तु से प्यार करते हैं वह धर्म को नहीं फैला सकते जो अपने में धर्म के लिये दुःख सहना और कष्ट उठाने वाला

अंग बलवान नहीं कर लेते वह अपने धर्म को बढ़ा नहीं सकते। ईसा मसीह यदि केवल यहूदियों तक ही अपने धर्म को रोक रखता तो वह कभी कृत-कार्य न होता। और वह सारी दुनियां को जीत न सकता, यदि उसके उद्देश्य वहीं रहते, यदि वह धर्म के साम्हने सारी वस्तुओं का त्याग न कर देते, यदि वह जीवन जैसी प्यारी बस्तु को धर्म पर निछावर न कर देते, तो वह उन्नति न कर सकते। यदि इनमें ऐसे पुरुष और स्त्रियां न उत्पन्न होतीं जो ब्रह्मचारी रहकर प्रचार करतीं, यदि इनमें ऐसी रानियां न उत्पन्न होजातीं, जो अपने पतियों को इस धर्म पर न ले आतीं और अपने रक्त की मुहरें उस पर न लगातीं, तो यह धर्म कभी आगे बढ़ न सकता, यदि इसमें विश्वास न होता यादि वह ईश्वर पर भरोसा न करते, तो इनकी उन्नति होनी कठिन थी (इन्हीं साधनों द्वारा यह धर्म फैला)

दो लड़के

आक्सफोर्ड के कालिज में पढ़ते थे वह देखते हैं कि ग़रीबों को गिरजा में दाखिल होने में कष्ट होता है वह उठते हैं और गिरजे से बाहर लोगों को मसीह का उपदेश सुनाते हैं छकड़े पर खड़े होकर वह प्रचार करते हैं। सहस्रों लोग आसपास एकत्र हो जाते हैं और फिर उस स्थान पर जहां एक गिरजा है वहां सहस्रों गिरजे बनाए जाते हैं इन्हीं दो लड़कों के प्रयत्न से इस समय ५० लाख आदमी इन्हीं का प्रचार कर रहे हैं मेथोडिस्ट मिशन (जिस के आश्रय कई एक संस्थाएं चल रही हैं, इन्हीं दो लड़कों के परिश्रम का फल है। यह जीवन है जिसकी भड़क हरएक के

अन्दर होनी चाहिये जहां यह नहीं वहां प्रचार नहीं होसकता वह लोग जो केवल हिसावी हैं और हिसाव में लगे रहते हैं जिनको ईश्वर पर भरोसा नहीं, वह काम नहीं कर सकते।

तीसरा लैक्चर

(यवन मत कैसे फैला)

यवन मत का उदय जैसा कि प्रकट है मुहम्मद साहिब से हुआ। जब मुहम्मद साहिब अरवस्थान में उत्पन्न हुए तो वहां के लोगों की दशा बहुत शोचनीय थी। एक २ गांव में सहस्रों बुत होते थे जिनकी पूजा की जाती थी। स्त्रियों की प्रतिष्ठा में इतनी कमी आगई थी कि वह अप्रतिष्ठा ही गिननी चाहिये। जैसे हमारे यहां राजपूत राजे सौ २ स्त्रियां कर लेते थे। वैसे ही वहां पर अनगिनत स्त्रियें कर लेते थे। और उनके यहां इस की कोई निन्दा नहीं की जाती थी। इसके अतिरिक्त इनमें राजपूतों की भान्ति प्रतिष्ठा (मान) का झूठा विचार बैठ गया था। जिसतरह राजपूत अपने मान के बनाए रखने के लिये निरापराध कन्याओं को मार डालते थे इसी भांति वह लड़कियों को मार डालते थे।

अरब स्थान के लोग अपनी लड़कियों को जब वह छः या सात साल की होती थीं मार डालते थे। और उसका तरीका यह था कि पिता कन्या को बाहर लेजाता था और वहां आगे ही एक गढ़ा खोदा हुआ होता था, पहिले वह स्वयं उस गढ़े के पास जाकर उसे देखता था फिर लड़की को पास लेजाकर उसे कहता था कि देखो यह क्या है (बच्चों में यह प्राकृतिक बात है कि वह नयी वस्तु को बड़े चाव से देखते हैं) ज्यों ही वह देखने

के लिए गढ़े की ओर झुकती पिता अपनी कन्या को झट धक्का दे देता था। फिर स्वयं ही उस पर मिट्टी आदि डाल देता था और इस भान्ति वह जीवित बच्चे को गाड़कर वापिस आता था और माता पिता इस प्रकार के वर्ताव अपनी सन्तानों पर स्वयं ही करते थे। इस बुराई के अतिरिक्त एक और दोष इनमें यह था कि वह आपस में एक दूसरे के रक्त के प्यासे होरहे थे। एक अरबी दूसरे अरबी को मार देता था। उनका इधर उधर जाना अपने आपको नष्ट करना था, इनमें केवल एक महीना होता था जिसमें यह लड़ाई झगड़ा बन्द रहता था और वह मक्के के आस पास घूमने के लिये नियत था। इस महीने में हज्ज किया जाता था इस महीने में यदि कोई इधर उधर जाता था तो उससे कोई आदमी लड़ाई दंगा नहीं करता था। परन्तु उस महीने के आगे या पीछे मार धाड़ ही पड़ी रहती थी। वह एक दूसरे को दास बना लेते थे। इनका काम केवल लूटना मारना था और उस देश में दास बनाने की प्रथा तो अबतक प्रचलित है॥

मुहम्मद साहिब का व्योपार

मैं यह भी प्रकट कर देना चाहता हूं कि वहां पर दो प्रकार की बस्ती थी, यहूदी और ईसाई दोनों वहां बसते थे। इसी दशा में मुहम्मद साहिब यहां पर उत्पन्न हुए। मुहम्मद साहिब पहिले व्योपार करते थे वह दमिश्क आदि की ओर माल लेजाते थे और वहां से माल लाते थे इसप्रकार २२वर्ष की आयु तक करते रहे। २५ वर्षकी आयुमें उन्होंने विवाह किया, और फिर इसके अनन्तर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं किसी धर्म का प्रवर्त्तक बनूं॥

प्रारम्भिक दशा

इस विचार ने इनमें घर कर लिया और अन्त में यह विचार बाहिर प्रकट हुआ और उन्हों ने दूसरों को इस में लाने का प्रयत्न किया। इस समय इनकी दशा कुछ शिथिल सी थी और इसलिये इनके इतने समय के उपदेश से कोई अच्छा फल न हुआ १३ वर्ष तक वह मक्के में उपदेश करते रहे परन्तु ५० । ६० से अधिक आदमी इनके अनुयायी नहीं हुए । मुहम्मद साहिब ने सबसे पहिले अपनी स्त्री को अपने धर्म का उपदेश दिया, और सब से पहिले जो उन पर विश्वास लाई वह उनकी स्त्री थी। उनकी स्त्री जब उनकी सहधर्मिणी होचुकी, तो उसने और स्त्रियों को उपदेश करना आरम्भ किया, मुहम्मद साहिब का सौभाग्य समझिये, अथवा दैवयोग समझिये कि उन पर आस पास से कठिनाइयां पड़ती थीं, कई वार उनके शरीर पर आक्रमण किये गये एकवार तो कुछ घातकों ने उनके मारने में कसर न रखी थी परन्तु समय पर मुहम्मद साहिब को पता लग गया और घातकों के सारे विचार मिट्टी में मिल गये।

उनकी बिरादरी भी उनसे विरोध रखती थी। और केवल उनके लिये एक बिरादरी एकत्र होगई (मिल गई), उस में मुहम्मद साहिब के दादा को कहा गया कि अपने पोते को समझाओ। हजरत अली ने कहा कि यदि उसने समझने से नाहीं करदी तो। फिर, उसे कहा गया कि यदि ऐसा हुआ तो फिर तुमने उससे नाहीं कर देना। हजरत अली ने कहा कि यदि चांद मेरे बांएं और सूर्य दांएं ओर भी आबैठें और मुझे कहें

कि तू मुहम्मद पर से ईमान हटा ले (उस पर विश्वास न कर) तो मैं फिर भी यह मानने को तय्यार नहीं हूंगा ॥

उन्नति का मार्ग ।

इससे बढ़कर मुहम्मद साहिबने कुछ आगे पैर रक्खा, और मदीना के कुछ लोग उनके पास उपदेश सुनने के लिये आगये, और इस तरह मदीने में सत्तर आदमी उन के अनुयायी बन गये । क्योंकि मक्के में उन पर बहुत क्रूरता का वर्ताव होने लगा था इस लिये वह वहां से भाग गये । जिस वर्ष से यह मक्के से भागे उसी वर्ष से हिजरी का सन है (अर्थात् अलग होजाने, हिजर हो जाने का साल) मक्के से भाग कर आप मदीने में पहुंचे । यहां पहुंच कर मुहम्मद साहिब ने अपनी चाल को बदल दिया । इस से थोड़े ही काल में आप के आस पास बहुत सुदृढ़ आदमी एकत्र होगए, और इस से मुहम्मद साहिब ने भी लूट मार के काम में भाग लेकर तलवार हाथ में ली और अपना मत फैलाना आरम्भ किया ।

मुसलमानी इतिहास

में पहिली बात यह आती है कि इस धर्म का आरम्भ विश्वास से हुआ,परन्तु थोड़ी देर के लिये उन्हें तलवार भी हाथमें लेनी पड़ी । इस से अरब स्थान में एक लहिर फैल गई मुहम्मद साहिब ने अपने विरोधियों (मूर्ति पूजकों और क़ाफ़रों) से लड़ाई की । क्योंकि मुहम्मद साहिब समझदार थे और उन के आस पास बलवान लोग एकत्र हो गए थे, इस लिये यह आवश्यक था कि इन को हर एक समय पर विजय प्राप्त होती ।

जिन को यह विजय करते थे, उन को अच्छी तरह अपने में मिला लेते थे। जब अरब स्थान के लुटेरों को यह विदित हुआ कि मुहम्मद साहिब के समूह में रहने से लाभ है तो वह उन से आ मिले। सांसारिक लाभ के साथ २ इन को धर्म का भी ख्याल आ जाता था इस लिये बहुतेरे लुटेरे आन मिले, लोगों में एक यह झूठी बात फैली हुई है कि यह मत केवल तलवार से फैला है।

तलवार के साथ ही इन में ईश्वर विश्वास था और यह विशेष बात इन को हर एक काम में सफलता प्राप्त कराती थी। ईश्वर पर भरोसा और तलवार को लेकर उन्हों ने अरबस्थान में अपना मत फैलाया। और सारे अरब स्थान को (जिस में नित्य लड़ाई दंगा होता रहता था) एक कर दिया। मुहम्मद साहिब की जब मृत्यु हुई तो यद्यपि उनका मत उन्नति पर था परन्तु इस की बहुत प्रशंसनीय दशा न थी॥

कुरान का पुस्तकाकार

मुहम्मद साहिब जब तक जीवित रहे इन के लिये (वही) उतरती रही उन का यह नियम था कि जो वही उतरती वह उसे किसी पट्टी या हड्डी पर लिख कर एक सन्दूक में बन्द कर देते थे। जब इन का देहान्त होगया तो उस सन्दूक को खोला गया। और उन पट्टियों और हड्डियों की नकल उतार कर उन्हें पुस्तकाकार बनाया गया। उन दिनों कुरानों में बहुत विरोध था। किसी के पास किसी प्रकार और दूसरे के पास अन्य प्रकार का कुरान था उस समय छापा तो बना ही नहीं था। इस लिये अपने हाथ से जो चाहता था लिख लेता था इन

के उपरान्त चार मित्र थे जो इन के सिंहासन पर आरूढ़ हुये। इन को खलीफ़ा कहते हैं। और मुहम्मद साहिब के अनन्तर इन खलीफ़ों ने धर्म फैलाने का ज़िम्मा लिया॥

खलीफों का सादा जीवन

इन सबका सरदार अबूबकर था जो उमरमें भी बड़ा था, जो रुपया उसे राज्य से प्राप्त होता था वह अपने लिये उस में से एक कौड़ी भी व्यय न करता था और मुसलानी धर्म के प्रचार के लिये ही उसे व्यय करता था॥

एक अवसर पर फारस का एक दूत किसी आवश्यक बात पर सम्मति लेने के लिये अबूबकर के पास आया वह पहिले मसजिद में पहुंचा और पूछा कि ख़लीफा अबूबकर साहिब कहां हैं लोगों ने कहा कि वह अभी आते हैं, इतने में खलीफा साहिब आये उन के हाथ कीचड़ में लिपटे थे उन का नियम था कि ईंटें थाप कर उस से अपनी रोटी का निर्वाह करें हाथ धोकर वह दूत के साम्हने आये और उसे कहा कि किस को पूछते हो, दूत ने उत्तर दिया कि खलीफा साहिब को मिलना है। खलीफा साहिब ने कहा कि मैं ही हूं। इस से आप को प्रतीत होगा कि इन का जीवन कितना सादा होता था। इस के बाद ख़लीफ़ा उमर हुआ है उस के पास भी एक चादर और एक कुड़ता होता था। एक अवसर पर उस की फौज ने लूट मार की, और लूट की वस्तुयें बांटने पर खलीफा को एक चादर और एक कुड़ता मिला। दूसरे दिन लोगों ने देखा कि खलीफा के पास दो कुड़ते हैं लोगों ने कहा कि आप धर्मात्मा नहीं, क्योंकि आप को केवल एक२ वस्तु दी गई थी, खलीफा

उमर ने अपने पुत्र को बुलाया और कहा कि इस का उत्तर दो, उस के लड़के ने कहा कि जो चादर मुझे मिली थी उस का कुड़ता मैंने इन को सिलवा दिया है। क्या यह घटना हमें नहीं बतलाती कि स्वयं खलीफा और उस के साथ ही उस के अनुयायी भी उस को सादा रहने पर मजबूर करते थे। खलीफा उमर ने एक बड़ा काम जो किया वह यह था कि उसने कुरान की सारी प्रतियें एकत्र करवाईं और एक कापी (प्रति) के बिना सब को जला दिया। यदि उस समय छापे खाने होते तो कुरान की दूसरी प्रतियें नष्ट न हो सकतीं -परन्तु दूसरे प्रकार से इस की केवल एक ही प्रति रह गई।

मुख्य साधन

सब से अधिक और विशेष कारण जो इस मत के फैलने का हुआ वह एक विशेष और मुख्य साधन है। अर्थात् उन्हों ने अपने अनुयायियों में एक विशेष प्रकारका उत्साह उत्पन्न किया (दूसरे) जिस प्रकार से ईसामसीह और बुद्ध देव चले (काम करते रहे) उस ने इन से भिन्न प्रकार से काम करना आरम्भ किया। मसीह और बुद्ध ने ब्रह्मचारी प्रचारक तैयार किये, दोनों ने इस प्रकार के जीवन को और उन को उत्तम कहा। परन्तु इस ने विशेष प्रचारक उत्पन्न किये, मरते दम तक गृहस्थी बने रहने का उपदेश दिया। वह स्वयं भी मृत्यु पर्यन्त गृहस्थी रहे। मुहम्मद साहिबने अपने अनुयायियों में धर्म के लिये प्रबल उत्साह उत्पन्न किया।

उत्साह का बल

और इस उत्साह ने उस के अनुयायियों को लोहे की लाठ

बना दिया। इन के एक बृद्ध नेता खालिक नामी ने उत्साह में वह २ प्रशंसनीय कार्य किये कि उन को सुन कर लोग चकित रह जाते हैं। तारू नामी एक और इन का अनुयायी था उस में असीम उत्साह था (सपेन और अफ़रीका के बीच में समुद्र है) उस ने चाहा कि मैं सपेन पर चढ़ाई करूं और वहां जाकर मुसलमानी धर्म का प्रचार करूं। परन्तु उस समय समुद्र को पार करने का कोई साधन या रास्ता न था। निदान उत्साह से ही उस ने अपने घोड़े को समुद्र में डाल दिया और कहा कि हे समुद्र ! तू मुझे क्यों रोकता है, रस्ते से हट जा, क्योंकि मैं चाहता हूं कि वहां जाकर मुहम्मद साहिब का झंडा गाडूं। (उस के इस प्रकार के उत्साही अनुयायी थे) इन में कोई विशेष ऐसी सभा न थी जो उपदेशक उत्पन्न करे या बनाये। मनुष्य स्वयं ही उपदेशक बन जाते थे, परन्तु इसलाम ने इनको उपदेशक नहीं बनाया। इनका नियम ही यह था कि जिसके मन में आगया, उसने ही प्रचार आरम्भ कर दिया। पहले२ मुसलमानों का सम्बन्ध उन लोगों से हुआ जिनके हाथमें तलवार थी, इस लिये उन के हाथ भी बलवान हो गए। और अन्त को इन का जत्था हिन्दोस्तान में भी आया॥

हिन्दोस्तान में मुसलमानी धर्म

हिन्दोस्तान में मुसलमानी धर्म कैसे आया, मैं कह आया हूं कि इन का एक जत्था यहां आया। यद्यपि वह पक्के मुसलमान थे परन्तु फिर भी इन में एक और शाखा उत्पन्न होगई जिस को लोग सूफी के नाम से पुकारते हैं। साधारणतयः उन का यह नियम था कि वह हिन्दू व मुसलमान दोनों को अच्छा

समझते थे, बाबा फरीद आदि इन्ही में से थे। उन्होंने तपस्या के साधन को ग्रहण किया और तप का भाव इन में उत्पन्न हुआ इसका प्रभाव लोगों पर अच्छा पड़ा। बाबा फरीद के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह ऐरावती (रावी) नदी के तीर पर रहते थे इन का टिल्ला अब तक वर्तमान है। इन की तपस्या इतनी बढ़ी हुई थी कि मिट्टी के ढेर के ढेर उन के शरीर पर जम जाते थे। इस तपस्या ने लोगों को वहां खैंचा और हिन्दू वहां जाने लगे। वह कहते थे कि मुसलमान क्या और हिन्दू क्या दोनों अच्छे हैं। वहां बहुधा मुसलमान ही बैठते थे। उन की सङ्गति से हिन्दू मुसलमान होने लगे। (सङ्गति का प्रभाव बहुत प्रबल होता है) और इस के साथ हिन्दुओं के अपने अपने विचार के अनुसार वह मुसलमान हो गया जो मुसल-मानों के सङ्ग उठने बैठने लगा। जो उन के पास आते वह इस तरह मुसलमान हो जाते थे और वह इन को समाजिक अधि-कार प्रदान कर देते थे॥

एक और साधन जिस ने इन को हिन्दोस्तान में सफलता प्राप्त कराई वह।

बराबरी के अधिकार

हैं, ईसाइयों में यह नियम ठीक नहीं, वह किसी को बराबर का दर्जा (पद) देने को तैय्यार नहीं। बौद्ध भी किसी को अपने जैसा मानने पर तैयार नहीं, और हिन्दुओं में इस विचार का चिन्ह नाम मात्र भी नहीं। परन्तु मुसलमानों में यह नियम सब से प्रथम है। वह झट ही बराबरी का दर्जा दे देते हैं॥

खलीफा उमर के विषय में प्रसिद्ध है कि जब वह दमश्शक में विजय के अनन्तर प्रवेश हुए तो वह ऊंट की नकेल पकड़े हुए आगे २ जा रहे थे और उन का नौकर ऊंट पर सवार था, रास्ते में यह दोनों आ रहे थे खलीफा ने नौकर को कहा कि एक पड़ाव तुम चलो और एक पड़ाव मैं चलता हूं यद्यपि नौकर ने नाहीं की परन्तु खलीफा ने कहा कि (सहधर्मी) मुसलमान होने के कारण जैसा मैं हूं वैसे तुम हो और क्योंकि हम धार्मिक काम कर के आ रहे हैं, इस लिये दोनों एक जैसे ही अधिकारी हैं ॥

भारत वर्ष पर एक दृष्टि

इसी प्रकार आप इस धार्मिक एकता को देखते हुए भारत वर्ष पर दृष्टि डालें तो आप को प्रतीत होगा कि बराबरी के अधिकार ने इन को कितना उच्च और उन्नति के शिखर पर पहुंचाया है।

बंगाल और पंजाब में इन की इतनी प्रबलता है और क्या कारण है कि दिल्ली में मुसलमानों का इतनी देर राज रहा परन्तु वहां वह प्रबलता नहीं जो बङ्गाल और पञ्जाब में है। दिल्ली में छय सौ वर्ष तक इन का राज रहा संयुक्त प्रान्त को और देहली की मनुष्य संख्या को देखें आठ आदमियों में सात हिन्दू हैं।

अर्थात् दिल्ली के आस पास $\frac{7}{8}$ भाग हिन्दुओं का है जहां मुसलमान बादशाह रहते थे।

इस का कारण यह है कि मुसलमान बादशाहों ने मेवात

के लोगों और बरार और दिल्ली के बीच के देश को विजय करने के लिये सेना का एक बड़ा भारी चक्कर डाल दिया था और वहां पर "कतल आम" की आज्ञा दे रखी थी। उस ने लाखों मनुष्यों को नष्ट कर दिया। परन्तु इतनी कड़ाई पर $\frac{७}{८}$ वां भाग हिन्दू और $\frac{१}{८}$ भाग मुसलमान हैं। परन्तु पूर्वी बङ्गाल में १०० में ८० मुसलमान और २० हिन्दू हैं। रावी के पश्चिमी ओर देखें तो मुसलमान अधिक मिलेंगे और इस ओर कम, पश्चिमी ओर जेहलम के अन्तरगत सौ में ९० मुसलमान और १० हिन्दू हैं और रावल पिंडी और पिशावर की ओर तो इन की बहुत ही अधिकता है। इस का क्या कारण है कि देश के दोनों ओर तो इन की अधिकता है पर बीच में नहीं। पञ्जाब के लिये तो यह कारण है कि यह हिन्दोस्तान का द्वार है यहीं से वह आते थे, यह पंजाबियों ही की छाती थी कि वह हर भांति के अन्याय, उपद्रव और आक्रमण सहते थे। परन्तु अन्त में इनका हिन्दू रहना कठिन हो गया था। इस प्रकार पूर्व की ओर जाते हुए वह देश को अपनाते जाते थे। बङ्गाल में ऐसी तलवार नहीं चली जैसी पंजाब में चली है।

पूर्वी बङ्गाल में जो लोग रहते थे उन के लिये आवश्यक था कि वह मुसलमान हो जायें। वहां पर सौ में केवल २० ही ऊंची जाति के लोग थे और शेष नीच जाति वाले रहते थे। जब मुसलमान वहां गये और उन्हों ने देखा कि हिन्दू उन से बुरा बर्ताव करते हैं तो उन्हों ने उन को अपनी ओर खैंचा। उन्हें सामाजिक अधिकार के साथ २ बराबरी का दर्जा भी दिया। और फिर कोई भेद न रहा कि यह पुराना और यह

नया मुसलमान है इसलिये वहां मुसलमानी धर्म ने अधिक उन्नति की। और आज कल भी यही देखा जाता है कि ईसाइयों का ज़ोर वहां है जहां अछूत जातियें अधिक हैं। मद्रास ट्रावनकोर में क्योंकि यह अधिक हैं इस लिये आबादी का पांचवां भाग ईसाई है। मद्रास में सौ में से पांच ईसाई और पांच मुसलमान हैं इस का कारण यह है कि वहां जाति में अधिक शिथिलता नहीं। बङ्गाल में अछूत जाति वालों पर असर (प्रभाव) पड़ा और वह मुसलमान होगये। सहस्रों ही नहीं बल्कि लक्षोंने यह मत ग्रहण कर लिया। धार्मिक उत्साह इन में अधिकता से संचार किया गया, चाहे कोई काज़ी हो या मौलवी, परन्तु दूसरे को अपने में प्रवेश करना अपना कर्तव्य समझता था। और यही कारण था जिस ने इन को दृढ़ बना दिया। वह ईश्वर पर भरोसा रखते थे और उसका नाम लेकर निकल खड़े होते थे यद्यपि बाद में तलवार को त्यागना पड़ा परन्तु ईश्वर पर विश्वास वैसा ही था और इसी विश्वास से बन्धे हुए वह उत्साह से काम करते रहे॥

—:*:—

तीसरे लैक्चर का उत्तरार्द्ध।

वैदिक धर्म कैसे फैल सकता है।

सब से उत्तम और आवश्यक अंग प्रचार के लिये जिसे मैं समझता हूं वह धर्म का अङ्ग है। हर एक मैम्बर जो आर्य्य समाज में आवे उसे धर्म की चिन्ता हो, और उसे इस बात की लगन हो कि उस ने धर्म पर दृढ़ रहना है। धर्म परायण होना मानो अपने आप को एक उपदेष्टा के रूप में प्रगट करना है।

सोसायटी (समाज) का सब से पहिला काम हर एक मैम्बर में धर्म का भाव उत्पन्न करना है, जब एक मेम्बर देखे कि अब धर्म का भाव मन में पूर्ण रीति से स्थान पाचुका है तो फिर उस के साधन को बर्ते। मैं देखता हूं कि आज २५ वर्ष के बाद भी एक मेम्बर धर्म में वैसा दृढ़ नहीं,जैसा होना चाहिये था वह बल-वान क्यों नहीं है,इस मे मेरा कभी भी यह अभिप्राय नहीं, कि इस में धर्म का भाव नहीं प्रत्युत इस से मेरा यह अभिप्राय है कि उस में वैसा धर्म भाव नहीं है जैसा कि चाहिये।

पहिली न्यूनता

जो इस का कारण है वह यह है कि एक आदमी यह भाव लेकर आर्य्य समाज में प्रवेश करता है कि मैं दूसरों का उपकार करूंगा, चन्दा दूंगा, कालिज के लिये काम करूंगा, प्रचार फण्ड के लिये धन एकत्र करूंगा, और किसी अधिकारी का कार्य्य सम्भालूंगा और मन्त्री या प्रधान बनूंगा।

यह भाव उस में वर्तमान होते हैं वह समझता है कि मैं दूसरों के लिये काम करता हूं। यह भाव बहुत अच्छे और पवित्र हैं यदि आर्य्य समाज इन में परोपकार का भाव उत्पन्न कर देता है,तो यह बहुत अच्छा है और उन्नत करने वाला है, परन्तु जब एक पुरुष मैम्बर बनता है और वह दूसरे भावों को लेकर आवे अर्थात् मैं धार्मिक जीवन को उच्च बनाऊंगा, वेदों से प्रेम और उन का अध्ययन करूंगा, ईश्वर से जीता जागता सम्बन्ध जोड़ूंगा यदि इस भाव को लेकर वह आर्य्य समाज में आवे तो अति उत्तम होगा वह यह विचारे कि मुझे यहां आकर संध्या सीखनी है, हिन्दी व संस्कृत पढ़ना है,योगाभ्यास की ओर रुचि

बढ़ानी और उसे सीखना है और अपने जीवन को पवित्र बनाना है, और यह भाव असन्त लाभ दायक होंगे, इस का स्वाभाविक फल यह होगा कि वह आर्य्य समाज में आकर ऐसे लोगों को ढूंढ़ेगा जिन से वह अपना काम बना सके। कारण क्या है कि मैम्बर २५–२५ वर्ष से मौजूद हैं परन्तु उन्हें संस्कृत नहीं आती, इतनी देर से मैम्बर हुए २ भी उन में वह जीवन नहीं जो आवश्यक था। कारण इस का यह है कि लोग यह भाव लेकर नहीं आते वह केवल चन्दा देने आते हैं। स्मरण रहे कि जो जैसी भावना करता है वही उस को फल मिलता है। यदि आप आर्य्य समाज में अपने जीवन के सुधार की भावना लेकर आए हैं तो वही फल आप को मिलेगा। मैंने कहा कि परोपकार का भाव अच्छा है, परन्तु दूसरे भाव इस से कई गुणा श्रेष्ठ हैं उपकार के भाव ठहर नहीं सकते यदि ईश्वरीय भाव न रहें ! एक बृक्ष का हरा भरा रहना और उस में से फल और फूलों का निकलना तब ही तक हो सकता है, जब तक कि उस की जड़ें हरी हैं और उन को बराबर पानी मिल रहा है, नहीं तो वह सूख जायगा और फिर न फल ही होंगे और न फूल होंगे। इस प्रकार जब तक परमात्मा पर विश्वास रहेगा, तब तक परोपकार का बृक्ष हरा भरा रहेगा, नहीं तो सूख जायगा। यदि आप इस बृक्ष को ईश्वर प्रेम के जल से सिञ्चन नहीं करते तो इस का हरा रहना असम्भव है। जहां मेम्बरों में ईश्वरीय प्रेम और इस भावना की न्यूनता है वहीं प्रबन्ध में न्यूनता आ जाती है ॥

आर्य्यसमाज के लिये सब से पहिला काम

यह है कि वह मैम्बरों को धर्म के भावों में लिप्त कर दे।

आप देखें कि जब किसी स्थान पर समाज स्थापित होता है, वहां कथा भी एक मनुष्य कर देता है, कुछ लोग एकत्र भी हो जाते हैं, परन्तु ज्यों ही समाज स्थापित करने वाला वहां से बदला, फिर आर्य्य समाज नष्ट हो जाता है। इस का कारण क्या है? कई ऐसे स्थान हैं जहां ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं, बहुत से स्थानों पर गाड़ियें वर्तमान होती हैं परन्तु वह स्वयं चल नहीं सकतीं, उन्हें चलाने के लिये इञ्जन की आवश्यक्ता है।

कई आदमी गाड़ियों की भांति होते हैं वह स्वयं नहीं चल सकते, प्रत्युत उन को पुरुष रूपी इञ्जन की आवश्यक्ता होती है। ऐसे लोगों के लिये विद्वान् पंडितों की आवश्यक्ता है। जो कथा करें प्रेम से लोगों के संशय निवृत करें। पंडितों का आचरण आदर्शनीय हो। ऐसे मनुष्य इन गाड़ियों को चला सकते हैं, फिर यह बात सुनने में नहीं आ सकती कि अमुक स्थान पर आर्य्य समाज टूट गया। यह काम आर्य्य समाज का पहिला काम है कि वह अपने मैम्बरों में धर्म भाव को कूट २ कर भर दे, इस ओर से हम शिथिल हैं, यद्यपि बिलकुल शिथिल नहीं क्योंकि धार्मिक मनुष्य विद्यमान हैं। ऐसे पुरुष भी बराबर हैं जो धर्म परायण हो चुके हैं। परन्तु फिर भी इस ओर से हम शिथिल हैं। आर्य्य समाज के प्रत्येक बच्चे में यह भाव घुस जाना चाहिये कि आर्य्य धर्म श्रेष्ठ धर्म्म है उसे इस बात के कहने में गौरव हो, कि मुझे यह धर्म्म—विरसे में मिला है, मेरी यह सम्पदा है मेरा यह धन है, मेरा यह जीवन और मेरा यह आत्मा है। जब यह भाव बलवान् और सुदृढ़ होगा तब समझा जावेगा कि आर्य्य समाज सुदृढ़ हो गया है।

दूसरा काम

यह आर्य समाज का नियम भी है कि अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, प्रत्युत दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। हमारा दूसरा काम यह है कि हम अपने विचारों को जिनसे हमने लाभ प्राप्त किया है, जिन भावों से हमारा जीवन पवित्र बन गया है, उनको दूसरों पर प्रगट करें। यदि दफ़तर में हों तो वहां अपने साथ के बाबुओं को, यदि पाठशाला में हों तो अपने सहपाठियों को, यदि कहीं और स्थान में हों तो वहीं अपने भाव उनको दें, तात्पर्य यह है कि आर्यों का जीवन ऐसा हो कि जहां कहीं कोई आर्य्य जावे। वह वहां सन्ध्या और आर्य्य समाज की वार्ता करे। यदि ऐसा जीवन होगा तो वह भाव सब से प्रथम होगा जो प्रचार के लिये आवश्यक है॥

मुहम्मद का प्यारा

मैंने अपने व्याख्यान में बतलाया था कि मुहम्मद साहिब ने सब से पहिले अपनी स्त्री "ख़दीजा" को उपदेश दिया था जिस ने फिर स्त्रियों में प्रचार किया। एक दिन आयशा ने (जो इनकी दूसरी स्त्री थी) मुहम्मद साहिब से पूछा कि आप सब से अधिक और प्यारी स्त्री किसे समझते हैं। यद्यपि मुहम्मद साहिब आयशा से दबते थे तो भी वह न बोले, और उन की आंखों में आंसू आगये, और अन्त को उत्तर दिया कि मैं ख़दीजा को सब से अधिक प्यार करता हूं, क्योंकि सब से पहले वही मेरी सहधर्मिणी बनी थी, जब मैं एक साधारण मनुष्य था और

जब मैं अति क्षुद्र सा व्यापारी था और उस समय मैंने पैग़म्बरी का दाबा किया था तो भी वह मेरी सहधर्मिणी बनी, इस लिये मैं उसे ही अधिक प्रेम करता हूं (और वास्तव में बात भी ठीक है) उन का यह विचार था कि जो मुझ पर विश्वास करे (मेरा सहधर्मी बने) वही मुझ को प्यारा है, और जो उन के धर्म की बात दूसरे को कहे वही इन के लिये स्नेह के योग्य है। मुझे एक दिन देहली जाना पड़ा, मैंने वहां मसजिद में देखा कि एक मुसलमान के सामने दो हिन्दू बैठे हैं और मुसलमान उन को उपदेश दे रहा है। इस नियम ने उन के मन में किस दृढ़ता से स्थान पा लिया है कि जब कोई समय मिल जावे तो झट अपना भाव दूसरे पर प्रगट करें यह भाव सब से अधिक मुसलमानों में विद्यमान हैं आज कल इसी कारण से मिशनरी सोसायटी (ईसाई धर्म प्रकारक मण्डली) में पुकार हो रही है।

दक्षिणी अफ़रीका में आदि (मूल) निवासी ईसाई हैं परन्तु उत्तरी अफ़रीका किस के हाथ में होगा आज कल इस के विषय में बड़ी पुकार मची हुई है। एक पादरी ने कह दिया है कि यह भाग मुसलमान हो जायगा, हालां के मुसलमानों की नियमानुसार कोई संस्था नहीं है, और ईसाइयों की नियमानुसार संस्थायें और प्रचारक हैं। तो भी यह सोचा जा रहा है कि वह भाग शीघ्र मुसलमान होजायगा। कारण यह है कि जो मुसलमान व्यापारी वहां जाते हैं वह आप ही आप उपदेशक बन जाते हैं। वह अपने आचरणों से लोगों के मनों को आकर्षित करते हैं इस भाव ने ईसाई धर्म प्रचारकों को डरा

दिया है, अब आप अपने में देखें कि यह भाव कितना है हिन्दुओं में इस भाव के न होने से ही अवनति हुई है, जहां इस भाव का अभाव होगा वहीं अवनति होगी।

तीसरा काम

जिस को आर्य्य समाज ने करना है वह अपने मैम्बरों में भक्तिभाव को बढ़ाना है।

स्मरण रहे कि तीन प्रकार की शक्तियें मनुष्य को उच्च बना देती हैं विद्या, भक्ति और तपस्या। विद्या में कितनी शक्ति है, उपनिषद में आया है कि यदि एक ओर सहस्रों मूर्खों की मण्डली हो और दूसरी ओर एक विद्वान् वेद को जानने वाला हो तो उस एक की बात को अधिक प्रमाणित समझा जावेगा। फिर जिसमें यह तीन गुण हों वह अवश्य सफलता प्राप्त करेगा। जो भक्त और तपस्वी भी हों उन के सन्मुख कोई नहीं खड़ा हो सक्ता, गुरु नानक ने तपस्या की, यद्यपि वह उच्च श्रेणी की न थी, विद्या भी वह कुछ बहुत नहीं जानते थे, परन्तु भक्ति का भाव उन में उच्च श्रेणी का था, इस से देखें कि उन्हों ने किस प्रकार लोगों के हृदयों में घर कर लिया। कबीर जी भी विद्वान् न थे परन्तु भक्ति ने उन को कितना उच्च बना दिया। आप कई ऐसों को देखेंगे जिन में भक्ति नहीं प्रत्युत तपस्या है, वह भी सफलता प्राप्त कर लेते हैं।

और जहां यह तीनों इकट्ठी हों वहां फिर देखें क्या २ परिवर्तन होता है, एक बड़ी भारी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। बुद्धदेव, ईसा मसीह और मुहम्मद साहिब को देखें, बुद्धदेव ने तपस्या की,

ईसामसीह ने भक्ति की,मुहम्मद साहिब ने तपस्या की। यह तीनों विद्वान् न थे,इनमें से किसी में भक्ति और किसी में तपस्या थी। परन्तु वह कृतकार्य्य होगये जिस में जिस श्रेणी तक कोई वस्तु विद्यमान है। वह वहीं तक कृतकार्य्य होजाता है जिस समाज में तीनों शक्तियें विद्यमान हैं वह बलवान और प्रबल है।

यह तीनों साधन बहुत महान हैं परन्तु यह तब ही फलीभूत हो सकते हैं जब आदमी इन को अपने ऊपर घटायें, ईसाई पहिले कन्दराओं में चले जाते थे और तपस्या करते थे, सहस्रों पर केवल इसी बात ने प्रभाव डाला।

बाबा फरीद आदि बिलकुल निरक्षर थे परन्तु तपस्या का भाव इन में बड़े वेग से विद्यमान था। इस बात ने सहस्रों को बदल दिया। अब ज़रा आर्य्य समाज को देखें, इसे कोई ऐसी वैसी सभा नहीं कह सकते, यह एक सर्व गुण सम्पन्न समाज है, इस की नींव पूर्ण है, इस की बनावट पूर्ण है। चाहिये यह था कि इस में सन्यासी हों,बानप्रस्थी हों, जो आदर्श बन कर दिखलावें, जिन के जीवनों में नम्रता हो, ईश्वर प्रेम इन के जीवनों में समाया हुआ हो, जहां वह लोगों के जीवनों में कमी देखें वहीं उन के पूरा करने में लग जावें। हमारे पास तो सत्य है परन्तु जिन के पास सत्य नहीं और उन के पास आदमी हैं तो भी वह बढ़ जाते हैं, कारण यह है कि उन के आदमी भक्ति भाव को लेकर काम करते हैं, भक्ति उन का प्रथम साधन होता है। हमें चाहिये कि हम भक्ति से बढ़ कर:—

उन्मत हो जावें

मुझे क्षमा करें यदि मैं यह कहूं कि भक्ति की लहर हम

को आनन्द मय बनाती हुई उन्मत्त बना दे। इस का फल यह होगा कि हमारी यह उन्मतत्ता हमारे जीवनों को सुधार कर हमें आगे बढ़ने और दूसरों को सुधारने का उत्साह दिलावेगी। कदाचित् आप इन बातों पर हंसे, परन्तु मैं कहूंगा कि हम में भक्ति की ऐसी लहर उत्पन्न होजावे जो हमें उन्मत्त बना दे, हम अपनी धुन में लगे हुए लोगों को उन्मत्त प्रतीत हों, हमारा हृदय आनन्द के समुद्र में स्नान करता हुआ आनन्द-मय बन जावे। चेतन देव यदि आज कल विद्यमान होता तो लोग उसे उन्मत्त कहते, डाक्टर उसे नीम पागल के नाम से पुकारते, परन्तु उस ने कितना बड़ा काम किया है। यूरूप में बुरून ने एक सभा बनाई, पता लगायें, कि इस की क्या दशा थी, यह केवल पतलून पहिनता था और जहां कोई बड़ा पत्थर देखता था,वहां खड़ा होकर प्रचार आरंभ कर देता था, यदि वह आज होता तो लोग उसे उन्मत्त पुकारते। इन्हीं का क्या कहना यदि ईसामसीह (जिनका खान पान और वस्त्रादि ऐसे ही विचित्र थे)आज कल होते तो सौ में ९९ आदमी उन को अपने ही घर में न प्रवेश होने देते। परन्तु वह क्या थे वह एक प्रकाश थे। वह उन्मत्त बन गये और उन में एक ऐसी आकर्षण शक्ति आगई जिस ने लोगों को इन की ओर खैंचा। उन्मत्त लोग अपने शत्रुओं में से द्वेश भी दूर कर देते हैं। और प्राण घातक शत्रुओं के हृदय से भी शत्रुता नष्ट हो जाती है ज़रा देखें तो सही यह भक्ति की उन्मत्तता का दृश्य है। अब तनिक तपस्या की ओर आवें, आज कल कई मूर्ख तपस्वी आप को दिखाई देंगे। यदि आप के नगर में एक मूर्ख तपस्वी आता है तो सहस्रों उस

के दर्शनों को जाते हैं, आदर्श वाले पुरुषों की आवश्यकता है। यदि आप में सन्यासी और वानप्रस्थी हों और वह तपस्या करने वाले हों, विद्वान हों, उन की भक्ति उन्मतत्ता तक पहुंच गई हो तो वह लोग प्रभाव डाल सकते हैं। यह एक और साधन है जो धर्म प्रचार के लिये है। क्या आप ऐसे आदमी नहीं निकाल सकते जो प्रतिज्ञा करें कि वह जीवन पर्य्यन्त तपस्या करेंगे, या भक्ति में मन को लगा कर प्रचार का काम करेंगे। यदि वह यह नहीं कर सकते कि जीवन पर्य्यन्त काम करें तो कुछ समय के लिये ही साहस करें। और ऐसे आदमी उत्पन्न हो सकते हैं केवल थोड़े से पुरुषार्थ की आवश्यक्ता है॥

लोगों के काम आओ

चौथी बात जो मैं बतलाना चाहता हूं और जो धर्म प्रचार के साधनों में से एक आवश्यक साधन है वह यह है कि आप लोगों के काम आवें।

दूसरे धर्म वाले केवल इसी एक बात से कितने बढ़ गये हैं। जब अकाल पड़ता है तो दूसरे किस प्रकार बच्चों के पीछे पड़ते हैं। एक पिता उस समय अपनी जान के लिये बच्चों को बेच डालता है। आप उस के काम आवें उस के बच्चों को बचावें और उसे बचावें। एक विधवा है उसे अपने विवाह की धुन है वह केवल इसी लिये ईसाइयों की शरण लेती है आप उसके काम आवें और उसके धर्म को बचावें।

एक बीमार है उसे दवाई (औषधि की आवश्यक्ता है,

दवाई से प्यारा यद्यपि धर्म्म होना चाहिये, परन्तु वह अपनी शिथिलता के कारण दूसरों की शरण में जाता है, आप उस को दवाई देकर उसके आत्मिक और शारीरिक जीवन को बचावें। शिक्षा धर्म से निचली श्रेणी पर है परन्तु लोगों की अज्ञानता उन्हें मिशन स्कूलों में ले जाती है। आप प्रयत्न करें और उनके लिये विद्या का भण्डार खोलदें, और उनको पतित होने से बचावें। आर्य्य समाज यह काम बराबर करता चला आ रहा है, आवश्यक यह है कि आर्य्य समाज लोगों के काम आवे, जैसा कि दूसरे लोग समय देखकर काम में लग जाते हैं। जहां हम देखें कि लोगों को हमारी आवश्यक्ता है, जहां हम देखें कि कोई अपनी शिथिलता के कारण अपने आत्मिक जीवन को घायल करने लगा है, वहां पहुंच कर उसे थाम लें। मैंने संक्षेपतः चार बातें आपके आगे प्रगट की हैं, धर्म प्रचार के केवल यही साधन नहीं, प्रत्युत और भी हैं, आज मैंने केवल चार बातों की ओर आप को ध्यान दिलाया है, आप इन साधनों को अपने जीवन में घटायें और इनको बर्तें, धर्म की अग्नि आप में बड़े तेज से प्रचण्ड हो, भक्ति आप में इतनी बढ़े कि असीम होजाय आप में ऐसे २ विद्वान् हों कि जिस से आप को यह कहने का गौरव हो कि वेदों के वक्ता और उपनिषदों के विद्वान् यदि कहीं हैं तो आर्य्यसमाज में विद्यमान हैं। सब से उत्तम पंडित यदि कहीं पाये जाते हैं तो वह आर्य्यसमाज में, पदार्थ विद्या के विद्वान यदि पाओगे तो आर्य्य समाज में ही पाओगे, इतिहासज्ञ, दार्शनिक और विज्ञान के जानने वाले यदि मिलसकते हैं तो आर्य्यसमाज में। इसके

साथ ही भक्त उत्पन्न हों जो भक्ति से लोगों को खैंचें, तपस्वी हों जिनकी तपस्या देखकर लोग चकित हो जावें। यह साधन हैं जिनसे आर्य्यसमाज उन्नत हो सकता है और यही विधि है जिससे वेदों का उपदेश जगत् भर में फैल सकता है।

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने हम पर यही कर्तव्य लगाया है कि हम वेदोक्त धर्म्म को कोने२ तक पहुंचावें, आर्य्य भाइयो! अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देकर इन साधनों को वर्तो और अपने कर्तव्य से उऋणी होओ॥

नागरी पुस्तक

जो आर्य्य समाज अनारकली लाहौर से मिलते हैं—

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज कृत पुस्तक

संख्या	नाम		मूल्य
१	चारों वेद मूल (जिल्द वाले)	...	५)
	वेदों की अनुक्रमणिका	...	१॥)
२	ऋग्वेद भाष्य (१० भाग)	...	१८)
३	यजुर्वेद भाष्य (४ भाग)	...	८)
	,, भाषा भाष्य ...	...	२।)
४	ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ...	...	१/)॥
५	वेदाङ्ग प्रकाश १४ भाग ...	...	४।≡)॥
६	अष्टाध्यायी मूल ...	...	≡)॥
७	पञ्चमहा यज्ञ विधि ...	...	/)।
८	,, ,, बढ़िया ...	...	=)
९	निरुक्त	...	॥=)
१०	संस्कृत वाक्य प्रबोध ...	...	≈)
११	व्यवहार भानु ...	...	≈)
१२	भ्रमोच्छेदन ...	...	)॥।
१३	अनुभ्रमोच्छेदन ...	...	)॥।
१४	सत्यधर्म विचार (मेला चांदापुर)	...	/)
	आर्य्योद्देश्य रत्नमाला ...	...	)।
१६	गोकरुणा निधि ...	...	/)
१७	हवन मंत्र ~~	...	)।
१८	आर्य्याभिविनय बड़े अक्षरों का	...	।=)॥
१९	,, ,, ,, गुटका	...	=)॥
२०	सत्यार्थ प्रकाश ...	...	॥।≈)॥
२१	संस्कार विधि ...	...	।≈)
२२	विवाह पद्धति ...	...	≈)
२३	शास्त्रार्थ फ़ीरोजाबाद ...	...	/)॥

पं० आर्य्यमुनि जी कृत पुस्तक ।

संख्या	नाम	मूल्य
२४	गीता आर्य्य भाष्य	१॥=)
२५	भीष्मपितामह का जीवन चरित्र ...	।=)

पं० राजारामजी कृत पुस्तक ।

संख्या	नाम	मूल्य
२६	उपदेश सप्तक	।-)
२७	प्रार्थना पुस्तक	-)।
२८	शंकर जीवन	।=)
२९	योगदर्शन	॥।)
३०	उपनिषदों की भूमिका	)॥
३१	ईश उपनिषद्	=)
३२	केन उपनिषद्	=)
३३	कठउपनिषद्	।=)
३४	प्रश्न उपनिषद्...	)
३५	मुण्डक उपनिषद् माण्डूक्य उपनिषद ...	।-)
३६	तैत्तिरीय उपनिषद्	।=)
३७	ऐतरेय उपनिषद्	=)
३८	छान्दोग्य उपनिषद्	२)
३९	बृहदारण्यक उपनिषद्	२=)
४०	श्वेताश्वतर ,, ...	।)॥
४१	ग्यारह इकट्ठी उपनिषदें	५॥=)
४२	पहली आठ	१॥=)
४३	ओंकार की उपासना	)॥।
४४	वाल्मीकि रामायण पूरा	५।)

साधारण धर्म्म सम्बन्धी पुस्तकें ।

संख्या	नाम	मूल्य
१	धर्म्म शिक्षक	।=)
२	संक्षिप्त मनुस्मृति (म० हंसराज जी द्वारा सङ्कलित) भाषा टीका	॥)

संख्या	नाम	मूल्य
४७	शुद्धि पं० रामचन्द्र शास्त्री... ...	=)॥
४८	मनुस्मृति पं० तुलसीराम... ...	।।।)॥
४९	वीर्य्य रक्षा	/)॥
५०	गर्भाधान विधि	=)
५१	नारी भूषण	।/)
५२	नारी धर्म्म विचार	॥)
५३	क्षात्र धर्म्म	॥)
५४	सीताजी का जीवन चरित्र ...	।।।)
५५	व्याख्यान माला	।=)
५६	भारतवर्ष का इतिहास	१।)
५७	स्त्री सुबोधिनी	१।)

भजन पुस्तक।

संख्या	नाम	मूल्य
५८	सङ्गीत रत्न प्रकाश, १—५ भाग ...	।।।)
५९	ज्ञान भजनावली	॥)
६०	स्त्री भजन भण्डार	।=)
६१	स्त्री ज्ञान प्रकाश	=)॥
६२	शान्ति सरोवर	/)
६३	आर्य्य गायन	।≡)
६४	गंजीना भजन	।≠)
६५	संग्रह गुलजार भजन	≡)
६६	संङ्गीत पुष्पावली	॥)
६७	स्त्री भजन	/)

स्त्री शिक्षा की पुस्तकें।

संख्या	नाम	मूल्य
६८	नारी धर्म्म विचार २ य भाग ...	१॥)
६९	सीता चरित्र ४ भाग ...	१।/)
७०	नारायनी शिक्षा ...	१=)

संख्या	नाम			मूल्य
७१	भारत की वीर विदुषी स्त्रियां	...	...	॥)
७२	सीता जी का जीवन	...	...	॥)
७३	गृहिणी	...	...	॥)
७४	स्त्री हितोपदेश	...	...	॥)
७५	स्त्री आरोग्यता	...	...	।)
७६	भारत की सच्ची देवियां	...	...	।)
७७	सीता चरित्र नाटक	...	...	।)
७८	चन्द्रकला	...	...	।)
७९	लक्ष्मी	...	...	।)
८०	युवा रक्षक	...	...	≈)
८१	गृह शिक्षा	...	...	≈)

पं० सन्तरामजी वेदरत्न कृत पुस्तकें।

८२	शुद्ध रामायण १-५ भाग...		...	१।)
८३	नमस्ते प्रकाश	...	...	≈)
८४	नवग्रह समीक्षा	...	...	≈)
८५	आर्य मीमांसा	...	...	≈)
८६	पांच से कम नहीं	...	...	)॥
८७	स्वा० द० का हिन्दु जाति पर उपकार		...	)॥
८८	श्राद्ध विचार	...	...	)।
८९	संस्कार क्या हैं	...	...	≈)
९०	धर्म्म प्रचार के साधन	...	...	≈)
९१	स्वामी जी का जीवनचरित्र		...	१≈)

॥ ओ३म् ॥

ॐ आर्य्य समाज के नियम ॐ

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

॥ ओ३म् ॥

गर्भाधान बिधि

जिस में

धातु और उसके गुण, स्त्री प्रसंग, गर्भनिधान, उत्तम सन्तान की बिधि, गर्भ परीक्षा, उसकी रक्षा, गर्भ में सन्तान की परीक्षा, गर्भवती का कर्त्तव्य, गर्भपात के लक्षण, और उसकी चिकित्सा, प्रसवकालमें प्रसूता की रक्षा, सन्तान न होने के कारण और उसका उपाय शिशुपालन, व कठिन रोगों की चिकित्सा का वर्णन है जिससे अनेकान सन्तान मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं उन के उपाय प्रमाणिक ग्रंथों और चतुर वैद्यों की सम्मति से लिखे गये हैं।

जिस को

चिम्मनलाल वैश्य कासगंज निवासी ने

मुद्रित किया

जिसपर

श्रीमान् राजा नरायणसिंह साहब वर्म्मा वैकुण्ठवासी ने गुण ग्राहकता की दृष्टि से पंचीस रुपये पारतोषिक प्रदान किये।

रजिस्टर्ड वमूजिब एक्ट २५ सन् १८६७ ई०

प्रथमबार ११००] ता० २०।२।१९११[मूल्य ≈)॥

मुं जानकीप्रसाद वर्म्मा के अर्याविनोद प्रेस अलीगढ़ में छपा।

ॐ

अपूर्व ! आश्चर्य जनक !! अतीव गुणदायक !!!

३६ वर्ष की परीक्षित बल पैदा करनेवाली

यदि फायदा न करे तो दाम वापिस—

मूल्य केवल दो रुपये सेर पैकिंग का डाकखर्च ।≡)

युवति प्रौढ़ रसायन अर्थात्

सुहाग-सोंठ पाक

प्यारे सज्जनों और बहनों ?

उक्त रसायन का सेवन हमारी बहनें ३६ वर्ष से कर रही हैं परन्तु पुरानी दवाओं के न मिलने तथा बनाने में हमारी युवतियों को बहुत ही कष्ट होता है और हर साल मांग पर मांग आती है अतएव इस साल से हमने अपनी बहनों के कल्याणार्थ उक्त पाक को अपने घर खास प्रबन्ध से सम्पूर्ण औषधियों तथा स्वदेशी शक्कर द्वारा यथा विधि शुद्ध रीति से तय्यार किया है । लीजिये यदि आपको श्रेष्ठ बल युक्त संतान पैदा करना है तो शीघ्र उक्त रसायन का सेवन कराइये यह भी स्मरण रहेकि यहवही अद्भुत और जादूकीतरह तत्काल प्रभाव दिखानेवाली औषधि है जिसका यश जगत्में विख्यात होरहाहै

यही—दुर्बलता आलस्यादि अर्थात् दुष्ट रोगों से छुटा कर पूरी २ तन्दुरुस्ती को देती है । इस के सेवन से युवावस्था अपना चमत्कार दिखाने लगती है मानो वृद्धाओं के लिये जवानी का मन्त्र है क्योंकि पौष्टिक औषधियों में सर्वोपरि शक्ति का अटूट भण्डार है । इस से भूख खूब लगती है । अन्न का भले प्रकार पाक होकर दस्त बहुत साफ होताहै बस अब आप से यही निवेदन है कि इस का सेवन कर मनोकामना सिद्ध कीजिये ॥

लोचनामृत अञ्जन

इस के लगाते २ ही नेत्रों में ठंडक पड़ती है नजले का पूरा शत्रु है सर्व प्रकार के रोग दूर होकर प्रकाश बढ़ाता है । मूल्य केवल चार आने तोला ॥ डाक खर्च अलग ।

दन्त मंजन

इस के लगाते ही दांतों का दर्द जाता रहता है दांत मोती के समान चमकने लगते हैं मूल्य एक तोला । डा०ख० अलग ।

पता—चिम्मनलाल भद्रगुप्त वैश्य

तिलहर जि० शाहजहापुर.

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

ओ३म्-विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्नआसुव ॥ य० अ० ३ म० ३ ॥

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के कर्ता समग्रगुणैश्वर्य युक्त (देव) शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम) कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हम को (आसुव) प्राप्त कीजिये।

निवेदन

यह बात प्रगट है कि प्राणी मात्र के लिये आरोग्य और स्वस्थ रहने का मुख्य कारण धातुओं की पुष्टि है जिस की धातु में क्षीणता तथा स्वल्पता एवं विकार होजाता है वह अवश्य किसी न किसी रोग में ग्रस्त होजाता हैं इसका परिणाम यह होता है कि या तो वह शीघ्र ही मृत्यु के कराल मुख में प्रवेश करता है या सदैव के लिये किसी महान रोग में फंसकर गृहकार्यों और विद्योपार्जन और ईश्वराराधन द्रव्योपार्जनादि सत्कर्मों से असक्त रहता है उसका जीवन जन्म भर के लिये निष्फल ही नहीं किन्तु दुःखदाई होजाता, है इस के उपरान्त सन्तान अल्पायु और निर्बल होजाती है क्योंकि

जीव सामान्यता से सम्पूर्ण शरीर में रहता है विशेष कर वीर्य और शुद्ध रक्त में, यदि इन में क्षीणता हुई तो शीघ्र ही शरीर का नाश होजाता है।

इस कथन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि शरीर में सब खेल वीर्य ही का है इसी से प्राचीन भारत पुरुषों ने २५, ३० ३६, ४० और ४८ वर्ष तक वीर्य के रोकने की आज्ञा की है और यही समय विद्या पढ़ने का नियत किया है जिसको ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं, इसी आश्रम के बनने से शेष गृहस्थ वाणप्रस्थ और सन्यास आश्रम यथावत् बनने की आशा होती है वरन बीज रूपी वीर्य के बिगड़ने से बृक्षरूपी शरीर कभी हृष्ट पुष्ट नहीं होता क्योंकि सुश्रुत में लिखा है कि इस शरीर की चार अवस्था होती हैं पहिली 'बृद्धि' जो १६ वर्ष से २५ वर्ष तक होती जिस में सब धातुओं की बढ़ती होती है दूसरी 'योवन' जो २६ वर्ष के आदि से आरम्भ होती है तीसरी 'सम्पूर्णता' जो ४० वर्ष तक होती है जिस में सब धातुओं की पुष्टि होती है चौथे 'किञ्चित' हानि जब सब शरीर में पूर्ण प्रकार से सकल धातु पुष्ट होजाते हैं तदनन्तर जो धातु भोजनादि से बढ़ता वह शरीर में नहीं रहता।

इस से सिद्ध हुआ कि जो अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का यथावत सेवन कर विवाह करने के पीछे सुनियमानुसार प्रसंग करते हैं वेही जीवन के आनन्दों को पाते हैं, जब तक इस देश में इस का प्रबन्ध रहा उन्नति ही उन्नति होती रही, उस समय भारत रत्न की खान, विद्या और बलका घर, साहस और उद्योग का झण्डा, परोपकार और सत्य-परायण का खम्भ था। देखिये इसी भूमि से यूनानियोंने शिक्षा पाई, मिश्र वाले भी यहां के शिष्य हुए और अरब

वाले भी इसी घर की बदौलत बन बैठे मुख्य तो यह है कि भारत पूर्व समय में सम्पूर्ण संसार के अर्थ सञ्जीवनी गुटिका और कामधेनु गाय थी अर्थात् यहां के मनुष्य वैयाकरण, चिकित्सक, सांगीत के गुरु कवीश्वर ज्योतिषी राज्य प्रबन्ध कर्त्ता, शूरवीर, शिल्पज्ञ, ब्यौपारी तथा ज्ञानी, तत्वदर्शी, महात्मा और विद्वान् इस भारत भूमि में हुए, सो अब वर्तमान समय में वह तत्वदर्शी वह शूरवीर वह सुभट वह धन, वह बल बुद्धि के देव, वह आनन्द, वह स्वतन्त्रता, वह प्रतिष्ठा कि जिस से भारत वासी गण समस्त पृथ्वी पर राज करने के योग्य गिने जाते थे, हाय हाय ! ! सब के सब काल के कराल मुख में आकर पिसगए इस के उपरांत इस देश से विद्या ने मुख मोड़ा और अविद्या ने राज्य किया, जिस से भारत का भारत होगया हा शोक हा शोक हा शोक ॥

देखो प्रत्यक्ष में अंगरेज लोग जो उन्हीं नियमों को यथावत पालनकरते हैं उन की कैसी सुन्दर सन्तान विद्या बुद्धिके देव साहस और पराक्रमके भरे हुए निरोग दीर्घायु वाले होते हैं, जो अपनी बुद्धि और चतुराई से कैसे २ उत्तम कार्यकर रहेहैं जिनको भारतीजन देखकर चकित रहजाते हैं

कैसे परम शोक का स्थान है कि मनुष्य इस बीर्य को तुच्छ और असार समझ नष्ट और विनष्ट करने में कुछभी शंका नहीं करत और बृथा विषय करने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं, जिस के कारण निर्बलता के उपरान्त अपने मान्य और बड़ाई को भी हाथ से खो बैठते हैं और इस की अधिकता से शारीरिक समाजिक आत्मिक तीनों प्रकार के

सुखों पर पानी फेर कर अपनी संतानों के आनन्दों को खोदते हैं जिस के प्रमाण की कुछ आवश्यकता नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष ही भारत सन्तान नाना रोगों में फंसी हुई है इस विषय में जिनको अधिक देखना हो मेरी बनाई हुई वीर्य रक्षा में देखलें जिस का मूल्य केवल ≈) है ॥

कि वृथा वीर्यव्यय करनेसे क्या२ कुदशा होती है।

इस लिये हे मेरे प्यारे भाइयो और शुभचिन्तको कृपा कर कम से कम २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य को सेवन कर विवाह करो पश्चात सुनियमानुसार स्त्री प्रसंग करो जिस से पूर्वोक्त गुण भारत में शीघ्र आजावे नहींतो यह देश रोग निर्बलता अल्पायु और मूर्खता में फसते २ किसी दिन अवश्य जड़ मूल से उखड़ जायगा।

भारत बासिनी स्त्रियों से निवेदन

हे प्यारी स्त्रियो! आप को भी तो यह बीमारियां क्लेशित करती हैं और तुम सब प्रकार से उदास रहती हो क्योंकि विद्या का नाम तक तुम्हारे कानों में नहीं पहुंचता न्यून अवस्था ही से चौपायों की भांति नाथ दी जाती हो जिस के अपार दुःख मरण तक भोगती रहती हो, इसके उपरान्त शिशुपालन और गृहस्थाश्रम के धर्म से भी भेदू नहीं होती और न इस लोक न परलोक के स्वादों से भेदू होती हो रात्रि दिन विषय क्रीडा में लिप्त रहकर आप और अपने पति को वृद्ध अवस्था में पहुचा देती हो कि जिस से शीघ्र ही सिर हिलने लगता है और तुम्हारी प्यारी सन्तान भी उत्तम बलवान दीर्घायु वाली नहीं होती और तुम को शूल खांसी, दमा, प्रदर, गर्भस्राव आदि रोग घेरे रहते हैं इस लिये उस रीति के अनुसार जो मैंने आप के अर्थ प्रमाणिक ग्रंथों

से लिखी हैं यथावत् पालन करो और अपने पति को भी सतज्ञाती रहो कि वह भी नियमानुसार ही वर्ताव करे।

हे युवतियो ! १६ वर्ष से प्रथम पुरुष से कभी स्वप्न में भी प्रसङ्ग न करो तत्पश्चात सदा रीति के अनुसार गर्भाधान और शिशुपालन आदि क्रिया करो, देखो विपरीति रीति के अनुसार चलने से इस देश की यह दुर्दशा होगई।

हे भारतवासिनियो ! प्राचीन स्त्रीजन इन नियमोंके पालन करने से ही बड़ी २ चतुर और बुद्धिमती और सुसन्तान हुई क्या तुमने श्री सीताजी का नाम नहीं सुना कि जिन्हों ने शीश महलोंके भोग बिलास को त्यागकर जङ्गलोंके अपार दुःखों को सहन किया,और दमयन्तीने राजा नलके त्यागने पर भी अपने पति को नहीं त्यागा, और द्रौपदीने अपने पुत्रों के मारे जाने पर भी धर्मानुसार गुरु के पुत्र को बचाया अनुसुइया ने कैसा ज्ञानोपदेश सीताजी को किया मन्दोदरी ने अपने पति रावण को कैसा उपदेश सीता हरने पर किया था, लीलावती का विद्या के प्रभाव से सारे संसार में नाम होगया, विद्याधरी अबतक प्रसिद्ध पण्डिता गिनी जाती है, अहिल्याबाई ने बहुत उत्तम राज्य प्रबन्ध किया था अब आंख पसारकर देखो तो श्रीमहाराणी स्वर्णमयी और महाराणी युमनाबाई बड़ोदा और श्री बेगम साहिबा भूपालकैसा उत्तम प्रबन्ध करती हैं और श्रीमान् अङ्गरेजों की मेमसाहिबा कैसी सुन्दर स्वच्छ बल सहित दृष्टि आतीं हैं, क्या तुम ने श्री महाराणी विकटोरिया कैसरहिन्द का नाम नहीं सुना जिनके राज्य में शेर बकरी एक घाट पानी पीते और सर्व-जन आनन्द से कालक्षेप करते धन्य! धन्य!! धन्य!!! क्या

तुमने कभी मेम साहिबों को नहीं देखा भारत के बाजारों में आनन्द पूर्वक शोभाओं का अवलोकन करती हुई दृष्टि पड़ती हैं जिन में नानागुण विद्यमान हैं हाय कैसे सोच का स्थान है कि यह स्त्रियां अपनी आयु को आनन्द मङ्गलसे व्यतीत करें और भारत की स्त्रियां लड़ाई झगड़ा आदि असत्कर्मों में व्यय करें, तिसपर भी कभी नेत्रों को न खोलें गृहस्थाश्रमअर्थात् नारायणी शिक्षाका छटाएडीसन देखलो १।)

हे भारत के प्रकाश करनेवाली युवतियों ! अब सब प्रकार से विद्या का बाजार गर्म है आप भी निद्रा को छोड़ विद्या रूपी अमृत का पान कर शीघ्र सुनियमानुसार चल निकलो कि जिस से नाना भांति के रोग जो भारत को जीर्ण कर रहे हैं आपके उत्साह करते ही संकट जावें, यदि आप सुनियमानुसार चलो तो शीघ्र ही बलवान ज्ञानवान् सज्जन दीर्घायु वाले निरोग पुत्र पुत्री उत्पन्न होने लगें, तो फिर सतयुग वर्त्तमान होजावे, लो अब कृपाकर इस ओर ध्यान दीजिये यह आपके लिये सञ्जीवनी गुटिका है आप की यह कुदशा देखकर मुझ को अब रोना आता है, इस लिये मैं और मेरी स्त्री आप से विनय पूर्वक विनय करते हैं किआप कृपाकर इस पुस्तक को एकबार पढ़कर दत्त चित्त हो इसके अनुसार बर्त्ताव कीजिये, फिर देखिये कैसा आनन्द औरसुख मिलता है, मुझको आशा है कि फिर कभी इन दुःखों के स्वप्न में भी दर्शन न होंगे।

६ जनवरी सन् १९०१ स्थान तिलहर जि० शाहजहांपुर	देश का हितैषी चिम्मनलाल वैश्य कासगञ्ज निवासी

॥ ओ३म्

गर्भाधानविधि

वीर्य्य की उत्पत्ति और उस के रहने का स्थान और गुण

प्रति दिन जो भोजन मनुष्य--स्त्री करते हैं वह पक्काशय में पहुंच जठराग्नि द्वारा आमाशय अर्थात् नाभि और बक्ष-स्थल के बीच में जाकर पचता है उससे दो वस्तु उत्पन्न होती हैं एक प्रसादाख्य रस और दूसरा किट्ट जिसको मल कहते हैं प्रसादाख्य रस में जो निकृष्ट कीट का अंश है उस से मल, मूत्र, पसीनां, बात, पित्त, कफ, आंख, नासिका और मुखादि का मल बनता है और रस के मध्य मांस स रोम, कूप, केश, डाढी, मूंछ, रोम, और नखादि उत्पन्न होते हैं।

प्रसादाख्य रस से रक्त और उस से मांस और मांस से मेदा (चरबी) मेदा से अस्थि (हड्डी) और उस से मज्जा और मज्जा से शुक्र अर्थात वीर्य्य नित्य प्रति इसी प्रकार उत्पन्न होते रहतेहैं जैसा कि गाड़ी का पहिया घूमता रहता है यही सोता शरीर को धारण करते हैं--इसी लिये इनको धातु कहते हैं।

प्रिय वरो! जैसे ईख में रस, दही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहता है उसी भांति शरीर का राजा सब देह और त्वचा में रहता है जिस प्रकार फूल की कली में सुगन्धि आदि से ही होती है परन्तु बिना खिले जानी नहीं जाती उसी भांति शरीर का राजा बालक पन से शरीर के साथ

ही उत्पन्न होता है परन्तु बिना युवा अवस्था आये उसकी उपलब्धि नहीं होती।

इसी के द्वारा मनुष्य सब प्रकार के कार्य करने को सामर्थ्यवान् होता है। यही गर्भ का बीज और जीव का परम आशय है।

जब स्त्री और पुरुष के संसारी सम्बन्ध से गर्मी उत्पन्न होकर वायु को उत्कट कर देती है तब उस गर्मी और वायु के संयोग से वीर्य्य अपने स्थान को छोड़ स्त्री के गुह्यस्थान में गिर स्त्री के रज से मिल कर गर्भाशय में चला जाता है, तब ही गर्भस्थित होकर सन्तान उत्पन्न होती है इसी क्रिया को गर्भाधान कहते हैं जैसा कि—

गर्भस्याऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणम्।
यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्॥

ऋतु काल।

स्त्री स्वाभाविक रीति से प्रति मास रजस्वला होती है। उस दिन से १६ दिन तक प्रसङ्ग करनेकी अवधि है उसी को समय और ऋतु काल कहते हैं।

रज के निकलने के समय दर्द न हो रुधिर कम न निकले उस के निकलने से चित्त प्रसन्न हो इस के उपरान्त रुधिर की भांति धब्बा न जमे और जब दर्द हो और रुधिर का रङ्ग फीका व पीला हो और रज थोड़ा निकले वा अधिक हो गर्भ भी नहीं रहता रज निकलने की अवधि ३० वर्ष तक है। जब यह रज बंद होने को होता है तो स्त्री में निम्न लिखित गुण होते हैं।

प्रथम स्त्री मोटी होती जाती है रज अधिक निकलता है

मांस में हाड़ छुप जाते हैं जब महीने से प्रथम और महीने के ऊपर स्त्री धर्म हो तो उस का उपाय करना आवश्यक है बहुधा स्त्री जन्मभर स्त्री धर्म नहीं होतीं उन को बांझ वा पुरुष बन्ध्या कहते हैं।

रजस्वला का धर्म

(१) तीन दिन तक कोई पदार्थ न छुये (२) परिश्रम भी न करे (३) दिन में शयन त्याग दे (४) अंजन उवटन, रुदन, नख काटना, दौड़ना, बहुत हंसना, उच्चस्वर से बोलना, बादी भोजन न करना चाहिये (५) मैथुन का त्याग करना उचित है (६) कठोर शब्दों को न सुनें, कंघी से केश न काढ़े (७) पंखे से वायु न करे।

हे सुन्दरियो सुश्रुत कार आज्ञा देते हैं कि जो स्त्री दिन में सोती हैं। उसका बालक निद्रालु और आलसी होता है और अंजन काजल लगाने से अन्धा, रुदन करने से विकार दृष्टिवाला स्नान करनेऔर जल सेवन करने से दुःखी तैल लगाने से कोढ़ी, नख काटने से नख रोग, दौड़ने स चंचल, हंसी करने से काले दांत बाला, अति भाषण से बकवादी भयंकर शब्दों के सुनने से बहरा अवषलेखन से खल्वाट, पवन सेवन से मत्तः बालक होता है इस लिये तुम इन दिनों किसी प्रकार की सजावट न करो और न पुरुष का दर्शन करो केवल एकान्त में रहकर व्यतीत करो जब रज का निकलना बन्द होजावे तो स्नान कर निर्मल वस्त्र धारण कर, नाना भांति से श्रृंगार कर इस के पश्चात यह भी स्मरण रहे कि स्नान के पश्चात् प्रथम जिस पुरुष का दर्शन करेगी उसी के तुल्य प्रसन्न जनेगी इस कारण

अपने पति या पुत्र या पुत्री अथवा और किसी रूपवान् सम्बन्धी का दर्शन करले और सदा उसी का ध्यान बनाये रहे जिस से स्वरूपवान् सन्तान हो।

जिस प्रकार प्रथम की चार रात्रियां निन्दित हैं उसी प्रकार ग्यारहवीं तेरहवीं रात्रि त्यागना चाहिये इसके तद नन्तर पूर्णमासी अमावस्या अष्टमी का भी निषेध किया है शेष दस रात्रियों में सम अर्थात् छठी आठवीं बारहवीं रात्रियों में गर्भ रहने से पुत्र बनेगी क्योंकि इन दिनों में पुरुष के वीर्य्य की उन्नति होती है और बाकी विषय अर्थात पांचवी सातवीं नवीं पन्द्रहवीं रात्रियों में गर्भ रहने से पुत्री उत्पन्न होगी इस हेतु से कि इन दिनों में स्त्री के रज रज उन्नति होती है---

इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि पुरुष के बीज के अधिक होने से पुत्र और स्त्रीकेरज अधिक होनेसे पुत्री उत्पन्न होती है और दोनों के तुल्य होनेसे नपुंसक और कम होने से गर्भ ही नहीं रहता। रजोदर्शन के जितने दिन पीछे गर्भाधान किया जायगा उतनीही श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न होगी यहां तक कि १६ दिन की सन्तान अधिक गुणवाली होती है इस लिये सन्तान के अर्थ उपरोक्त रात्रियों में पुत्री वा पुत्री के अर्थ एक२ बार प्रसङ्ग किया करो और दिवस में इस क्रिया को कदापि न करो सदा रात्रि के ग्यारह बजे के पश्चात् दो बजे तक इस क्रिया के करने का समय है परन्तु पेट भरे, भूक लगने अधिक गर्मी और परिश्रमकरने के पीछे आलस्य में वहुतजाड़ गर्मी और क्लेश क्रोध नशेकी दशामें इस कार्य को कदापि न करना चाहिये ऐसे समय में सम्भोग करनेमें नानाप्रकार की हानि होती हैं जब पुरुष के शरीर से राजा के निकलने

का समय हो तब दोनों सद्भाव को प्राप्त हो स्त्री अपनीगुह्य इन्द्रिय को स्वांस से ऊपर खैंच कर वीर्य को गर्भाशय में स्थिर करे । तत्पश्चात् मनुष्य थोड़ी देर बाद पृथक होकर मूत्र त्याग करे स्त्री तीन चार मिनट उसी भांति लेटकर पीछे होले से उठ शीतल जल से गुह्यस्थान को शुद्ध करे इस के उपरान्त एक घण्टा वा डेढ घण्टे के पश्चात् ग्रीष्म में गुनगुने और शीत में गर्मजल से किञ्चित दोनों स्नान करें कि जिससे शरीर की गर्मी शान्त होजावे, तदनन्तर केशर४रत्ती, सालिब मिश्री ४ माशे, शकाकुउल मिश्री ४ माशे, इलायची सफेद २ माशे, बंशलोचन २ माशे, दारचीनी २ माशे, उटङ्गनके बीज २ माशे, मिश्री १ तोला इन सबको पीसकर सम्पूर्ण एक बार फांककर ऊपर से ऽ।। सेर गाय के दूध में एक छटांक मिश्री मिलाकर पूरी ताकत वाले को पीना चाहिये और कम बलवाले को आधी खाना चाहिये पश्चात अपने २ स्थान पर सोवे जब गर्भ स्थित होजावे फिर कदापि स्त्री प्रसंग न करे क्योंकि प्रथम तो वीर्य दोनों का निष्फल जाता है, दूसरे गर्भपतन होजाने का भय है, तीसरे वृथा वीर्य नष्ट करने से नाना प्रकार की हानि होती है जिनका विशेष वृत्तान्त जानना होतो मेरी बनाई हुई हिन्दी वीर्य रक्षा या उर्दू हिफाजत मनी, में देखलें ।

उत्तम सन्तान के उत्पन्न करने की बिधि

जैसे ऋतु, क्षेत्र, जल और बीज इन चारोंके उत्तम होने पर बिधि पूर्वक संयोग से उत्तम अंकुर उत्पन्न होता है उसी प्रकार ऋतुकाल (ऋतु या समय) क्षेत्र (गर्भाशय) जल (अहार के पचने पर उत्पन्न हुआ रस) बीज (शुक्र

और आर्त्तव) के नियमानुसार संयोग से उत्तम गर्भ उत्पन्न होता है ॥

इसलिये उत्तम, उद्योगी-धर्मात्मा—सन्तान चाहने वाले पुरुषों को योग्य है कि वह शुद्ध और बहुत वीर्य वाला हो कर २५ वर्ष की आयु में १६ वर्ष वाली ऐसी स्त्री से प्रसंग करें कि जो शुद्ध योनि रक्त और गर्भाशय वाली हो ।

(२) स्त्री को ऋतु स्नान के दिन से उत्तम जौ का मन्थ घीशहत और गौर वर्ण वाली ऐसी गायका दूधकि जिस का बछड़ा भी श्वेत वर्ण का हो चांदी वा कांसे के पात्र में मिलाकर भूख लगने पर सातदिन खिलावे प्रातःकाल शालि अन्न वा जौ के पदार्थों को दही, घृत, शहत अथवा दूध के साथ खवावे और सायङ्काल के समय उत्तम घर में, उत्तम पलङ्ग आसन, यान पर वस्त्र भूषणादि से अलंकृत कर के बिठलावे । शान्ति प्रदायक, सुन्दर, मनोनुकूल कथा वार्त्ता सुनाता रहे—इसके अतिरिक्त उस को सुन्दर आकृति वाली शीतल बचन बोलने वाली शुभाचरणी स्त्री पुरुषों से मिलावे और उत्तम २ दिल के प्रसन्न करने वाली वस्तुओं को दिख लावे सात दिनतक बस इस प्रकार कर्म करते हुए स्त्री और पुरुष दोनों ब्रह्मचारी रहें फिर आठमें दिन देहपर उबटनादि लेपन करके दोनों सिर से स्नान करें—सुन्दर—स्वच्छ वस्त्रों, माला और आभूषणों को धारण करें—

फिर ऋत्विज को बुलाकर पुत्र के चाहने वाली स्त्री अपने पति के साथ अग्नि के पश्चिम और ऋत्विज के दक्षिण में बैठकर महाव्याहृतियों का उच्चारण कर २ विधि पूर्वक हवन करें फिर उसकी समाप्ति पर ब्राह्मण लोग स्वास्तिवाचन के

पश्चात यज्ञ शेष को प्रथम पुरुष फिर स्त्री को खिलावे फिर रात्रि के समय रीत्यनुकूल आनन्दपूर्वक वार्त्तालाप करते हुए क्रोधादि दोषों से रहित हो रमण करें ।

उत्तम सन्तान होने के निमित्त वैद्यक में अनेकान औषधियां लिखी हैं उन में से एक हम भी लिखते हैं ।

दो खण्ड आवांहल्दी दूसरे खानेकी हल्दी, चन्दन का चूरा, कुछ जटामासी, मीरवेक शिलाजीत, केशर, मुस्ता, भमभोथ, इन सब का चूर्ण कर के सब समभाग लेके गूलर के पात्र में गाय के दूध के साथ मिला उसका दही जमा और गूलर के मथन से माथि कर उसमें से मक्खन निकाल उस को तपाय घृत कर के उस में सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची और जावित्री मिलाके एक सेर दूध में छटांकभर पूर्वोक्त सर्वोषधि मिला सिद्ध होने के पीछे एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी मिला कर जिस रात्रि में गर्भ स्थापन क्रिया करना हो उस के दिन में वेद के अनुसार होम कर के उसी घीको दोनोंजन खीर अथबा भातकेसाथ मिलाकर यथा रुचि भोजन करें तो सुशील विद्वान दीर्घायु तेजस्वी, सुदृढ़ और निरोग पुत्र उत्पन्न होवेगा, यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या होगी इसी भांति और सुश्रुत में बहुत औषधियां लिखी हैं

नोट

यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जांय अर्थात् दो बार गर्भाधान

क्रिया निष्फल होजाय और गर्भस्थित न होवे तो उसके अर्थ एक ग्रन्थकार ने निम्न लिखित उपाय लिखा है उस को उपकारी जान हम यहां लिखते हैं ।

जब तीसरे महींने ऋतुकाल का समय आवे तब पुष्य नक्षत्र ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थि होवे तब जब अर्थात् जौ के दानों को सेंक के पीसकर दो माशे और गायका दही दो माशे लेकर इन दोनों को एकत्रकर पत्नीके हाथ में दे, फिर उस से पूछे 'किं पिबसि' इस प्रकार तीन बार और स्त्री भी अपने पति को 'पुंसवनम्' इस वाक्य को तीन बार बोलकर उत्तर देवे और इसी रीति से पुनः तीनबार करे तत्पश्चात् शंखाहूली व भट कटाई ओषधि को जल में महीन पीसकर उस को कपड़े में छान पति पत्नी की नाक के दाहिने छिद्र में सिंचन करे और दोनों परमेश्वर से प्रार्थना करें ॥

गर्भाधान के पश्चात स्त्रीके कर्त्तव्य कर्म

जब स्त्री गर्भवती हो जावे तब लक्षण, बड़की कोंपल, सहदेई विश्वदेवा (गुड़ सकरी अथवा गंगेरू की कोई २ इन को सफेद फलवाली बला कहते हैं) इन में से किसी एक को दूध के साथ पीसकर तीन या चार बूंद पुत्रकी इच्छा करने वाली स्त्री को दहने नथने द्वारा सुंघावै और थूकने न देवे ।

गर्भ की परीक्षा

जब स्त्री गर्भवती होती है तो वह ऋतुवती नहीं होती और स्तन का मुंह छोटा पड़जाता है नेत्रों के पलक चिपटने लगते हैं पथ्य भोजन खाने पर भी वमन होती है मुख में थूक भरा रहता है और बिना भोजन किये भी तृप्ति सी रहती है हाथ पांव भारी मालूम होते हैं आराम की लालसा प्रति

समय रहती है अर्द्ध नीचे के अंग में आलस्य अधिक रहता है और कभी २ दर्द शिर में भी होने लगता है और सोंधी खट्टी नमकीन चीजों को खाने को जीचाहता है और कोख फड़कती हैं, रक्तश्राव न होना, कलेजे का धक २ करना प्यास का कम होना और रोमों का खड़ा होना इत्यादि लक्षण से जाना जाता है कि स्त्री गर्भवती है, यदि इसकी परीक्षा करनी होतो शहद को पानी में मिलाकर पिलाने से नाभि में दर्द होगा, और स्त्री को प्रसंग करने की भी इच्छा नहीं रहती यदि ऐसे समय में विषय किया जाय तो नाभि में गर्भाशय तक दर्द होता क्योंकि उन दिनों में गर्भाशय बन्द होजाता है और चार माह बाद दर्द जाता है।

गर्भवती स्त्री क्या करें जिस से कि गर्भ पतन न हो

सदा शरीर को स्वच्छ रखना चाहिये और वस्त्र भी पवित्रता से धारण करे और सास श्वसुर पति आदिकी सेवा यथाविधि कर रोना, पीटना, लड़ाई झगड़ा इत्यादि क्लेशित बातों से अलग रहना उचित है और भंग गांजा अफयून आदि नशे की याकोईछार अति बहुत लोन और खटाई चने काल मिर्च और गुड़ न खावें और बासी ठंडा गला सूखे भोजनों से परहेज करे, और घी दुग्ध मिष्ट दही गेंहू चावल उर्द मूंग आदि अन्न पालक तुरई रामतुरई आदि पुष्टिकारक शाकका भोजन करें जिन में ऋतु २ के मसाले पड़े हों जैसे गर्मी में सुर्ख इलायची धनियां सोंप जीरा सफेद इत्यादि, और सर्दी में गर्म लौंग तेजपात काली मिर्च केशर डालकर अच्छी भांति उनको शुद्ध कर रांधके भोजन किया करें, परन्तु अधिक भोजन रात्रि के जागरण और क्रोध का त्याग करें और

सोमलता और गुडूच्यादि ओषधि के रस और पान का भी यथारुचि अभ्यास करें प्रातःकाल गर्मी की ऋतु में सेव अनार अंगूर अंगूरी मुनक्के किशमिश, मिश्री शरद ऋतु में गिरी अर्थात् खोपड़ा, बादाम, चिरौंजी, मुनक्का, छुहारा, मिश्री पैसा २ भर प्रति दिन खाना चाहिये ॥

तात्पर्य यह है कि भोजन किये हुए अहारका एक महीने मे वीर्य बनता है और वीर्य ही में जीवका निवास है जैसा सुश्रुत में लिखा है ।

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः । वीर्ये रक्ते मले स्मिन क्षीणेयाति क्षयं क्षणात ॥

जीव सब शरीर में बास करता है परन्तु वीर्य रुधिर और मल में विशेश कर रहता है जिनके क्षीण होने से जीव शरीर से क्षण भर में निकल जाता है ॥

जब सन्तान उत्पन्न होने के निकट दिन रहें तो जीरा सफेद प्रत्येक भोजन में खावे अधिक परिश्रम न करे-सवारी पर चढ़ना, मलमूत्र का रोकना, उकरूं बैठना, योग्य नहीं कुरूप और अंगहीन स्त्री पुरुषों से अधिक वार्त्तालाप करना योग्य नहीं-नर्म कपड़े को बिछाकर सोना उचित है और सिर के नीचे ऊंचा तकिया रखना उचित नहीं सूने घरमें न जावे उत्तम वायु में रहे-स्वच्छ पानी पीने तेल उबटन शरीर को अधिक न मलवावे, प्रसङ्ग कदापि न करे, सिंगी और जोंक, जुलाब से बचना योग्य है, बिजुली आदि गम्भीर शब्द सुनना न चाहिये हम्माम में स्नान न करे और सिर में बार२ तेल न डाले नहीं तो नजला और उस से खांसी और स्वास चल निकलती है जिस के कारण गर्भ पतन हो जाता है और यदि आवश्यकता होतो अफयून

मिलाकर शिरमें तेल डाले, और सरदी के दिनों में नीचेके अङ्गों को अच्छे प्रकार ढांपे रहें और दिन में भी अधिक सोने की टेव न डाले और पांचवें महीने कदापि ऊंचीनीची भूमिपर न चढ़े और बोझ भी न उठावे और सोनेके पश्चात् सावधानी से उठे वरन ऐसी दशाओंमें बालक के उलट पलट हो जाने का भय है, फिर ऐसे बालक के उत्पन्न होने के समय प्रथम पैर आते हैं फिर शिर जिस से प्रसूता और बालक को बड़ी हानि और क्लेश होते हैं बहुधा ऐसे समय में स्त्री और बालक के जीवन में दुबिधा हो जाती है, क्योंकि शिर के रुकने और वायु के न पहुंचने से दम घुट कर मर जाते हैं, ऐसी दशा में बहुत बुद्धिमान दायी हो वहभी चतुर वैद्य या डाक्टर की सम्मत्यनुसार इस काम को करे, (ऐसे बच्चे) को हिन्दी में विष्णूपद कहते हैं) और पांच महीने के पीछे पन्द्रहवें दिन दायी को दिखलाया करें कि जिससे किसीप्रकार की हानि न हो।

गर्भ से चार माह तक गर्भ गिरने को गर्भस्राव और चार महीने के उपरांत गर्भपात कहते हैं ॥

गर्भ में पुत्र या पुत्री होने की पहिचान

(१)गर्भिणी अपने दूध में जुंयें को छोड़े जो रेंगने लगे तो पुत्र और न रेंगे तो पुत्री।

(२) चुकन्दर के पत्ते पीसकर स्त्री नाश ले यदि छींक आ जावे तो पुत्र और न आवे तो पुत्री।

(३) दाहिनी आंख कुछबड़ीसी दीखती है इसी प्रकार दहिनी जांघ मोटी और भारी जान पड़ती है तथा जो स्त्री अपने वाम अंग को अधिक काम में लावे—पुरुष संगम को अत्यन्त इच्छा हो, निद्रा पान, भोजन, शील और चेष्टा अ-

धिक होती है जिसका गर्भ बांई कोख में एकत्रित रहता हो जिसका गर्भगोल नहो अर्थात् फैलाहुआ हो जिसके बायेंस्तन में दूधकी धार पहले निकली होतो जानना चाहिये कि उसके गर्भमें कन्या है। इनसे विपरीत लक्षण होनेपर पुत्र और दोनों के लक्षण मिले हुए होनेपर नपुंसक सन्तान होती हैं।

गर्भपात के लक्षण और चिकित्सा—

गर्भवती स्त्री की नसों में अत्यन्त पीड़ा होने, अंग का शीतल पड़ जाना—लज्जाका जाता रहना, क्रम २ कूले मेंदर्द होना, खून आना, छातियोंका मुरझाना, दूध का निकलना और गर्भाशय में दर्द होना यह चिन्ह गर्भपात के हैं।

यदि अनुचित अहार विहार के कारण गर्भिणी स्त्री के दूसरे वा तीसरे महीने रजोदर्शन होजाय तो गर्भ स्थित नहीं रह सक्ता क्योंकि उस समय गर्भ में सार उत्पन्न नहीं होता

यदि चार मासके पश्चात्जोदर्शन होतो रजोदर्शनके होते ही स्त्री को कोमल, सुखदायक-शीतल बिछोने बिछाकर ऐसी चारपाई पर शयन करावे जो सिरहाने की ओर कुछ नीची हो फिर अत्यन्त शीतल जलमें मुलहठीका चूर्ण और घी डालकर खूब मिलावे और उसमें एकरुईके फायेको भिगोकर गुह्य स्थान अर्थात् उपस्थेन्द्रिय में रखदेवे और नाभिकेनीचे सौवार अथवा सहस्रवार धुले हुए घृत का चारों ओर लेप करे फिर गाय के दूध वा मुलहटी के शीतल क्वाथ से सेवन करे अथवा शीतल जलही डालता रहै अथवा बड़ की कोपलों से सिद्ध किये हुऐ घी, दूधमें रुई का फोया भिगोकर रख देवै या इस औषधि में से दो तोला खवा देवै अथवा केवल घी और दूध ही देवे, पद्म, उत्पल×कुमद*केशर इन

को शहद और मिश्री में मिलाकर चटावै, सिंघाड़ापुष्कर बीज और कसेरू खाने को देवे, बला, अतिबला, शाली (साठीचांवल) और काकोली×इनको गर्म दूध के साथ खिलावे अथवा शहत और चीनी मिलेहुए लालचांवलोंका कोमल सुगन्धित और शीतल थोड़ा भात देवें ।

गर्भ में बालक के मरने के लक्षण—

जिस स्त्री का गर्भ चलता फिरता नहीं प्रसव वेदना (उत्पन्न समय का दर्द) न होती हो शरीर काला पीलापड़ गया हो स्वांस में दुर्गन्ध आती हो शरीर शीतल पड़गयाहो पेटमें पत्थर सा टुकड़ा जमा हुआ जान पड़ता हो दोनों नेत्र शिथिल पड़ गये हों ।

गहरी स्वांस आती हो व मल मूत्र समयानुसार न होता हो तो जानना चाहिये कि बालक गर्भ में मर गया है और ऐसी दशामें एक छटांक गौका गोबर डेढ़पाव जलमेंघोलकर पिलावे तो बालक होजावेगा और सांप की कैंचुलीकी धूनी भी उस स्थान में देवे परन्तु चतुर दाई और योग्य वैद्यको बुलालेना चाहिये क्योंकि मरे हुए बालक का पेट से निकालना चतुर दाई का काम है ।

गर्भवतीके लिये नौमासका अहारऔरउपाय

गर्भ समयसे बालकके उत्पन्न होने तक सदा सायंकाल और प्रातःकाल नियत समय पर स्वच्छ और कोमलभोजन

× उत्पल को नीलोफ़र भी कहते हैं

* कुमद नीले रँगके फफूल को कहते हैं उसके आसपास की केशर लेवे ।

+ काकोली यदि न मिल सके तो मुलहटी देवे सिंघाड़े और कसेरू आदि थोड़े२ देवे अधिक देनेकी आवश्यका नहीं ।

करे । इस के अतिरिक्त प्रथम मास में रात्रि के समयबिना किसी औषध के न बहुत गर्म न बहुत ठण्डा । दूसरे और तीसरे महीने में शहत और घी मिलाकर चौथे महीने में एक तोला मक्खन मिलाकर पांचवे महीने में थोड़ा घी मिलाकर छटे और सातवें महीने में मधुर औषधियों से सिद्ध कियाहुआ दूध औरघी इतना पानकरे कि जो जठराग्निको मन्द न करे और अच्छे प्रकार पचजावे ।

यदि सातवें मास गर्भिणी के उदर में दाह जान पड़े तो सिरस के फूल ४ माशा धाय के फूल ४ माशा पीत(पीली) सरसों २ माशा और मुलहटी ४ माशा का चूर्णको स्तन और उदर में मालिश करे अथवा कुड़ाकी छाल (जिसको कुरई भी कहते हैं यह इन्द्रजौ का वृक्ष होता है) ४ माशा तुलसी के बीज २ माशा मोथा ३ माशा और हल्दी ४ माशा इन को कूटकर मालिश करे ।

यदि स्तनों में खुजली होतो हाथ से न खुजलावे किन्तु मालती के फूल ६ माशा और मुलहटी ६ माशे को ऽ। पाव भर पानी में औटावे जब छटांक भर बाकी रहे तब उस में कपड़ा भिगोकर धो डाले यदि खुजाये बिना कलही न पड़े तो धीरे २ पोरुओं से सहारा देवे ऐसी दशामें मधुर और वातनाशक भोजन थोड़ी चिकनाई और नमक डालकर देवे और जल भी थोड़ा ही देवे ।

आठवें महीने में घी डालकर दूध देवे—नवें महीने में उपस्थ इन्द्रीय पर तेल का फोया रखदेवें—इस प्रकार खान पान व्यवहार करने से स्त्रियों को मल मूत्र सुख पूर्वक होते रहते हैं सन्तान उत्पत्ति में बहुत कष्ट नहीं होता है संतान भी उत्तम होती है ।

गर्भाशयमें बालक बनने और रहनेका वृत्तान्त

प्रथम मास में बीज रूप रहता है दूसरे महीने में गाढ़ा होकर पिण्डाकार होजाता है तीसरे महीने में सम्पूर्ण इन्द्रियां और सम्पूर्ण अङ्गावयव एक ही साथ उत्पन्न होजातेहैं इस समय में इस के चित्त में वेदनाओं की उत्पत्ति होतीहै इस कारण गर्भ कुक्ष में फड़कता है इस समय में गर्भिणी के इच्छा के प्रतिकूल कोई कर्म न करे उस काल में गर्भिणी जिस २ वस्तु की इच्छा करे वही २ देवे परन्तु कोई गर्भ नाशक कार्य न करने दे। यदि किसी तीव्र वस्तु पर गर्भिणी का मन चलायमान हो तो भी उसकी इच्छा को न रोककर उस में हितकारी वस्तु मिलाकर देवे क्योंकि उस की इच्छा रोकने से वायु प्रकुपित होकर शरीर के भीतर जाकर गर्भ को नष्ट करदेता है अथवा कुरूप कर देता है।

पांचवें महीने में गर्भ स्थित होजाता है इस लिये गर्भिणी का शरीर अधिक भारी होजाता है।

छठे महीने में गर्भ का बल और बर्ण अधिक बढ़जाता है इस कारण स्त्री के बल और वर्ण की हानि होजाती है।

सातवें महीने में गर्भ सब तरह से परिपूर्ण होजाता है इस कारण गर्भिणी स्त्री उस महीनेमें अति मलीनहोजाती है।

आठवें मास में गर्भ के परिपूर्ण होजाने से रस वाहिनी नाड़ियों के द्वारा गर्भ से माता और माता से गर्भ बार २ ओज*को ग्रहण करते रहते हैं इस कारण माता बार २ प्रफुल्लित और बार २ मलिन होजाती है इस समय में अधिक सावधानी से कार्य करना चाहिये।

माता की कुक्षि में गर्भ का मुख माता की पीठ की ओर

रहता है सिर ऊंचे को करके सम्पूर्ण अङ्गोंको सकोड़े हुऐ जरायु में लपटाहुआ पड़ा रहता है। गर्भ की नाभ में एक नाड़ी होती है जिस को नाल कहते हैं वहीं माताके हृदय में लगी होती है उसी के द्वारा गर्भ आहार रस पहुंचता रहता है।

बालक के शरीर में कौन २ वस्तु किस २ से बनती हैं—

केश—डाढ़ी, मूछ—रोम, हड्डी, नख, दांत, रंग सन नाड़ी और वीर्य यह पिता के अंश से उत्पन्न होते हैं।

मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, हृदय नाभि यकृत (कलेजा) तिल्ली, आंत पायुइन्द्रिय इत्यादि कोमल पदार्थ माताके अंशसे उत्पन्न होते हैं।

शरीर का बढ़ना, बल, वर्ण, स्थित और हानि (घटना) यह रस से उत्पन्न होते है।

आत्मज्ञान, मन, इन्द्रियगण, प्राण अपान प्रेरणा, धारण, आकृति, वर्ण, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, चेतना, धृतिः, बुद्धि स्मृति अहङ्कार और प्रयत्न यह आत्मा से उत्पन्न होते हैं और भक्ति, शील, शौच, द्वेष, मोह, त्याग मात्सर्ग, भय, क्रोध, तन्द्रा, उत्साह, मृदुता, गम्भीरता, और अचञ्चलता से उत्पन्न होते हैं।

प्रसवकाल—

नवें मास के आरम्भ से बारहवें मास तक प्रसव काल कहलाता है इस से आगे पीछे सन्तान आरोग्य और बलवान् उत्पन्न नहीं होती दश मासके पश्चात् की सन्तान बहुत बलवान होती हैं। नौ मास के प्रथम की सन्तान बहुतही कम जीवित रहती हैं।

* सातों धातुओं के सार को ओज कहते हैं।

आसन्नप्रसवा के लक्षण—

जांघ और कमर पीठ में दर्द होता है, पसली के नीचे गड्ढे पड़जाते हैं, मल मूत्र बार २ आता है—भोजनों की इच्छा नहीं होती, चलने फिरने को मन नहीं चाहता, मनमें आलस्य—शरीर के नीचे भाग में भारीपन और आंखों में शिथिलता इत्यादि लक्षणों से जानना चाहिये कि प्रसव शीघ्र होने वाला है ।

उस में ऐसी स्त्रियों को रक्खे कि जिनके बहुत बार सन्तान हो चुकी हो । जो गर्भिणी से प्रेम रखती हो—जो प्रसन्न चित्त परिश्रम सहनेवाली और कर्म करने में प्रवीण हों । गर्मी की ऋतु में दिन के समय में भीतर मकान में रहना चाहिये और रात को पटे खुले हुये मकान में और जाड़े के दिनों में बन्द मकान के भीतर जहां धूपभी जाती हो रहना योग्य है और वहां आग भी जलती रहे—परन्तु धुआं नहो ।

दाई ।

तरुण और बलवान् हो, जिसके बड़े नख न हों जो अपने काम में निपुण और निर्भय हो ॥

प्रसूता के रहने का स्थान—

इन लक्षणों के प्रकट होने पर प्रसुताको ऐसे मकान में रक्खे कि जो आठ हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा होवे जिसके द्वार पूर्व वा दक्षिण की ओर होवें जिस की दीवारें पुतीं हुई होवें जो स्वच्छ रमणीक और गन्ध युक्त होवे उस में वस्त्र—ओढ़ने—बिछाने के कपड़े अग्नि जल-ओखली और मल, मूत्र त्यागने के स्थानभी होवे इस के अतिरिक्त उसमें

अनेक वस्तुयें ऋतु के अनुकूल होनी चाहिये (अर्थात् शीत काल में सर्दी से बचानेवाली और उष्ण काल में ठंड पहुंचाने वाली इस के उपरान्त राई श्वेत सरसों, नीव के पत्तेकी धूनी सौर गृह और प्रसूता और बच्चे के वस्त्रों को देना योग्य है।

व्यथायुत गर्भिणी उपचार—

शरीर में तेल लगाकर गर्म पानी से स्नान कर थोड़ी सी मूंग की खिचड़ी खाकर कोमल तकिये और बिछौने के पलंगपर दोनों जांघ फैलाकर बैठ गर्मदूध वा गर्मपानी पीवें या ३ माशे सौंफ और गायका दूध पाव भर और एकसेर पानी को औटावे जब पानी जल जावे, तो गुन गुना पिलावे वा काले सांपकी कैंचुली और मैनफल का चूर्ण बनाकर उसका धुआं गर्भ द्वार को दे वा पोईके पत्ते और जड़ पीसकर और इन्द्रायन की जड़ तिल का तेल मिलाकर गर्भद्वार पर रक्खे वारि पीपरी और पानी में पीसकर गर्म कर अण्डी का तेल मिला नाभि पर लेप करे या खोया और साबुन की बत्ती बनाकर लगावें वा चम्बुक पत्थर को जांघ में बांधे वा किसी हुलास से छींक ले वा हीरे की कनी अपनेपास रक्खे अथवा कूट दो माशा, इलायची २ माशा, बच दो माशा, चीता २ माशे और कंजा २ माशे का चूर्ण बनाकर सुंघावे और कमर, पसली, पीठ आदि स्थानों पर सुहाता २ तेल लगावे अथवा वासा की जड़ को पीस नाभि पर रक्खे फिर मीठे शान्तिदायक बचन बोले तो बच्चा शीघ्र होजावेगा और क्लेश कम होगा परन्तु गंडा आदि मिथ्या बातों से कुछ नहीं होता ॥

प्रसव के पश्चात् कर्म–

बालक के उत्पन्न होते ही समय देखे कि गर्भ नाड़ी (नाल) बाहर निकल आया है या नहीं। यदि न निकली होतो एक स्त्री अपने हाथ से प्रसूता की नाभि के ऊपर जोर से दबावे और दूसरे हाथ से पीठ पकड़ कर अच्छे प्रकार हलावे और पांव की एड़ियों को नाभि के पास लावे भोजपत्र, काच, मणि और सांप की कैंचुली की धूनी उपस्थ इन्द्री में देवे अथवा सौंफ, कूट, मैनफल हींग इन को तेल में डाल उस में रुई का फोया भिगोकर उपस्थ इन्द्री में रक्खे तो नाड़ी बाहर निकल आवेगी ॥

नाड़ी छेदन विधि ।

फिर नाड़ी को नाभि से आठ अंगुल छोड़ दोनों ओर पकड़ कर बीच से सोने चांदी वा लोहे की पैनी धारवाली छुरी से काट डाले फिर शेष नाड़ी में एक डोरा बांधकर नाड़ में ढीला बांध देवे यदि नाभि पकि जाय तो लोध ४ माशा मुलहटी ४ माशा, प्रियङ्गु (खक्खा खदन) ४ माशा, दारुहल्दी ४ माशा, को पीस टिकिया बनाकर एक छटांक तेल में पकावे। फिर उस तेल को नाभि पर चुपड़ता रहे नाड़ी के नियमानुसार न छेदन करने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं इस लिये इस पर विशेष ध्यान देवे और अनुचित प्रकार से कट जाने पर यथा योग्य चिकित्सा करावे इस के पश्चात् सोने से बालक की जीभ पर घी और शहत मिलाकर ओ३म् शब्द लिखे और थोड़ासा घी और शहद चटावे फिर उस के कान के पास दो पत्थर के टुकड़ों को बजावे, ठण्डे अथवा गर्म जल से धीरे २ मुख को पोंछे इस

से बालक का प्रसव समय का कष्ट दूर होजाता है और प्राण प्रफुल्लित होजाते हैं फिर मंद २ हवा करता रहे जब चैतन्य हो जावे फिर उस को स्नान कराकर उस के तालु ओष्ठ कंठ और जिह्वा का मार्जन करे इस के अनन्तर नाखून कटी हुई अंगुली में धुली हुई रुई का फोआ लपेट कर तालवादि स्थानों को धोवे फिर चिकना रुई का फोआ बालक के तालू में लगादेवे फिर नाक फसेको ठीक कर देना चाहिये क्योंकि उत्पन्न होने के समय दबने से चपटी होजाती है फिर उपस्थि इन्द्री की त्वचा की सुपारी की खाल को खोल कर ऊपर चढ़ा तेल लगाकर नीचे उतार दे और जो मैल हो उस को धोकर स्वच्छ करदे ॥

प्रसूता की रक्षा

जब बालक होजावे और सब प्रकार से उसकी देख भाल करली जावे उस के पीछे प्रसूता की सुध लेनी योग्य है सब से प्रथम बालक उत्पन्न होने के पीछे स्त्री के पेट में से एक मांस की सी थैली निकलती है उसको औनार कहते हैं जिस प्रकार गाय भैंस के पेट से बछड़ा होने के पीछे जेर गिरता है जब तक वह गिरन पड़े तब तक प्रसूता के पेट पर हाथ रक्खे रहना चाहिये यदि पीर बंद होजावे ओनार न गिरे तो पेट पर हाथ फेरती रहना चाहिये तो थोड़ीदेर में पीर उत्पन्न होकर ओनार गिरपड़ेगी

परन्तु खींचकर न निकालनी चाहिये जैसा कि बहुधा स्त्रियां किया करती हैं ॥

जिस से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं इसी भांति जब कभी मूर्ख दाई भीतर के अंग में हाथ डालदेती है तो उन

के नख की चोट कहीं जरायु में लगजाती है उस से ज्वर आजाता है इस लिये बहुत बुद्धिमान दाई को भी सावधानी से यथा अवसर कार्यवाही करनी चाहिये ॥

यदि ज्वरादि हो तो चतुर वैद्य और योग्य डाक्टर को दिखाना चाहिये ठंडा पानी किसी दशा में भी न देना सर्दी के दिनों में आग भी जलती रहना भला है वरन पसली जमोघा इत्यादि बीमारियां होजाती हैं जिनसे असंख्य जानें यमपुरको चली जाती हैं और बच्चे को गठिया आदि रोग होजाते हैं जिस से उमर भर का सुख चला जाता है ज्वर न हो तो प्रतिदिन के पश्चात् कोमल मूंग की दाल आदि देना चाहिये ॥

इस के उपरान्त ४० दिन तक तेल लगवा कर गरम जल से स्नान करना योग्य है क्रोध और प्रसंग का त्याग प्रसूता के १० दिन तक चरुये का पानी पीना उचित है जिस में ३२ औषधी होती है उस को पानी डाल औटाते हैं वही चरुये का पानी कहलाता है जो बत्तीस औषधी न मिल सकें तो पीपर,पीपरामूल,गजपीपर,मोचरस, चीता, सोंठ और गुड़ इन को पानी में औटाकर पिलावे अथवा दशमूल काढ़ा देवे जिस से शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनों कटेली गोखुरू, बेल की गिरी, अरनी, अरलू पाढ़, कुमेर, पीपल इन सब की बराबर मात्रा लेकर काढ़ा बना पिलाना उचित है यदि इस का अर्क खींचले तो फिर प्रति दिन का बनाना जाता रहे ॥

इसके उपरान्त बच्चाउत्पन्न होनेके पीछे जच्चाको बैठा देती हैं जिस से लोहू बहुतसा निकलजाताहै और स्त्री बहुत कमजोर होजाती है इस से लोहू निकलना अच्छा नहीं ॥

प्रसूता को ३ दिन तक अन्न न देना चाहिये क्योंकि

उन दिनों में भोजनके पचाने की शक्ति नहीं होती इसलिये उन दिनों में दूध देना सब से उत्तम है परन्तु इस देश में हरीरा देती हैं जो घी, गुड़ और अजवाइन को औटाकर बनाती हैं यदि सुहाग सोंठ को बनाकर थोड़ी २ दें और ऊपर से दूध पिला दिया करें तो बहुतअच्छा हो और अगर ऐसा न करें तो सौंठ को पीस छान फंकी करा ऊपर से दूध पिलादें तो बच्चा और जच्चा दोनों को लाभहो फिर जच्चा का सोना भला है इस लिये वहां नाना प्रकार के शब्द न होने चाहियें प्रसूता को लेटे ही धो पोंछकर स्वच्छ कर देना योग्य है फिर सब स्त्रियोंको अलग कर किवाड़ फेर अंधेरा करदे जिससे उसको नींद आजावे इसीभांति आंखों के पलक आदि अंग जो जुड़े हों तो उसको नश्तर से चीर कर प्रथक करदेने चाहियें और गुदा का छिद्र बंद हो तो खोल देना चाहियें और मस्तक लंबा हो तो दोनों हाथोंसे दबाकर सीधा सुडौल कर देना योग्य है, हे सुन्दरियों इस समय की सावधानी से सब अंग ठीक होजाते हैं वरन थोड़ी सी असावधानी से फिर बहुत हानि होती है ।

और उम्र भर सुख नहीं मिलता और ज्वरादि न हो तो तीन दिन पीछे पाचन और कोमल भोजन मूंग की दाल आदि देना उचित है छः मास तक पुरुष से समागम न करे जो २ वस्तु गर्भ रहने के समय और उत्तम व्यवहार बताये गये हैं उन पर भी ध्यान बनाये रहे इसमें किसी प्रकार का गड़बड़ न करे वरनः जन्म भर का दुःख होजाता है और निर्बल रहजाती हैं और दूसरे सन्तान भी श्रेष्ठ नहीं होते, सुहाग सोंठसे बच्चा और जच्चा दोनों को आरोग्यता मिलती है और बल बढ़ता जाता है ।

सुहागसोंठ की औषधियां—

सोंठ बैदरा	१॥ पाव	बकरी का दूध	५ सेर
घी गऊ का	१ पाव	चीनी	२॥ सेर
दालचीनी	१॥ तोला	तेजपात	१ तोला
छोटी इलायची	२ तोला	नागकेशर	१॥ तोला
स्याह जीरा	१ तोला	सौंफ	१। तोला
अकर करहा	१॥ तोला	जाबित्री	१ तोला
बिधारा	१। तोला	कमलगट्टे की गिरी	१॥ तोला
पीपरामूल	१ तोला	त्रिफला	२ तोला
बरियाराकी जड़	२ तोला	चाब	१ तोला
चीता	१ तोला	मोथा	१॥तोला
खस	१॥ तोला	नागौरीअसगन्ध	२ तोला
सफेद चन्दन	१ तोला	काला अगर	१ तोला
सफेद जीरा	१ तोला	लौंग	१॥ तोला
शतावर	१ तोला	सफेद मूसली	२ तोला
सोंठ	२ तोला	पीपर	१ तोला
मिर्च	१॥ तोला	जायफल	१। तोला
सिंघाड़ा	२ तोला	कंकोल	१॥ तोला
अजमोद	१ तोला	मुनक्का	१ छटांक
किशमिश	२ छटांक	अखरोट	२ छटांक
बादाम	१ पाव	पिस्ता	१ पाव

बनाने की रीति

सब से प्रथम सोंठ को कूट छान ले और दूध को कढ़ाही में औटावै जब आधा दूध जलजावै तब उस पिसीहुई सोंठको डालदेवे और करछी से बराबर चलाताजावै जिससे दूध न जलजावै और जब खोया होजावै तो कढ़ाई चूल्हेपर से उतार लेवे और अलग कर फिर कढ़ाही को रखकर घीडाले

और खूब भून लेवे बाद साफ कड़ाही में चीनी की चासनी बनाले और सब औषधियोंको कूट छानकर मेवाओं को साफ कर कतर सब को खोवा की चासनी में मिला आधी २ छटांक के लड्डू बनालें—प्रातःकाल अपने बलके अनुसार लड्डू खाकर ऊपर से दूध मिश्री को पिये तो बच्चे और जच्चे को किसी प्रकार का रोग नहीं होगा।

स्तन रोग और उसकी चिकित्सा

कन्याओं अर्थात् स्त्री के जब तक गर्भ नहीं रहता तब तक उन के किसी प्रकार के स्तन रोग नहीं होते क्योंकि उस समय तक स्तन सम्बन्धी नसों का मार्ग बन्द रहता है इस कारण वहां कोई दोषभी नहीं पहुंच सकते॥

सम्पूर्ण प्रकारके स्तन रोगोंमें स्त्रीका दूध बिगड़ जाता है यदि बात की प्रबलता होती है तो दूध कसीला हो जाता है और पानी में डालने से पानी के ऊपर तैरता रहता है पित्त की प्रबलता होने पर दूध खट्टा और कड़वा होजाता है और पानी में डालने से उसकी पीली २ रेखा सी चमकने लगती है कफकी प्रबलता होने पर दूध में गिलगिलापन होता है और वह पानी के भीतर बैठ जाता है, तब तीनों दोषों को प्रबलता होती है अथवा चोट लगजाती है तो उस में तीनों दोषों के चिन्ह दिखलाई देते हैं॥

निर्दोष दूध की पहचान

जिस स्त्री का दूध जल में डालने से मिलकर एक हो जाय पाडु वर्ण वाला रहे जिस में मीठापन हो और कुछ अन्तर न पड़े जो शीतल निर्मल पतला और शंख के समान श्वेत हो जो झागदार न हो जो पानी में न तैरे न डूबे तो जानना चाहिये कि दूध निर्दोष है॥

इस के उपरान्त जिस दूध के पीने से बच्चे का पेट ही न भरे अर्थात् पीता ही चला जावे और वह दुर्बल होता आवे तो उसको दूषित दूध समझना चाहिये । यदि इससे भिन्न लक्षण दीख पड़े तो ३ तोला नीम के पत्तों को ऽ।≈ पाव पानी में गर्म करके जब ऽ= रहजावे तो उसमें १ तोला शहद और ३ पीपल मिलाकर चार वा छः दिन पिलाकर तीसरे पहर को वमन (कै) करावे और कै हो जाने पर नित्य प्रति मुंग का रस खवावे अथवा त्रिफला ६ माशा और घी १ तोला पान करावे अथवा भारंगी ४ माशा बच २ माशा अतीस ४ माशा देवदारु ४ माशा पाढ़ ४ माशा मोथा ४ माशा मुलहटी ४ माशा और कुटकी ४ माशा इन द्रव्यों का क्वाथ (काढ़ा) पान करावे तो दूधका शोधन होजायगा यदि कै कराना उचित नहो तो गोवी ४ माशा झाऊ ४ माशा देवदारु ४ माशा चिरायता ४ माशा बनफूली ४ माशा कुटकी ४ माशा गुर्च ४ माशा सोंठ ४ माशा नागरमोथा ४ माशा और इन्द्रजौ ४ माशे को ऽ। पानी में औटाकर जब पौन छटांक रहजावे तब पिलावे, इसके अतिरिक्त क्रोध शोक करने वा बालक पर प्रीति न होने पर स्तनों में दूध नष्ट हो जाता है इस कारण माता या दाई को सदा प्रसन्न रक्खे उस को जौ या गेहूं का दलिया शालीचांवल, साठी चांवल, कसेरू, सिंघाड़ा, कमलनाल, बिदारीकन्द, महुआ-शतावरीनालिका, घी साटी के चावल की खीर हल्दी-पीपरि सोंठ-पिपलामूल—जीरा आदि का हरीरा घी शक्कर की चासनी बना कर देवे या और ऋतु के शाक खिलावे इससे दूध बढ़ जायगा ।

सन्तान न होने के विषय में—

प्रकट हो कि पुरुष स्त्री दोनों तथा स्त्री वा पुरुष में दोष

होने से गर्भ स्थित नहीं होता इसलिये हम संक्षेप से उन दोषों को लिखते हैं जिन को देख भाल कर चतुर और संतोषी धर्मात्मा वैद्य से औषधि करायें और मिथ्या प्रपंचों में अपने अमूल्य समय और धन को न खोयें कि जिनसे सिवायरोगों के असाध्य हो जाने के और कुछ हाथ नहीं आता, उन के अर्थ हम भी कुछ औषधि लिखते हैं ॥

पुरुष के दोष–

(१) धातु में दोष होना, (२) उपस्थेन्द्रिय का टेढ़ा होना, (३) उस के मुख का फैलना, (४) छोटा होना (५) अधिक मोटा होना ।

औषधियां

प्यारे सुजनों ! धातु में दोष बाल्यावस्था में प्रसङ्ग करने अथवा बालकों से कुचेष्टा वा वेश्यागमनादि अति प्रसंग करने और नशों के सेवन से होजाते हैं ।

इन से बचना योग्य है यदि इन से जो २ हानियां होती हैं उनका ब्यौरेवार वृत्तांत जानना हो तो मेरी बनाई हुई "वीर्यरक्षा" नामक पुस्तक में देखलें, परन्तु यह भी स्मर्ण रहे जो मनुष्य छोटी अवस्था से इन बातों में फंस जाते हैं उन के सन्तान का होना अति दुर्लभ है क्योंकि उन की मनी अत्यन्त कच्ची होती है ऐसी दशा में सन्तानरूपी रत्न ही से हाथ नहीं धोते वरन शारीरिक सामाजिक और आत्मिक तीनों प्रकार के सुखों से तिलाञ्जुलि दे देते हैं क्योंकि सर्व प्रकार के सुख वीर्यरक्षा से ही मिलते हैं इसलिये २५ वर्ष से न्यून पुरुष को स्वप्न में भी प्रसंग करने का स्मरण न करना चाहिये, देखो यदि सुख की इच्छा हो तो प्रथम

इस व्रत को स्वीकार करो पश्चात् नियमानुसार सन्तान के अर्थ अपनी ही स्त्री से प्रसंग किया करो ॥

स्त्री पुरुष के वीर्य्य दोष परीक्षा–

(१) गेंहू अथवा जौ–व गंगाफल या पेठे के बीजों को स्त्री–पुरुष प्रथक २ बोवें और जब कल्ला निकल आवे तब अपने वृक्ष पर स्त्री पुरुष पेशाब करें फिर जिसके पेड़ों की जड़ सूख जावे उसकी ही धातु में दोष जानना चाहिये

स्त्री की विशेष परीक्षा के लिये–जब स्त्री को क्षुधा लगे तब वह गाय के दूध में कपड़ा तर कर के गुहेन्द्रिय में रखले यदि दूध की गंध मुख में आने लगे तो जान ले स्त्री में कुछ दोष नहीं है ॥

उत्तम धातु के लक्षण–

जो निर्मल चमकीली चेपवाली हो और जिसको मक्खी खाती हों वह उत्तम जानों वरनः खराब ।

भाइयो ! इसी प्रकार और भी बहुत परीक्षा और लक्षण वैद्यकशास्त्रों में लिखे हैं जिनको चतुर वैद्य जानते हैं उनसे ही रोगों को शान्ति कराना योग्य है न कि मूर्ख जनों से ।

धातु के दोष दूर करना–

अब हम धातु पुष्ट करने की एक उत्तम औषधी लिखते हैं चाहिये कि ४० दिन तक पथ्याऽपथ्य को विचार सेवन करे और जब आराम हो जावे और अपना पुरुषार्थ रखना चाहें तो स्त्री प्रसङ्ग को सदा ही कम करे अर्थात् नियमानुसार जैसा कि हम लिख चुके हैं और धातु वृद्धिक और पुष्टिकारक औषधी खाते ही रहा करें कि जिससे सदां आरोग्य बनेरहैं क्योंकि वीर्य रक्षा से ही सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं ।

औषधी यह हैं—

बीजबन्द १ तोला, पाषाणभेद १ तोला, बेमन सफेद १ तोला, बेमन सुर्ख १ तोला, तूदरी सफेद १ तोला, तूदरी सुर्ख १ तोला, बबूल का गोंद १ तोला, केसर ४ माशे चिये के बीज का छिलका २ तोला, रांगे का कुस्ता २ तोला।

इन सब को बारीक पीस छान सब के बराबर मिश्री मिला कर प्रति दिन सुबहके समय एक तोला चरण को ऽ।। सेर गाय के दूध के साथ खावे परन्तु गर्म अर्थात् खटाई तेल और जो अपनी प्रकृति के अनुकूल नहीं न खावें, स्त्री प्रसंग से बचना भी योग्य है, तदन्तर विषय के उत्पन्नकर नेवाली पुस्तक और कहानियों और खेल तमाशों और वार्त्तालाप से बचना अभीष्ट है।

यदि पुरुषगामी वा वैश्यागामी वा अति विषय करने से लिङ्ग टेढ़ाहोगया हो उसका अच्छा होने का उपाय यह है।

घोड़े का सुम १ तोला, बीरबहुटी ५ तोला घुंघुची सफेद १ तोला जायफल १ तोला, शेरकी चरबी १ तोला इन सब को बारीक पीस आधपाव अलसी के तेल में जला प्रति दिन दो चार बार लगाकर पान सेंककर बांधना चाहिये इस का लाभ तीन हफ्ते में जान पड़ता है।

उपस्थेन्द्रिय के मुखका फैलना।

ढाक का गोंद १ माशा, बबूल का गोंद १ माशा, पाषाण भेद १ माशा, घुंघुची सफेद १ माशा इन सबको बारीक पीस एक तोला बकरी के दूध में घोलकर कपड़े की बत्ती बनाकर उसमें भिगोकर लिङ्ग के सूराख में रक्खे तो १० दिन में आराम होगा।

अथवा ।

कुन्दर १ माशा मौलसिरीके बीज १ माशा, ढाक का गोंद १ माशा, सालिम मिश्री १ माशा, बेरी की लाख का चपरा १ माशा, इनको पीस इनके बराबर मिश्रीमिला प्रति दिन ८ माशे ताजे पानी से खावे तो दो हफ्ते में लाभ जान पड़ेगा ।

छोटे से बड़ा करना ।

इस स्थान पर यह भी याद रहे कि यह काम जवानी की उमर तक हो सकता है अन्यथा नहीं ।

(१) कटैया के फल मय पत्तों के, सरसोंके पत्ते, कूट कड़वा, खुरासानी अजवायन, इन सब को बराबर २ लेकर पीसकर दूने शहद में मिलाकर दिन में चार बार लेप करे

(२) भटकटैया का फल—धेकावा अनार के फल का बक्कल इन सब का चूर्ण कर कड़वे तेल में पकावे फिर छान करउस तेल को लिङ्ग पर मले तो लिङ्ग बढ़ता है ।

अधिक मोटेसे पतला करना

गर्म पानी से दिन में दो तीन बार धोवे फिर पोंछकर ऊपर से 'बलसां' के तेल को मलकर 'जैतून' के तेलको मले तो १० या १२ दिन में लाभ जान पड़ेगा ।

स्त्री के दोष

(१) गर्भाशय की प्रकृति अति ठण्डी हो, (२) गर्भाशय की प्रकृति अति गर्म हो, (३) गर्भाशय अति मोटा हो गया हो, (४) गर्भाशय का छोटा होना, (५) अति दुर्बल होना, (६) गर्भाशय का न होना, (७)गर्भाशय से पानी आना, (८) गर्भाशय का मुंह फिरना (९)

प्रसंग के पीछे शीघ्र उठ खड़ाहोना (१०) नियमके विरुद्ध होकर चेष्टा करना (११) हिजड़ी हो (१२) धरनि में सूजन हो ।

औषधियां गर्भाशय की प्रकृति अति ठन्डी को दूर करना ।

केसर १ तोला, कस्तुरी ३ रत्ती, बालछड़ १ माशा पीपर छोटी १ माशा, अफयून २ रत्ती, इन सबको बारीक पीसकर एक तोला शहतमें मिलाकर आधी सुबहऔर आधी शाम आठ दिन तक खावे परन्तु ठण्डी चीजों से बचना आवश्यक है ।

गर्भाशय की प्रकृति अति गर्म को दूर करना

(१) शरबत सेब २ तोला, या शरबत चन्दन २ तोला या विलायती अनार के दाने १ छटांक, या अंगूर विलायती १ छटांक प्रति दिन खाना चाहिये ।

(२) एक छठांक तिली के तेल में हरे गुलाब के फूल दो तोले और चमेली के फूल दो तोले और बेले के फूलदो तोले चार या पांच दिन तक गलाकर और उस में कपड़ा तर करके गर्भाशय पर आठ दिन तक लगाना चाहिये ।

गर्भाशय की मुटाईको दूर करने के लिये—

हल्दी ३ माशे को साबुन के लुआब में मिलाकर आठ दिन तक लगावे ।

गर्भाशय को छोटेसे बड़ा करना ।

प्रकृति और ऋतु के अनुकूल जुलाब लेकर लायकडाक्टर वा चतुर वैद्यजीसे जो इस क्रिया में चतुर हो इलाजकरावें

अति दुर्बल होना बसबब न होने रजस्वला के

सोंठ १ माशा, काली मिर्च २ माशा, पीपर २ माशा, हर्रे की बकली २ माशे, भारङ्गी ३ माशे इन को कूटछानकर दो तोले गाय के घी में मिलाकर प्रतिदिन १० वा १२ दिन तक खाना योग्य है, परन्तु ठंडी चीजों से बचना चाहिये ।

गर्भाशय के पानी बन्द करने के लिये

चिकनी सुपारी १ छटांक इमली के बीज का छिलका १ छटांक, साठी के चांवलों का आटा १ पाव पहिले आटे को पावभर गाय के घीमें भूनकर उसमें और सब औषधियों को पीस छानकर मिलावे फिर पावभर शक्कर मिलाकर सुबह और शाम आधी २ छटांक खाकर पावभर गाय का दूध पीवे गर्म चीजों और खटाई आदि से पथ्य करना योग्य है ॥

गर्भाशय का मुंह सीधा करना–

इसके लिये चतुरवैद्य व डाक्टरसे इलाज कराना चाहिये ।

प्रसंग के पीछे शीघ्र उठ खड़ा होना–

स्त्री को शीघ्र न उठना चाहिये ॥

नियम के विरुद्ध होकर कार्य्य करना–

गर्भाधान के समय सृष्टिक्रमानुसार पुरुष को ऊर्ध्व रहना योग्य है इसके विपरीत कार्य्य करने से यदीगर्भ होगा तो पुत्री होनेपर उसमें पुत्र के और पुत्र होगा तो उस में पुत्री के आचरण पाये जावेंगे ।

हिजड़ीपन दूर होना–

(११) स्त्रीधर्म होने के पीछे ७ दिन तक दो माशे

हाथीदांत का चूर्ण बराबर की मिश्री मिलाकर खाय ॥

धरनि की सूजन दूर करना—

हथेली भर अजवायन फांके ॥

प्रसव होनेकेसमय से दोवर्ष तकउपयोगीशिक्षा

जब बालक का जन्म हो तब दाई आदि चतुर स्त्री बालक के शरीर का जरायु पथक कर प्रथम नाक के नथुने स्वच्छ करे जिससे स्वांस अच्छे प्रकार से ले सके फिर नाक के पांसे को ठीक करदेना चाहिये क्योंकि उत्पन्न होने के समय दबने से चपटी होजाता है फिर उसकी उपस्थेन्द्रिय की सुपारी की खाल खोल ऊपर को चढ़ाकर तेल लगाकर नीचे उतारदे और जो मैल हो तो धोकर स्वच्छ करदें और पेडू को दबा पेशाब की बूंद निकाल दें, पाखाने के स्थान को देख भालकर ठीक कर फिर सरसों वा जैतून के तेल को हाथसे लगाकर रुई से पोंछकर ऊन के कपड़े वा बहुत सी रुई पर सुलाकर " नाड़ " को धीरे २ सूंतकर चार अंगुल छोड़कर डोरा बांधे फिर उन दोनों के बीच में पैनी छुरी से चतुरता के साथ काटले इस के पीछे गुनगुना पानी जिस में एक या दो या तीन माशे खारी नोन पड़ा हो कोमलताई से स्नान करावे और नाक कान में पानी नजाने पाये पीछे गाय के शुद्ध घी में शहद मिलाकर उङ्गली डुबेकर उसकी जीभ पर लगादें जिस से उसके पेट का मल निकल जावे फिर बालक को ऐसे मकान में पालन करें जहां बहुत प्रकाश और वायु का बल न हो, इस के पीछे बालक को कभी २ धीरे २ हिलाया करें और बाहर की हवा और प्रकाश दिखाना चाहिये

और ५ या ६ दिन तक प्रसूता को अपना दूध न पिलाना चाहिये क्योंकि उस के दूध में उन दिनों एक प्रकार का बुरा रुधिर रहता है इस लिये बकरी या गाय के दूध में थोड़ा पानी मिलाकर गुनगुना करके रुई के फोये से देना चाहिये ताकि मुंह को किसी भांति क्लेश नहो और बालक को दूध का स्वाद मालुम होजावे वरन १ तोला गुड़ और थोड़ी सी अजवायन मिलाकर जल में औटाले फिर छानकर देवे और ४० दिन तक बालक को प्रति सप्ताह स्नान कराना योग्य है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि पानी गुनगुना हो यदि गर्मी के दिन होंतो सन्ध्या के चारबजे और शर्दीके दिन होंतो दिनके बारह बजेपर माता या चतुर दाई जब बच्चा सोकर उठे उसके एक घंटे पीछे स्नान करावे और पानी धीरे २ थोड़ा २ डाले जिससे बालक रोने न पावे फिर सफेद कपड़े से धीरे २ पोंछे स्वच्छ वस्त्र पहनावे परन्तु इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक हैकि कपड़े तंग न हों कि जिस से शरीर की बाढ़ को रोके और बच्चे को क्लेश दें, और इतने ढीले भी नहों जो बालक के हाथ पैर हिलाने से फंस जांय जाड़े के दिनों में रुई या पशमीने की टोपी या कनटोपेसे कानतक दाबे रहें चौथे या छटेदिन जब मलिन होजावे तुरन्त उतार डालें और दूसरे पहना देवें शरीरको नङ्गा न रक्खें और सरसों या तिल का तेल प्रति दिन १० बजे के इधर उधर लगाना चाहिये जिससे चमड़े और शरीर में बल हो बच्चे को मा का दूध ४० या इससे अधिक दिन तक नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि प्रसूता का शरीर उन दिनों निर्बल होता है इस हेतु उस के दूध मेंभी

निर्वलता होती है, इस लिये माता का दूध पिलाना वर्जित है, ताकि प्रसूताका शरीर भी हृष्ट पुष्ट होजावे नहीं तो मा का दूध बहुत उत्तम और लाभ कारी है, इस लिये इन दिनों में दायी का दुग्ध पिलाना योग्य है और दाई की उमर २० या ३० वर्ष के लगभगहो जो उत्तम सुभाव शीलवती सुन्दर शोभायमान् वलिष्ठ और रोग रहित हो और जिसको बच्चा जने छः महीने या ४० दिन हो गये हों उसका दूध पिलाना चाहिये परन्तु माता की सब प्रकार से दायी पर दृष्टि रहे और उस को भोजन आदि अति गुणदायक जो बल बुद्धि निरोगता के देने वाले हों खिलाना चाहिये, जिस से बच्चे के शरीर में बल बुद्धि आदि उत्तम गुणों का प्रवेश हो और इस से परिश्रम कम लेना चाहिये दूसरे दायी को इस दशा में प्रसंङ्ग करने से वर्जित करें, सदा शरीर और वस्त्र को स्वच्छ बनाये रहे ।

और जो मनुष्य दाई का प्रवन्ध न करसकें तो उनको गौ के दूध के समान पानी मिलाकर पिलाना चाहिये बासी दूध बालक को कदापि न दे और जब उदर रोग होजावे तब आधा दूध और आधा पानी थोड़ा सा बहेड़ा सोंठ वा जल के साथ उबाल कर जब दूध रह जाय उसी दूधको पिलाना चाहिये और जब अजीर्ण हो तो दो चार बूंद चूने के पानी को मिलाकर देना उचित है और जो बालक दूध न पीताहो तो उस की जीभ में सेंधा नमक, आंवला, शहत घी, हर्र को पीस लगाना चाहिये ।।

फिर ज्यों २ बच्चे की अवस्था बढ़ती जावे त्यों २ दूध कम करती जाव और नियत समय पर पिलाने का स्वभाव डालें उस से दूध अच्छे प्रकार पचेगा और समय पर भूक

छगेगी भारतकी देवियां प्रति समय बच्चे को दूध पिलाती रहती हैं चाहे बच्चा किसी प्रकार से रोताहो वह उस को भूखा ही समझती हैं और दुग्ध पिलातीं हैं परन्तु यह रीती अत्यन्त हानिकारक है, तीन महीने के पीछे बार २ रात्रि में दुग्ध पिलाना छोड़दें अर्थात् १० बजे रात्रि के दुग्ध पिलाकर सुलादें फिर प्रातःकाल ४ बजे उठा कर पिलायें, ज्यों २ बच्चे की अवस्था बढ़ती जाय त्यों २ दुग्ध कम करती जावें जिस से बच्चे या दाई या माताको किसी प्रकार का क्लेश न हो, यदि बच्चे की स्वास्थ दशा उत्तम हो तो ९ या १० महीने के बीच में दुग्ध छुड़ा कम करतीं जायें और बच्चा निर्बल हो तो १८ या १९ महीने में दुग्ध को छुड़ावें ॥

जब बच्चा छः सात महीने का हो जाता है तो उस दशा में संसारी भोजनों की आवश्यकता होती है उस समय की निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

१—बर्त्तन स्वच्छ और पवित्र हों।

२—अन्नादि पहिले स्वच्छ कर लेना चाहिये।

३—अच्छे प्रकार रन्ध जावे अर्थात् कच्चा न रहे।

४—भोजन बलिष्ठ और आरोग्यता के देनेवाले हों जैसे गर्भिणी स्त्री के अर्थ लिखे हैं।

५—थोड़ा २ खिलावें जिससे पाचन हो जाय।

बहुधा माता के विकारी दुग्ध पीने से बच्चों के मुखपाक अर्थात् मुंहा हो जाता है, वह दो प्रकारका होता है एक सफेद दूसरा लाल।

सफेद मुहां

जब बच्चे के मुंह में सफेद मलाई सी जमी और फटी फटी सी वस्तु दीख पड़ती है उस को सफेद मुहां बोलते हैं जिस में मुख से लार बहुत गिरती है।

लाल मुहां

जब बालक के मुख में लाल दाने या छाले पड़जाते हैं उस को लाल मुहां बोलते हैं।

सफेद मुहांकी औषधि—

(१) सफेद कत्था ६ मासे शीतल चीनी १० दाने काफूर १ रत्ती तीनों पानी में पीस अंगुली से मुख में लगावें।

(२) पीपल की छाल और पत्र दोनों सुखाय बराबर ले कूट छान कर एक रत्ती के अनुमान दिन में चार पांच बार शहद के साथ चटावें।

(३) छोटी इलायची के दाने २ मासे, कत्था सफेद २ मासे, हाथी दांत जलाहुआ २ मासे, इन सब को बारीक पीसकर थोड़ा २ मुंह में डालें।

(४) कत्था सफेद २ मासे को ६ मासे भेड़ के दुग्ध में पीस कर थोड़ा मुंहमें डालें।

लाल मुहां की औषधि—

त्रिफले को पावभर पानी में ओटाकर उस पानी में रुई भिगोकर दिन में तीन चार बार मुख धोया करे माता को पथ्य से रहना योग्य है।

दांत—

प्रकट हो कि दांतों के निकलने के समय बच्चों को बड़ी २ कठिनाइयां उठानी पड़तीहैं इसलिये माताको निम्न लिखित चिन्होंसे परीक्षा करके उपाय करना चाहिये जिससे क्लेशनहो

१-मुंह से राल गिरती है।
२-मसूड़े गर्म और सुर्ख मालूम पड़ते हैं।
३=बच्चा अपनी उंगलियों को चबाता है।
४=प्यास के कारण बारम्बार दूध पीता है परन्तु दर्द के कारण शीघ्र छोड़ देता है।
५=दस्त और कै भी आने लगती है।
६=बच्चा रोता है और गाल सुर्ख हो जाते हैं।

जब ऐसा हो तो उसी दिनसे धीरे २ अन्न के भोजनों को न्यून करे और दूध अधिक करती जावें यहां तक कि उसका पालन दूध ही पर होने लगे, और मसूड़ों पर शहद और नोंन को मिलाकर दूसरे तीसरे दिन मले, या बाबूना के फूल को थोड़ा गर्म करके मसूड़ों पर मले, और मुलेठी कुचलकर बच्चे के हाथ में देदे जिसको वह चूंसता रहे और दर्द कम होजावे, यदि दर्दकी अधिकता हो और इस उपाय से कुछ लाभ नहो फिर किसी बुद्धिमान डाक्टर को बुला कर मसूड़ों को चिरवा देना योग्य है, और कुछ सन्देह किसी प्रकार का न करें क्योंकि इस उत्तम रीति से दो चार दिनतो क्लेश रहता है फिर किसी प्रकार की हानि नहीं होती शीघ्र आरामहोजाता है, और इन दिनों में बच्चों को गर्म टोपी न पहनाना चाहिये यदि गर्मी के दिन हों तो सिर को गर्म पानी से धोना उत्तम है, और जब उत्तम दशा में दस्त अधिक हों तो बेल के गूदे में मस्तगी मिला कर देना उचित है, और सदा इस बातका स्मरण रक्खे कि बच्चों को कभी कब्ज अर्थात् अफरा नहो इसलिये यही मुनासिब है कि दूसरे तीसरे दिन घुट्टी देदिया करें, घुट्टी की दवा यह है—

पोंदीना ४ रत्ती, सोंफ ४ रत्ती, मरोरफली ४ रत्ती, सोंठ २ रत्ती, अमलतास ४ रत्ती, पलासपापड़ा ४ रत्ती, पित्तपापड़ा ४ रत्ती, उन्नाब १ रत्ती, जीरा सफेद४ रत्ती नरकचुर २ रत्ती, सनाय ४ रत्ती, सुहागा २ रत्ती काला नोन ४ रत्ती ।

यह औषधि प्रत्येक ऋतु के लिये लाभदायक है, जब घुट्टी लेने को जावे तो योग्य है कि प्रत्येक औषधि को-तोल २ करलेवे और प्रत्येक को देख भाल स्वच्छ कर मिलावे क्योंकि बहुधा दूकानदार कम मूल्य देने से अर्थात् खराब और कुछकी कुछ कमती बढ़ती दे देते हैं जिस से लाभ नहीं होता वरन नाना भांति से हानि हो जाती है, बच्चे की घांटी को बुद्धिमान दायी से उठवाकर फिटकरी को महीन पीसकर शहदमें मिलाकर कौवे पर लगावे, वा माजू को सिरके में पीसकर तालूपर लगावें, वा शिर धोने की मिट्टी को जलाकर सिरके में मिलाकर तालू पर रक्खे, और बच्चा पैदा होने के पीछे २४ घंटे तक मल मूत्र का त्याग न करे तो ऐसी दशा में चतुर और योग्य हकीम को तुरन्त दिखलाना चाहिये और अच्छे बच्चोंके पाखाने का रंग पतला और हरा होता है, और दुर्गन्ध भी कम आता है, यदि इस में कुछ उलट पलटहो तो शीघ्रही किसी चतुरवैद्य को दिखलाना चाहिये,परन्तु यहभी स्मरण रहे कि भोजनों के खान पान से मल दुर्गन्ध आने लगता है यदि बच्चे को अजीर्ण हो तो दस्तों की औषधि न दें, और उस जगहपर गुलाब को शहदमें मिलाकर दो तीन बार करके थोड़ा २ पिलावें तो शीघ्र ही आराम हो जावेगा, इसके उपरान्त बच्चे को तीन बार दिन में नियत समय पर पावों पर बैठावें कि जिससे बिस्तरों पर मलमूत्र त्याग न करे, फिर जब बच्चे

को मल मूत्र की आवश्यकता होगी तो वह किसी इशारों से अपनी मा आदि को समझा दिया करेगा, इस रीति से बच्चे को पांच छः सप्ताह तक खूब सोने दे जबतक कि वह आप न जगे न जगावें और जब आठ नौ सप्ताह हो जावें तब नियत समय पर सुलाने का स्वभाव डालें जिस से रात्रि को माता की नींद में कुछ हानि न हो, बहुधा स्त्री सोने से जगा देती हैं, इस दशा में बच्चा सम्पूर्ण दिन रो २ कर काटता है और जिस स्थान पर वह सोता हो वहां चिल्लाहट न करें बहुधा स्त्री सोते हुए बच्चे की मिट्टिया लेती हैं यह बात भी अनुचित है और सोने से बच्चे का शरीर प्रफुल्लित होजाता है, मन प्रसन्न रहता है ऐसी दशा में बच्चों को अचानक न जगाना चाहिये, इस के उपरान्त बहुधा स्त्री बच्चे को सोने के अर्थ अफीम खिलाने का अभ्यास डालती हैं, यह अयोग्य बात है, इस से उन की आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है, और जरा से अधिक दे देने से उन के जीवन में अन्तर पड़जाने का भय होता है।

पसली, जमोघा, और सूखा.

प्रकट हो कि बालकों को जो २ बीमारियां होजाती हैं उन का मूल कारण माता के दुग्ध में बिकार का होना है, यदि माता सदा पथ्याऽपथ्यानुसार भोजनादि और व्यवहार करे तो कदापि बालक रोगों से पीडित न हों और न ऐसा रोगों का रोना मचे जैसा कि मचा रहता है, तिस पर तुर्रा यह है कि यहां के निवासी बहुधा बालकों के रोगों में झाड़ा फूंकी उतारे आदि कोहार, बढ़ई, डोम, चमार, काछी कोधे कसाई आदि से कराया करते हैं कि जिन से हजारों बच्चे परमधाम को चले जाते हैं, जिन के प्राण त्यागने पर माता

पिता की जो दशा होजाती है उसका हम वर्णन नहीं कर सकते, इस लिये प्यारे भ्रातृगणों इन मिथ्या प्रपंचों को त्यागो और इन सब बीमारियों में चतुर वैद्यों से ही औषधि कराओ, हक्लावक्ला न बनो कि जिस से हानि के अतिरिक्त कुछ भी लाभ नहीं होता।

पसुली

बालकों की हांफी को पसुली की बीमारी कहते हैं, इस बीमारी में यकायक बालक खेलते हुए आंखें पलटने लगजाते हैं मुख का रंग बदल जाता है मानों चलने का सामान होजाता है, यदि उनको वायु लगे और कुछ पानी छिड़काजाय तो होश में आजाते हैं, परन्तु यहां की तो स्त्रियां मूर्खता के कारण चारों ओर से घिरजाती हैं हाय २ कर झाड़ा फूंकी भांति २ से करने लगजाती हैं, कहीं लाल मिर्चों की धूनी, कहीं जूते में आग लगादेती हैं और कुत्तेकी पसली जलाकर उस का धुआं बच्चे की पसली को देती हैं और उसी के टुकड़े को अपने द्वार की चोखट के नीचे और चौराहे में गाड़ देती हैं, आटे की पसुली बनाकर कुत्ते को खिलाती हैं सच तो यह है कि बालकों को आप मार डालती हैं, पितादि को भी सिड़ी बना लेती हैं, उस बेचारे का नाक में दम कर देती हैं, हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! हे मनुष्यों! क्या इसी का नाम मनुष्यता है जो मनुष्यों के सत्संग में रहने पर भी स्त्री अज्ञान ही रहे? यह केवल हमारी और तुम्हारी ही भूल है जो उन के सुज्ञान होने की ओर ध्यान नहीं देते जिस के कारण हजारों मनुष्य बे सन्तान रहजाते हैं हे देव! आपही कृपा कर भारतवासियों के नेत्र खोलदीजिये।

हे बन्धुवर्गों और प्यारी बहनों ! यह बीमारी ऐसी नहीं है कि जिस से बालक मर ही जावें, हां उपरोक्त अज्ञानता के कारण कुछ की कुछ औषधि देने आदि के सबब मरजाते हैं ।

यह रोग दो प्रकार से होता है, एक तो वायु पित्त के कोप से और दूसरा वायु से, इस लिये दोनों का लक्षण लिखते हैं ।

वायु पित्त के लक्षण—दस्त पतला हो, पेशाब कम और गर्म हो, प्यास के कारण होठ चाटे, दूध भी कम पिये,सिर को बार २ घुमाये, हाथ पैरों को अक्सर तन्नाये

वायु के लक्षण—मल के सूख जाने से पाखाना नहीं होता, पेट फूल भी जाता है, पेशाब भी कम हो, नाक के छेद सूख जायें, और नाक की राह स्वांस भी कम आये, पेशाब का मुकाम कुछ भीतर को सिमट जाय, मुख की रङ्गत सफेद होजाय, नाक की ओर बार २ हाथ चलावे ।

औषधि बात पित्तकी—

प्रथम दस्त को गाढ़ा करने के लिये जंगली बेल का पका हुआ गूदा २ माशा, धाय के फूल १ माशा, जमनी की गुठली १ माशा, मस्तगी २ माशा, मिश्री ८ माशा, पीस कूट छान कर १४ माशे की खुराक और दिन में ९ खुराक कुए के ताजे पानी में दो २ माशे घोलकर दे और माता को कड़ी वस्तु अर्थात् रोटी और पुरी आदि न खाना चाहिये वरन पुराने चावल और मूंग की दाल बराबर २ लेकर अच्छी खिचड़ी बनावे कि जिस में पकने के समय ६ माशे अदरक को काटकर डाल देना भी योग्य है खाना चाहिये और पेशाब खुलकर होने के लिये खरबूजे

की मींगी ९ माशे इलायची सुर्ख के दाने एक माशे, पीसकर इनकी दो खुराक कर पानी में घोलकर दें।

औषधि वायु की–

गुलकन्द ४ माशे, शाहपसन्द १ माशा, इलायची सुर्ख के दाने १ माशा–इन सबके चार भागकर सुबह से ८ बजे तक खिलाना चाहिये, यदि इस से पाखाना खुलकर न आवे तो जलापा एक माशा गुलकन्द चार माशे मिलाकर गर्म पानी में घोलकर दें।

लेप–

अमलताश का गूदा २ माशे, काला नमक एक माशा इन दोनों को पानी में घोलकर गर्म कर बार २ पेट पर लेप करे तो भी पाखाना खुलकर हो जावेगा।

पसली पर लेप–

बारहसिंहा, सोंठ, अफयून–इन सबको एक २ माशा लेकर घिसकर गुनगुना कर पसुली पर लेप करें।

जमोघा–

जब माताके दूधमें विकार होजाता है और उस विकारी दुग्ध के पीने से बच्चे के भेजे के प्रथम भाग में एक गुद्दा पड़ जाता है और कुदशा होजाती है, बच्चों को यह बीमारी ऐसी है जैसी तरुणों को मृगी, और जब तीनों भागों में गुद्दा पड़जाता है तोवह बच्चे मरजाते हैं हमारे देशके बहुधा जन उसको भूत प्रेत समझ कर गण्डे तावीज झाड़ा फूंकी में लगे रहते हैं, कोई बन्दर लाकर बांधते हैं, कोई बन्दूक छुड़ाते हैं कोई उतारे उतारते हैं, इसी प्रकार सैकड़ों प्रकार के अनुचित व्यवहार करते हैं और मुख्य बीमारी कीकुछ

चिन्ता नहीं करते यहां तक कि तीनों भागों में शुद्ध पड़जाते हैं इस लिये सर्वजनों को उचित है कि जब कभी यह बीमारी बालकों को हो उसी समय किसी योग्य वैद्यसे उपाय करावें, और बहुधा इसी बीमारी के अन्त पर सूखा की बीमारी भी होजाती है और पृथक् भी सूखा की बीमारी होती है, दोनोंके लक्षण देखकर औषधि कराना योग्य है।

जमोघा के लक्षण–

(१) जीभ के नीचे की नसें हरी जान पड़ती हैं।

(२) स्वांस अच्छे प्रकार से नहीं आती जाती हैं।

(३) नींद कम आती है।

(४) मुखड़े पर सफेदी आती जाती है।

(५) पेशाब सफेद होता है।

(६) आंखों के पलक जल्दी खोलता मारता है।

(७) मुंह से फुसकर निकलते हैं।

सूखा के लक्षण–

(१) कान ठण्डे रहते हैं।

(२) तालू दब जाता है।

(३) पेशाब कम आता है।

(४) जीब चटकती है।

(५) हथेलियां गर्म रहती है।

इनके दूर करणार्थ कुछ औषधि भी हम यहां लिखते हैं–

(१) मोती अनबिंधे एक माशा, वंशलोचन एक माशा, कछुएकी खोपड़ी सूखी एक माशा, सफेद इलायची के दाने एक माशा–एक पैसाभर अर्क केवड़ा में खरल करके मूंग की बराबर गोली बनाकर प्रातःकाल एक गोली दें।

(२) सफेद इलायची के दाने ३ माशे, केसर ६ माशे मोती ४ रत्ती, बंशलोचन ६ माशे—एक छटांक शहद की चाशनी कर इन सब औषधियों को डालकर रख छोड़ें और प्रातःकाल ४ रत्ती प्रति दिन दें।

प्रलेप—

कछुए की खोपड़ी ३ माशे, केसर १ माशे, अफीम ९ माशे, इन सब को एक छटांक तिली के तेल में जलाकर छानले और ८ या १० दित तक शरीर पर मले।

नोट—

ऐसे बच्चों के कण्ठ में ऊदसलीब को लटकादेवें या मूंग की लकड़ी से दोनों भोंहों के बीचमें दाग दें

बिस्फोटक अर्थात् शीतला—

सम्पूर्ण बालकों को एक रोग हुआ करता है जिससे सम्पूर्ण शरीर पर छोटी २ फुंसियां फफोलों की आकृति में उत्पन्न होजाती हैं जिसको हिन्दू बिस्फोटक मुसलमान चेचक और अङ्गरेज 'इस्मालपाक्स' कहते हैं, यह एक ऐसा दुष्ट रोग है कि जो इस में फंसता है वह मानों मृत्यु से संग्राम करता है, यदी इससे बचगया तो मानों नवीन जन्म धारण किया परन्तु स्मरणार्थ ऐसे चिन्ह पडजाते हैं जो जीवन भर नहीं जाते और बहुधा अङ्ग भङ्ग होकर अन्धे लूले लंगड़े बहरे हो जाते हैं कि जिसके प्रभाव से उनका जीवन ही निष्फल हो जाता है।

जिस गृह में यह रोग होता है उसकी वायु विगड जाती है जिस से अन्य पुरुषों के जीवन में भी हानि होतीहै, परन्तु महान् शोक का स्थान है कि इस समय इस भारत के बहुधा

निवासी इस रोगको एक देवी मानते हैं कि जिसकी पूजा के अर्थ माली चमार आदि मंत्र तन्त्र और नीम की डाली हिलाते और चौराहों में शर्बत चढवाते हैं और कहते हैं कि देवी प्रसन्नहो जायगी सो यह पुजारी हमारे भाइयों को खूब लूटते हैं और उनके गृहों में जाकर खूब सिर हिलाते हैं और कहते हैं कि हमारी भेंट चढ़ाओ में देवी हूं तुम्हारे बालक शीघ्र अच्छे होजायगे नहीं तो भेट ले जाऊंगी जहां ऐसी ऊट पटांग बात सुनाई हक्काबक्का हो चकित रहजाते हैं उस समय तन मन धन से उन पुजारियों की सेवा में वस हो जाते हैं और किञ्चित् बिचारांश नहीं करते, यदि दैवयोगसे अच्छा होगया तो सम्पूर्ण आयु अच्छे प्रकार चैन से उडाते हैं बरन् उनकी कुछभी हानि नहीं होती।

हे प्यारे भाई बहिनों यह एक प्रकार का रोग है और रोग दूर करने के अर्थ परमेश्वर ने औषधियों को बनाया है सो इस समय झाड और छू मन्त्रों में फंसकर रोगोंको असाध्य कर देते हैं कि जिसके कारण अनेक बच्चे परमधाम को चले जाते हैं और नाना भांति से क्लेश उठाते हैं और द्रव्य का सत्यानाश मारते हैं, और माली आदि अज्ञानी शठ जो हमारे तुम्हारे यहां आकर पुजारी बनते हैं वह अपने घरके बाल बच्चों को क्यों नहीं बचा लेते, जब वह अपनी प्यारी सन्तानों पर कुछ नहीं कर सकते तो हमारे और आप के यहां क्या कर सकते हैं।

देखो अंगरेज मुसलमानों के यहां भी तो यह रोग होता है वह शीघ्र औषधि कर अपनी सन्तानो को आराम कर लेते हैं और आप सुख में रहते हैं, क्या खूब इस के बिपरीत

नेत्रों से देख भाल कर भी हम नाना प्रकार के कारागार में गिरते चले जाते हैं और अपार दुःखों को उठा रहे हैं ।

यह रोग गर्भाधान से ही प्रत्येक बालक के पेट में रहता है क्योंकि जब स्त्री रजस्वला नहीं होती और गर्भ रह कर रक्त बन्द हो जाता है उस रक्त की गर्मी बालक के पेट में रहती है जब वह पृथ्वीपर आता है तब समय पाकर वह अपना प्रकाश करता है, इसके नाश करने के अर्थ वैद्यों ने हिन्दुस्तानी टीका निकाला है जिसको 'भेद' कहते हैं इससे बालक तो बच जाता है परन्तु उसको क्लेश बहुत होता है, सो अब सरकार के चतुरवैद्यों ने टीका लगाने की ऐसी सुगम रीति निकाली है कि जिससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती जो इस समय में प्रचलित है, सो आपभी इस टीके को प्रसन्नता पूर्वक अपने बालकों के लगवाया करो जिससे आनन्द हो और सन्तान मृत्यु आदि कठिन क्लेशों से बचे, माली आदि के बुलाने से हानि के उपरान्त कुछ लाभ नहीं होता ।

बिशेष प्रार्थना—

प्रकट हो कि धातु में दोष होने के अनेकान कारण हैं परन्तु बिशेष यह है—न्यून अवस्था का बिवाह वा रंडीबाजी लौंडेबाजी वा अति बिषय का करना जिनसे बीर्य्य पतला हो जाता है जो अनुचित समयों पर निकलता रहता है जिस को प्रमेह कहते हैं ऐसे पुरुषों को स्त्री के समागम में आनन्द नहीं आता अर्थात् स्पर्श करते ही स्खलित होजाते हैं, ऐसे ही बलहीन पुरुषों के वीर्य्य से सन्तान का बीज नहीं जमता जिसके दूर करणार्थ हजारों रुपये की बिलायती औषधियां हमारे देशवासी खाजाते हैं जिनसे तनक भी आराम नहीं

होता क्योंकि वह हमारी प्रकृति और पवन पानी के अनुकूल नहींहै तिसपर भी धर्मकर्म में धब्बा लगजाताहै, हे प्रयवरो! क्या उन दवाइयों को अङ्गरेज लोग नहींबनाते जो शौच के नाम कागज से साफ करते हैं और मल मूत्र त्याग करने पर भी हाथ नहीं धोते ? इस के उपरान्त फासफर्स की गोलियों में गाय, सुअर, गदहा और आदमियों की हड्डियों ही का तो सत्त पड़ता है क्याइसी का नाम धर्म रक्षा है।

इस लिये प्यारे सुजनों इन नाना भांति की बीमारियों से आरोग्यता प्राप्त करनेके अर्थ अपने ही देश के पूर्ण विद्वान् वैद्यों से औषधि कराया करो जैसा कि वर्त्तमान् समयमें श्रीयुत पं० जगन्नाथशर्म्मा राज्य वैद्य इलाहाबाद निवासी आदि हैं

स्त्री और पुरुषको बलवान् करनेवाली औषधि.

इलायची सुर्ख के दाने ६ माशे, इलायची सफेद के दाने ६ माशे, तगर ६ माशे, सौंठ ५ माशे, बंशलोचन १ तोला, सालिब मिश्री २ तोला, सकाकुल २ तोला, मूसली सफेद ४ तोला, सेमर का मूसला १ तोला, केशर ६ माशे चोबचीनी १ तोला, बादाम की मींगी आधी छटांक-इन सब को पीसकर उसके बराबर मिश्री मिलाले और २ तोले प्रतिदिन गाय के दुग्ध के साथ ४० दिन तक खावें।

स्वप्न दोष के दूर करणार्थ—

गौंदनी के पक्केफलों को सुखाकर ३ माशे ले और बबूलका गौंद ६ माशे और कैंचकेबीज ६ माशे, इन सब को पीस उस के बराबर मिश्री मिलाकर दो तोले आधसेर गाय के दुग्ध में प्रति दिन खाये।

भूख खुलकर लगे

गुलाब के फूल ९ माशे, नागरमोथा ९ माशे और तगर बालछड़, इलायची सफेद तथा सुर्ख, कचूर ये सब छः छः माशे, और लौंग जावित्री केशर दो २ माशे, इन सब को पीसकर सब के बराबर मिश्री मिला प्रति दिन सुबह शाम आठ २ माशे खावें।

बच्चों की खांसी

(जो सर्दी से हो)

दारचीनी ४ रत्ती, लौंग १ अळसी ४ रत्ती, काकड़ासिंगी २ रत्तीं, इन सबको पीसकर एक तोला शरबत ख़शख़श में मिलाकर दिनरात में चार बार चटावें।

(जो गर्मी से हो)

रुब्बुलसूस १ रत्ती, बबूल का गोंद ४ रत्ती, इलायची सफेद के दाने ४ रत्ती, अफीम १ रत्ती, शहत ९ माशे, इन सब को मिलाकर दिन रातमें पांच छः बार चटावे।

भगन्दर—

बालक के भगन्दर चाहे बहिर्मुखबालाहो चाहे अंतरमुखबाला हो उस के लिये विरेचन, अग्निकर्म शास्त्र, क्षार कर्म अहित हैं केवल मृदु और तीक्ष्ण औषधियों को काम में लावें॥

अमलतास, हल्दी, अहिंसा इन के चूर्ण को शहत और घी में सानकर उस में सूतकी वत्ती को लपेट कर व्रण में लगादे यहव्रण शोधक में हितहै। यह योग भगन्दर को ऐसा शीघ्र अच्छा करदेताहै जैसे वायुमेघ की गतिको करदेते हैं॥

॥ इति॥

॥ ओ३म् ॥

लीजिये देखिये

हिन्दी भाषा की सर्वोपयोगी पुस्तकें जिन से सनातन धर्म की यथार्थ महिमा प्रकट होती है।

विज्ञापन

सज्जन पुरुषों ! मैं निम्न लिखित पुस्तकों की क्या प्रशंसा करूं जब कि पबलिक आपही प्रशंसा कर रही है और अपनी कदरदानी के कारण कई बार छपचुकी है।

अतएव

आपदेख पुत्र,पुत्रियों, स्त्रियों और मित्रादिकोंको दिखाइये।

नया रङ्ग नया ढंग नया दृश्य-

पुराण-तत्व-प्रकाश ।

अर्थात्

सनातनधर्म सभाओंकी माननीय अठारह पुराणोंकी मीमांसा

जिसमें

५०० पृष्ठ और मूल्य १।।) है ।

पाठकगण किताब क्या है गोया आधुनिक धर्म सभाओं की माननीय अठारह पुराणों की यथावत् मीमांसा है जिस के पाठमात्र से पुराणों का रहस्य खुल जाता है उस के भीतरी तिलस्मातों का भयानक दृश्य स्पष्ट दृष्टि आने लगता है इस लिये मैं समस्त सनातनी भाइयों और आर्य्य महाशयों से प्रार्थना करता हूं एक२जिल्द मंगाकर अपनी२

समाज में सुनाकर मुझको कृतार्थ करें क्योंकि इस से उनको मालूमात का ख़ज़ाना हाथ आयेगा यदि आपको फिर से समस्त भारत देश में वैदिक धर्म के सूर्य का प्रकाश करना है।

तो

कृपा करके अपनी २ गृहणियों को अवश्य पढ़ाइये सुनाइये जो पुराणों के लेखों पर मोहित होकर तन, मन, धन न्यौछावर कर पुरुषों को वैदिक सिद्धान्तों से गिरा देती है प्रिय सज्जन पुरुषों! इस के लिखने का ढंग बड़ा ही प्रिय और भाषा सरल और रोचक है एक बार आपने हाथ में ली तो बिना समाप्त किये कभी हाथ से न रक्खेंगे तिसपर।

बड़ा लुत्फ़ यह

हाथ आवेगा। कि मजे के साथ किताब को बगल में देकर सनातनी पं० साहिबान से शङ्का समाधान कर अपने चित्त को शांति कीजिये और सनातनी भाइयों को यह लाभ होगा। कि जिन्होंने अठारह पुराणों के कभी दर्शन नहीं किये उनको उनकी मालुमात होगी फिर वह उन पर विचार कर सत्यासत्य का निर्णय कर सत्यधर्मके अनुयायी होकर भारत सन्तान का उद्धार करेंगे। इसकी प्रशंसा में अनेकान पत्र आते हैं उन में से हम कुछ आपकी भेट करते हैं इनको आप ध्यान देकर पढ़िये विचारिये कैसी जरूरी पुस्तक है और किस परिश्रम से लिखी है।

श्रीपण्डित पद्मसिंहजी शर्मा एडीटर भारतोदय

अपने पत्र में लिखते हैं कि इसी पुस्तक में श्रीमद्भागवत देवी भागवत, पद्म, विष्णु, शिव, लिङ्ग, अग्नि, कूर्म, वाराह, भविष्य, ब्रह्म वैवर्त्त, वामनादि पुराणों से सभ्यता पूर्वक यह दर्शाया है कि अठारह पुराण महर्षि व्यास प्रणीत नहीं हैं इस पुस्तक में आर्य्य समाजिक दुनियां के ग्रन्थकारों में प्रसिद्ध मुं० चिम्मनलालजी वैश्य ने बड़े परिश्रम से काम लिया है खूब छानबीन के साथ पुराणों से प्रमाण इकट्ठे कर अपने मतकी पुष्टि की है लम्बी २ कथाओं का सार हिन्दी भाषा में लिखकर मूल प्रमाण यत्र तत्र उद्धृत किये हैं पुस्तक का क्रम और लिखने का ढंग अच्छा है पुस्तक पढ़ने में जी लगता है यह पुराणों के अनुयायी और विरोधी दोनोंके देखने योग्य और कामकी है

श्रीमान् पंडित बाबूरामजीशर्म्मा एडीटर सुधांशु

श्रीयुत मुं० चिम्मनलाल जी वैश्य एक पुराने आर्य्य भद्रपुरुष हैं आपने नारायणी शिक्षा आदि लाभकारी पुस्तकें लिखकर आर्य्य धर्म्म प्रचारार्थ बड़ी सहायता दी है और साहित्य पर बड़ा उपकार किया है। हाल में ही आपने पुराण तत्व प्रकाश नामक एक नूतन पुस्तक तय्यार की है हमने इस के दो भागोंको आदि से अन्त तक पढ़ा है इस लिये हम दावे के साथ कहसक्ते हैं कि यह अठारह पुराणों का तत्व प्रकाश करने में अनुपम और अद्भुत प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में प्रश्नोत्तर की रीति पर पुराणों का विषय बड़े विस्तार के साथ वर्णित है और

साथ ही साथ उसकी असारताका खण्डन भी बड़ी योग्यता के साथ लिखा है। हमारी सम्मति में इसकी एक २ प्रति प्रत्येक आर्य्य गृह में अवश्य पहुंचनी चाहिये।

श्री१०८श्रीस्वामी विशेश्वरानन्दजीका श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्द सरस्वती जी महाराज

श्रीमान लाला चिम्मनलालजी प्रणीत पुराणतत्व प्रकाश नामक पुस्तक हमारे देखने में आया इस पुस्तक के नाम से ही इस का रहस्य विज्ञ पाठकों को ज्ञात हो सकता है आप की लेख शैली कैसी उत्तम होती है इस का परिज्ञान आप के बनाये गृहस्थाश्रम आदि ग्रन्थों से ही पाठकों को हो चुका है। पुराणा की परताल की आवश्यकता थी उस शुभ कार्य का भी उक्त महोदय द्वारा प्रारम्भ हो गया है हम वाचक वृन्द से सानुनयसाग्रह निवेदन करते हैं कि इस पुराण तत्व को ग्रहण करके इस के तत्व से लाभ उठावें और ग्रन्थकर्ता महानुभाव क श्रम को सफल करें ताकि ग्रन्थकर्ता का उत्साह बढ़े और अन्य उत्तमोत्तम ग्रन्थ निर्माण द्वारा ग्रन्थकर्ता वाचक वृन्द की सेवा कर सके।

बाबू फूलचन्द साहब बेंकर नीमच छावनी

आपका पुराणतत्व नामक पुस्तक जैसा सुनते थे वैसा ही पाया इस बहु मल्य पुस्तक में आपने पुराणों के खण्डनीय विषयों का खण्डनही नहीं किया है किन्तु उनके वेद महिमादिक प्रकरण देकर पुस्तक को परमोपयोगी बना दिया है पुस्तक क्या है मानों १८ पुराणों के स्वरूप देखने को दर्पण है मूल्य भी १।।) रु० अधिक नहीं है मैं आपके

इस परोपकारक कार्य की प्रशंसा करता हुआ अनेकशः धन्यवाद देता हूं ॥

श्री स्वामी नित्यानन्दजी अनाथ भारत सेवक तथा स्वतन्त्र प्रचारक ।

मैंने आपके पुराण तत्व को सांगोपांग पढ़ा वास्तव में आपका पुरुषार्थ सराहनीय है और ग्रन्थ अपूर्व है ।

श्री. बाबू हजारीलालजी रईस तिलहर

यह पुस्तक सम्पूर्ण धर्मावलम्बियों को देखने योग्य है जिसमें सभ्यता के साथ बहस की गई है मैंने ऐसी पुस्तक इस विषय में नहीं देखी इस की भाषा बड़ी सरल है और स्त्रियों के भी देखने योग्य है ।

श्रीदेवी सदांकुंवरजी धर्मपत्नी सरदारतारासिंह जी रईस रसूलपुर ।

मैंने पुराण तत्व के दोनों भागों को अच्छे प्रकार पढ़ा पुस्तक यथार्थ में उत्तम है मेरी बहुतही पसन्द आई इसके लिखने का ढंग बहुत ही अच्छा है ॥ इत्यादि ॥

सरस्वतीन्द्र जीवन

अर्थात

श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का स्वच्छ हिन्दी भाषा में जीवन चरित्र

प्रिय पाठक गणों !

यों तो आपने स्वामी महाराज के हिन्दी भाषा में कई एक जीवन देखे और पढ़े होंगे परन्तु यह निराला जीवनहै

इसमें मैंने जो परिश्रम किया है वह आपको पढ़ने से विदित होगा प्रथम तो भाषा सरल प्रिय जिसको स्त्रियां और पुत्रियां भी अच्छे प्रकार समझ सकती हैं। यथार्थ में यह स्त्री पुरुष पुत्र पुत्रियों के देखने के योग्य है।

महाशय गणों! एक बार आप भी पढ़लीजिये फिर देखिये आपका चित्त कैसा प्रसन्न होता है आर इससे कैसी २ शिक्षाएं मिलती हैं। मूल्य १≈) डाकव्यय ।) चार आना ॥

इस के विषय में—

श्रीमान् पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

जुलाई १९०९ ई० की सरस्वती में फरमाते है कि—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवन चरित्र प्रकाशित होचुके हैं उनमें से श्रीयुत लेखरामजी का उर्दू में लिखा हुआ जीवनचरित्र सर्वश्रेष्ठ है। उसी के आधार पर यह सरस्वतीन्द्र जविन लिखा गया है। आपने लेखरामजी की पुस्तक से प्रायः सारी मुख्य २ घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचनाकी है इसके सिवा मास्टर आत्माराम और लाला राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है। पुस्तक में स्वामीजी के साधारण चरित्र के अतिरिक्त उन के शास्त्रार्थ, उन के धर्मोपदेशक और उन के ग्रन्थ निर्माण आदि की भी बातें हैं पुस्तक बड़े २ कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। टायप अच्छा। कागज़ मोटा है। स्वामीजी पं० लेखरामजी और पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी के हाफटोन चित्र भी पुस्तक में हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ १≈) है। महात्मा जन चाहे जिस देश,

जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हों उनका चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है। जो ऐसा समझते हैं उन्हें स्वामी जी का चरित्र भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिये।

श्रीमान् पं० विष्णुलालजी शर्मा मुन्सिफ बरेली

मैंने आपके छपाये सरस्वतीन्द्र जीवन को पढ़ा।

पं० लेखरामजी स्वर्गवासी के संग्रहीत चरित्रों को छोड़ शेष अब तक जितने छपे हैं उन से इस में अधिक हाल पाये वास्तव में आपने उर्दू के उन सारगर्भित लेखों की जिन के आनन्द से बिना उर्दू जानने वाले बञ्चित रहते थे भाषा करके बड़ा उपकार किया है मैं समझता हूं कि आपने इस इतिहास के लिखने में श्री स्वामीजी के कार्य काल को यथा क्रम रखा है पुस्तक की छपाई अति सुन्दर है। और चित्र भी सर्वाङ्ग उत्तम हैं। मूल्य १।) अधिक नहीं है मैं आपको इस कार्य पूर्ति का धन्यवाद देता हूं॥

श्रीमान् ठाकुर गिरवर सिंह साहिब पूर्वोक्त अवैतानिक उपदेशक श्रीमती आ०प्रा०सभा संयुक्त प्रदेश आगरा व अवध।

मैंने मुं० चिम्मनलालजी वैश्य लिखित सरस्वतीन्द्र जीवन को देखा और ध्यान से पढ़ा और बहुधा स्थानोंपर धर्मेन्द्र जीवन से मिलान किया तो जान पड़ा कि इस में निम्न लिखित बातें अधिक हैं जो बड़ी उपयोगी और लाभदायक हैं।

(१) काशी शास्त्रार्थ पर कई एक समाचार पत्रों की सम्मातियां—
(२) कलकत्ता, हुगली, डुमरांव, सहारनपुर और शाहजहांपुर में योग्य पुरुषों के प्रश्नों के यथावत उत्तर—

(३) उदयपुर में स्वामी दयानंदजी की दिनचर्य्या–
(४) महाराज उदयपुर को दिनचर्य्या का उपदेश–
(५) जैनियों के सुप्रसिद्ध पं० आत्मारामजी साधू सिद्धकरणजी के प्रश्नों का भले प्रकार समाधान–
(६) पादरी ग्रे साहिब अजमेर और बम्बई में एक पादरी साहिब से धर्म चर्चा मसौदा में बा० बिहारीलालजी ईसाई से प्रश्नोत्तर–
(७) आर्य्य संमार्ग संदर्शनी सभा का सविस्तार वर्णन और उसके प्रश्नों के उत्तर–
(८) मौलवी मुहम्मदअहसन साहिब जालन्धरी मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहिब मौलवी मुहम्मद अब्दुलरहमान साहिब जज उदयपुर के शास्त्रार्थ–
(९) स्वामी जी की शिक्षा का क्या २ फल हुआ ।

इसकी भाषा सरल, प्रिय, चित्त को लुभानेवाली है जिस को स्त्रियां भी समझ सक्ती हैं कागज उत्तम स्याही और छापा श्रेष्ठ तिस पर भी मुन्शी जी ने सर्व साधारणके सुभीतेके लिये ४०० पृष्ठ होने पर भी मूल्य अत्यन्त स्वल्प १≈) सजिल्द १।।) ही रक्खा है ।

श्रीमान् पण्डित **निरंजन देव शर्म्मा** उप० श्रीमती प्रति निधि सभा–मैंने इस जीवन को विचार पूर्वक पढ़ा बड़ा ही रोचक है इस पर भी भाषा सरल अनेकान विषय इस में ऐसे हैं जो अभी तक नागरी के जीवन चरित्रों में नहीं छपे कम पढ़े मनुष्य और स्त्रियां भी भले प्रकार समझ सक्ती हैं इसकी उत्तमता वास्तवमें पढ़ने से ही प्रतीत होगी सच तो यह है कि अनेक प्रकार से उत्तम और तीन मनोहर चित्रों सहित होनेपर भी इस पुस्तकका मूल्य १≈) सजिल्द १।।) है अतः मैं आर्य्य पबलिक तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों से सिफारिश करता हूं कि एक २ जिल्द मंगाकर आप

देख अपनी पुत्रियों, स्त्रियों, पुत्रों को अवश्य दिखलावें।

श्रीमान् पं० सदानन्दजी पेशकार तहसील किचहा जि० नैनीताल--मैं आपके सरस्वतीन्द्रजीवन को देख हार्दिक धन्य बाद देता हूं दरअसल यह पुस्तक अति सराहनीय है। तिस पर भी मूल्य बहुतही सस्ता है। इत्यादि-

भारत प्रसिद्ध

नारायणीशिक्षा (गृहस्थाश्रम) का अष्टम एडीशन

यह पुस्तक बड़े परिश्रम से बेद छः शास्त्र अठारह स्मृति और अठारह पुराणों के अतिरिक्त चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों और बड़े बुद्धिमान स्पीकरों और मशहूर २ समाचार पत्रों के उत्तम २ आर्टीकलों से संग्रह कर, ६४० पृष्ट पर रायल अठपेजी बम्बई अक्षरों में उत्तम कागज पर मुद्रित कराई है जिस में उत्तमता यह भी है कि प्रत्येक विषय का तर्क द्वारा सिद्ध कर दिया है सम्पूर्ण विषय ५०० के लगभग हैं अर्थात् गृहस्थ सम्बन्धी कोई विषय ऐसा नहीं जिस का आन्दोलन इस में न किया गया हो क्योंकि इसमें प्रथम आरोग्यता रहने के नियम २=गर्भाधान की रीति और उस के उपयोगी विषयों का वर्णन ३-ब्रह्मचर्य के यथावत् पालन के लाभ ४-विद्या और गुरु, पुरोहित, आचार्य के लक्षण की शिक्षा की आवश्यक्ता और प्राचीन समय की ५५ विद्वान् धर्मात्मा शूरवीर स्त्रियों के जीवन चरित्र ५-बिवाह कब और किस प्रकार होना चाहिये ६-धन की महिमा ७-दान महात्म ८-पति पत्नीधर्म ९-वेद, नीति की शिक्षायें १०-स्त्री धर्म की महिमा, पति बृताओं की कथा ११-गृह कार्यों का वर्णन अर्थात् रसोई, पकवान, मुरब्बे, आचार, गुलकन्दादि के बनाने की रीतें १२-वैद्यक विद्या के लाभ कारी विषय १३-सीना पिरोना १४-पति धर्म १५-धन प्राप्त की रीतें १६-संस्कारों के लाभ १७-आ-

बागवन १८--धर्म मार्ग १९--नित्य कर्म २०--पुराण महात्म २१--त्योहार २२--ज्योतिष २३--मन्त्र यन्त्र २४--रसायन २५--व्रत २६--तपस्या २७--तीर्थ २८--योग २९--मोक्ष आदि विषय लिखे गए हैं जिन का इस स्थान पर यथावत बर्णन करना अत्यन्त कठिन है, दांतों का मंजन आंखोंका अंजन मस्तक, धातु, बुद्धि के बलिष्ट करने स्त्रियों के रोग निवाणार्थ सुहाग सोंठ और स्त्री रोग, लवण भास्कर लोलम्ब राज चूर्ण, बवासीर खूनी और बादी आदि के उपयोगी नुसखे कौड़ियों में हाथ आयेंगे बालकों के सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्सा मोती, कस्तूरी की पहिचान, जानवरों के बिष उतारने का उपाय, कपड़े रंगने की रीतें, प्राणायाम का ढंग जिसकी प्राचीन ऋषियों ने बहुत कुछ प्रशंसा की है आपके भेटहै यह उत्तम अनुपम पुस्तक आप और आपकी सन्तानों को शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति के ढंग वतलानें में एक बुद्धिमान डैवर है। जो आप को इच्छानुसार आनन्द और मंगल देता हुआ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा अमूल्य पदार्थों को देने के लिये उत्तम है तिसपर भी देश की कुदशा को देख प्रत्येक गृहस्थ के हाथ में पहुंचने के लिये इसका मूल्य वही १।) रक्खा है। मित्रों इतना सस्ता और ऐसी अच्छी यही पुस्तक है जिसकी प्रशंसा में हमारेपास हजारों सार्टीफिकट आचुके हैं सच मानिये कि आपभी देख कर प्रसन्न होंगे। आपके लिये कुछ सार्टीफिकट लिखता हूं

श्री मान् पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी

(सरस्वती भाग १० सं० ७)

पृष्ठ संख्या ६१२। सांचा बड़ा। कागज अच्छा। छपाई बंबई के टायपकी। मूल्य सिर्फ १।) रुपया। इस इतनी सस्ती परन्तु उपयोगी पुस्तक का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम शिक्षा है। पुस्तक कोई ३० भागों में विभक्त है गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध

रखनेवाली । शिशुपालन, शरीर रक्षा, ब्रह्मचर्य, विवाह, पति, पत्नी धर्म, नित्य कर्म आदि कितनी ही बातों का इसमें वर्णन और बिचार है । श्रुति, स्मृति, उपनिषद, पुराण, आदि से जगह जगह पर विषयोपयागी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं । पुस्तक में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिन का जानना गृहस्थ के लिये बहुत जरूरी है । इस पुस्तक को लोगों ने इतना पसन्द किया है कि—आज तक इस के ६ संस्करन हो चुके हैं ।

श्रीमान् पं० विष्णुलालजी साहब एम. ए. सबजज

MY DEAR MUNSHI CHIMMAN LALL JI,

The Narayani Siksha is a Library in itself, being a work of Cyclopedia information No subject theoretical or practical, which is useful to a house holder has been left untouched. The style is simple, yet impressive. I am not aware of a better book for females in Hindi, and am of opinion that no Hindu family should be without a copy of your book.

श्रीमान बाबू रामनारायण साहब तिवारी ।

Dear Sir

I have read the Narayani Siksha of or Grihasta Ashram compiled by you, I do not know of any other book in Hindi which gives in such a short compass every thing that a Grihasta or a house holder,should knew-Besides, I find your book a valuable additeruinn to the literature for Hindu women. It is a pleasuro to see thet the book is so cheap a lesson that other authors on popular subjects might welll earn from you I think a book on vedic principles should beas cheap as possible and no ene will I am sure grumple to spend one rupee and four annas more forten and usetul marters contained in your book.

श्रीमान् ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द सरस्वती

मैंने आपकी बनाई हुई पुस्तकों को अच्छे प्रकारसे देखा

यह सब किताबें पबलिक को शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति करनेवाली हैं विशेष खूबी यह है कि प्रत्येक विषय के साबित करने के लिये वेद, स्मृति, पुराण, इत्यादि के प्रमाण अच्छे प्रकार से दिये हैं जिसके कारण इन पुस्तकों के पढ़नेवाले पूर्ण लाभ उठाते हैं दौरे में मुझसे आपकी पुस्तकों की अनेकान पुरुषोंने प्रशंसा की वास्तव में यह प्रशंसा ठीक है क्योंकि आपने इनके लिखने में बड़ा परिश्रम किया है इस लिये मेरा चित्त आपसे बहुत प्रसन्न है। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आप अपने जीवनभर इस उपयोगी कार्य्य को सदा करते रहें जिस से देश में वैदिक ख्यालात की उन्नति होकर सब प्रकार आनन्द हो।

सम्पादक महोदय

श्री० महात्मा मुन्शीरामजी सं० सद्धर्मप्रचारक, श्री० पं० तुलसीरामजी वेदप्रकाश मेरठ, सम्पादक सरस्वती।

श्रीमान् मुन्शी बख्तावरसिंह साहिब एडीटर आर्यदर्पण शाहजहांपुर श्रीमान् एडीटर आर्यावर्त्त दानापुर सरस्वतीविलास नरसिंहपुर श्रीयुत एडीटर आर्यसमाचार मेरठ। श्रीयुत एडीटर गोधर्मप्रकाश। श्रीयुत एडीटर भारतसुदशा प्रवर्त्तक फर्रुखाबाद। इत्यादि।

अन्य देखने योग्य पुस्तकें

गर्भाधान विधि—यह सातवींबार छपाई है इस में धातु और उसके गुण, स्त्रीप्रसंग, गर्भविधान, उत्तम संतान की विधि, गर्भ परीक्षा, उसकी रक्षा, गर्भ में पुत्र या पुत्री की पहिचान, गर्भवती का कर्तव्य, गर्भपात के लक्षण और उसकी चिकित्सा, प्रसवकाल प्रसूत की रक्षा, स्त्री पुरुषों में संतान होने के कारण के अतिरिक्त शिशुपालन और अनेक कठिन रोगों की चिकित्सा का बर्णन है। मूल्य ≈)॥

वीर्य्यरक्षा—यह पुस्तक सुख की खान है अवश्य आप देख कर सन्तानों को दिखाइये और उन को भयानक रोगों से बचा इये क्योंकि वीर्य्यरक्षा करना ही सुखों का मूल है शोक कि सन्ताने इस के लाभों को न जानकर कुमार्गियोंके संग पड़कर कुसमय कुरीतों से वीर्य्य का सत्यानाश कर भारत का भारत करते चले जाते हैं। मूल्य ≈)

नीति शिरोमणि—यह नीति सबनीतों की शिरोमणि है।-]

आयुर्विचार—यह पुस्तक वेदादि सत ग्रन्थों से लिखी गई है देखिये इस पर चलिये अल्पायु के दुःखों को त्याग ४०० सौ वर्ष की आयु के सुखों को भोगिये आप तो आयु के लिये ज्योतिषियों को माला माल कर देते हैं फिर क्या वेदोक्त नुसखों के लिये ≈) व्यय करने में कुछ देर है

सत्यनारायण की प्राचीन कथा—मित्रों सहित सुनिये, देखिये कैसी अच्छी और उपयोगी कथा है। मूल्य -]॥

पत्रप्रकाश—यह सातवीं बार छपी है इस में पुत्र और पुत्रियों के लिये गद्य और पद्य में शिक्षा युक्त चिट्ठी पत्री लिखने की रीति है मूल्य ≈) यथार्थ शान्ति निरूपण—यह पुस्तक स्त्री पुरुषों पुत्र पुत्रियों और प्रत्येक मतमतान्तर के लोगों को शांति देनेवाली है इस के पाठ और विचार से आत्मा में एक प्रकार की शान्ति आती है जो सब सुखों की दाता है यथार्थ में इस के आशय बड़े गंभीर हैं।] शान्ति शतक—यह प्राचीन कवि शल्हण मिश्र कृत श्लोक हैं जो भाषा सहित इस पुस्तक में छपे हैं इस के श्लोक सभा और विद्वानों में बोलने योग्य और मूर्खों के समझाने के लिये हैं इस का आशय प्रत्येक मनुष्य को धार्मिक बनाने के लिये उत्तेजित करता है ≈]

मित्रानन्द—मित्रता करने से प्रथम इस को देख लीजिये फिर कभी मित्रता न टूटेगी न क्लेश सहन करने पड़ेंगे मू० -]॥

धर्म बलिदान—जिस में उन धर्मात्मा पुरुषों के जीवन चरित्र हैं जिन्होंने धर्मार्थ अपने तन मन धन, को अर्पण कर दिया

जिस समय आप छोटे २ पुत्रों की धर्म वीरता का वृतान्त पढ़ेंगे आप का हृदय कांपने लगेगा नेत्रों से आंसुओं की धारा बह चलेगी मू० ≈) भारतोपदेश—इस में श्री रामचन्द्र जी का वह उपदेश है जो उन्होंने चित्रकूट पर भाई भरत को किया था मूल्य)॥ ऋषी प्रसाद—इस में महात्मा शौनकका उपदेश है मूल्य)॥ रत्नजोड़ी—इस में लुक़मान हकीम की शिक्षा है मू०)॥ रत्नप्रकाश—महर्षियोंकी शिक्षायें हैं मू०)॥ द्वैतप्रकाश −) राधास्वामी मत परीक्षा −)सत्य विवेक)॥ दुःखादर्पण−)॥ नित्य संध्या विधिः)। नित्य हवन विधिः)। अनमोलरत्न)॥ शिष्टाचार)॥ संसारफल)॥ ईश्वर सिद्धि)। मूर्तिपूजा विचार पैसे की २ ॥

स्त्रियों के लिये उपयोगी ग्रन्थ

नीतियुक्त स्त्री धर्म ≈) स्मृत्युक्त स्त्री धर्म−)॥ स्त्री मिलाप)॥ चित्रशाला)॥

भजनों का नया सिलसिला

जिस में सभ्यतायुक्त प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक समय पर गाने योग्य भजन लिखे गये हैं जो स्त्री, पुरुष, बाल. वृद्ध सब ही के गाने योग्य हैं ।

स्त्री ज्ञानगंगा—१ भाग)॥ तथा २ भाग ≈) अनाथ पुकार)॥ भजन पचासा −) भजनसार संग्रह −)॥

चित्र ! चित्र !! चित्र !!!

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती-पण्डित लेखराम महात्मा मुंशीराम, पण्डित गुरुदत्त, लाला हंसराज, एक में सात चित्र, मूल्य प्रत्येक का एक२ आना ॥

॥ पुस्तक लेते समय हमारी मुहर जरूर देखलीजिये

मिलने का पता—चिम्मनलाल मद्रगुप्त वैश्य

तिलहर जिला शाहजहांपुर